नवीन-
अनुवाद-चन्द्रिका
डॉ॰ रमाकान्त त्रिपाठी
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

॥ श्रीः ॥

"हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला"

२८७

नवीन

अनुवाद-चन्द्रिका

लेखक

डॉ० रमाकान्त त्रिपाठी

एम० ए०, पी-एच० डी०

स्वामी देवानन्द डिग्री कालेज, मठ-लार, देवरिया

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

१९६६

THE

HARIDAS SANSKRIT SERIES

287

NAVĪNA ANUVĀDACANDRIKĀ

By

DR. RAMĀKĀNTA TRIPĀṬHĪ,

M. A., Ph. D.

Swāmī Devānanda Degree College, Mutha-Lar, Deoria

THE

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

VARANASI-1

1969

श्रद्धेय गुरुवर

डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी एम० ए०, पी-एच० डी०

के

करकमलों

में

सादर समर्पित

आत्मनिवेदन

'यद्यपि बहु नाधीषे पुत्र तथापि पठ व्याकरणम्'

उपर्युक्त पंक्ति से व्याकरण के अध्ययन का महत्त्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है। संस्कृत व्याकरण के सम्बन्ध में कोई बात मौलिक कहना असंभव है, किन्तु विषय-प्रतिपादन में कुछ नवीनता का समावेश किया जा सकता है। संस्कृत भाषा को अत्यन्त ही सरल, सुगम एवं सुबोध बनाने के लिए, व्याकरण की रटने की क्रिया को दूर करने के लिए यह ग्रंथ प्रस्तुत किया गया है। संक्षेप में इस ग्रन्थ की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :—

(१) छात्रों को अनुवाद करने का नियम नवीन वैज्ञानिक ढंग से समझाया गया है, और तदनुसार अनुवादार्थ अभ्यास भी दिए गए हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ के १ से १८ सोपानों में अनुवाद प्रक्रिया को अथ से इति तक समझाया गया है।

(२) संस्कृत भाषा के ज्ञान के लिए अनिवार्य सम्पूर्ण व्याकरण, अनुवाद और अभ्यासों के द्वारा अत्यन्त सरल रीति से समझाया गया है।

(३) समस्त आवश्यक शब्दों तथा धातुओं के रूप निबद्ध किये गये हैं। १०० तक पूरी गिनती तथा महाशंख तक की संख्याएँ दी गयी हैं।

(४) संस्कृत भाषा में पत्र-लेखन, प्रस्ताव, अनुमोदन आदि करना समझाया गया है।

(५) वाग्व्यवहार के प्रयोग एवं संस्कृत सूक्तियों का हिन्दी अनुवाद, अंग्रेजी लोकोक्तियों के संस्कृत पर्याय एवं अंग्रेजी-संस्कृत शब्दावली भी प्रस्तुत की गयी है।

(६) अशुद्ध वाक्यों को शुद्ध करने का विशेष अभ्यास कराया गया है। पुनश्च संस्कृत व्यावहारिक शब्दों को एकत्रित किया गया है।

(७) संस्कृत में निबन्ध लिखने के लिए आवश्यक निर्देश दिये गये हैं एवं २२ निबन्ध अत्युपयोगी विषयों पर लिखे गये हैं।

(८) तीस विषयों पर अनुवादार्थ हिन्दी संदर्भ प्रस्तुत किये गये हैं।

(९) संक्षिप्त धातुकोष में इस ग्रन्थ में प्रयुक्त समस्त धातुओं के पाँच लकारों के रूप दिये गये हैं।

अन्त में रोमन अक्षरों में संस्कृत लिखने की विधि समझायी गयी है। पुनश्च लेखोपयोगी चिह्नों पर भी प्रकाश डाला गया है।

इस ग्रन्थ का ठीक अभ्यास हो जाने पर छात्र निःसन्देह शुद्ध रूप से संस्कृत लिख सकता है और पढ़ सकता है। स्नातक कक्षा तक के लिए इतने व्याकरण का ज्ञान पर्याप्त है।

इस पुस्तक की रचना में सम्पूर्ण बुद्धियोग पूज्य पिताजी पं० रामनाथशास्त्री का ही है, मैं तो निमित्त मात्र हूँ। कार्य के प्रति शुभ कामनाओं के लिए मैं डॉ० दिलीपनारायण मिश्र, हिन्दी विभागाध्यक्ष : स्वामी देवानन्द डिग्री कालेज मठ-लार, देवरिया का आभारी हूँ। श्रद्धेय कुरुवर्य डॉ० शिवशेखर मिश्र डी० लिट्, रीडर, संस्कृत विभाग : लखनऊ विश्वविद्यालय ने मेरे कार्य को सुगम बनाया, एतदर्थ कृतज्ञ हूँ। कालिदास की 'गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ' सूक्ति को चरितार्थ करने वाली अपनी धर्मपत्नी श्रीमती रामकुमारी त्रिपाठी को किन शब्दों में धन्यवाद दूं, समझ नहीं पा रहा हूँ।

चौखम्वा संस्कृत सीरीज, वाराणसी के संचालक महोदय विशेष धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने बहुत ही उत्साह से इस पुस्तक का प्रकाशन कर छात्रों का बड़ा उपकार किया है।

अन्त में समस्त त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

देवाश्रम, मठ-लार
देवरिया
वि० सं० २०२६

विनयावनत—
रमाकान्त त्रिपाठी

विषय-सूची

॥ श्रीः ॥

अनुवाद-चन्द्रिका

विषय-प्रवेश

भू मण्डल की समस्त प्राचीन एवम् अर्वाचीन भाषाओं में संस्कृत भाषा को ही देवभाषा के अभिधान से अभिहित होने का गौरव प्राप्त है। आज भी इस भाषा का साहित्य विश्वसाहित्य में अत्यन्त समृद्ध एवम् अद्वितीय है और समस्त विश्व के साहित्यकार संस्कृत-साहित्यकारों का लोहा मानते हैं। व्यापकता की दृष्टि से हम संस्कृत को अपनी राष्ट्रभाषा कह सकते हैं। राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर आरूढ हिन्दी तो इसकी पुत्री ही है।

जिस प्रकार देवभाषा संस्कृत का विश्व की भाषाओं में गौरवपूर्ण स्थान है उसी प्रकार इसकी लिपि देवनागरी भी समस्त लिपियों में अपना प्रमुख स्थान रखती है। यह संसार में सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक एवं पूर्णलिपि मानी जाती है। हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी की भी यही देवनागरी लिपि है।

वर्णविचार

यदि हम अपने उच्चारित किसी शब्द का विश्लेषण करें तो पता चलेगा कि उसमें एक या कई ध्वनियाँ निश्चित क्रम से मिली होती हैं। जैसे, 'विधान' शब्द का उच्चारण करते समय हमारे मुख से व् + इ + ध् + आ + न् + अ ये छः ध्वनियाँ निकलती हैं। इस प्रकार विभिन्न शब्दों के उच्चारण करने में मुख से निकली इन्हीं विभिन्न ध्वनियों को अक्षर कहते हैं क्योंकि इनका क्षर (विनाश) कभी नहीं होता। इन्हीं अक्षरों (ध्वनियों) को लिख कर प्रकट करने के लिए अलग-अलग जो चिह्न कल्पित कर लिये गये हैं उन्हें वर्ण कहते हैं। अक्षर और वर्ण में यही सूक्ष्म भेद है किन्तु सामान्यतः वर्ण और अक्षर समानार्थक ही माने जाते हैं।

संस्कृत भाषा में वर्णों का विभाजन निम्नलिखित प्रकार से किया गया है–

(१) स्वर—जिन वर्णों का उच्चारण बिना किसी दूसरे वर्ण की सहायता के ही, स्वयं होता है उन्हें स्वर कहते हैं। यथा अ, इ, उ, ए आदि।

(२) व्यञ्जन—जिन वर्णों का उच्चारण बिना स्वर की सहायता के नहीं हो पाता है, उन्हें व्यञ्जन कहते हैं। यथा क्, ख, ग आदि।

स्वरों के भेद

स्वर तीन प्रकार के होते हैं; ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत।

समय के परिमाण-विशेष (चुटकी बजाने अथवा पलक गिरने में जितना समय लगता है) को मात्रा कहते हैं। एक साधारण वर्ण के उच्चारण में जितना समय लगता है उसे एक मात्रा, उससे दूने को दो मात्रा, तिगुने को तीन मात्रा कहा जाता है।

१-ह्रस्व स्वर—अ, इ, उ, ऋ, ऌ। इनके उच्चारण में एक मात्रा समय लगता है।

२–दीर्घस्वर—आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ। इनके उच्चारण में दो मात्रा समय लगता है। ए, ऐ, ओ, औ को मिश्रित स्वर भी कहते हैं, क्योंकि ये दो-दो स्वरों के मेल से बनते हैं। (अ + इ) से ए, (अ + ए) से ऐ, (अ + उ) से ओ, (अ + ओ) से औ।

विशेष—अ, इ, उ, ऋ इन ह्रस्व स्वरों से संस्कृत व्याकरण में ह्रस्व तथा दीर्घ दोनों स्वरों का ग्रहण होता है। जहाँ ऐसा अभीष्ट नहीं होता है वहाँ स्वर के आगे 'त्' अथवा 'कार' लगाकर उच्चारण करते हैं। यथा—अत् या अकार (ह्रस्व अ)। इत् या इकार (ह्रस्व इ)। उत् या उकार (ह्रस्व उ)। ऋत् या ऋकार (ह्रस्व ऋ), आत् या आकार (दीर्घ आ) इत्यादि।

व्यञ्जन

व्यञ्जनों को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं–स्पर्श, अन्तस्थ तथा ऊष्मा।

स्पर्शव्यञ्जन—क से म तक २५ वर्ण स्पर्श कहे जाते हैं क्योंकि इनके उच्चारण में जिह्वा का अग्र, मध्य और मूलभाग द्वारा कण्ठ, तालु आदि स्थानों का स्पर्श होता है। इन स्पर्श वर्णों को पाँच भागों में बाँटा गया है और प्रत्येक

वर्ण का नाम उसके प्रथम वर्ण के आधार पर रखा गया है। यथा—क, ख, ग, घ, ङ—कवर्ग अथवा कु। च, छ, ज, झ, ञ—चवर्ग अथवा चु। ट, ठ, ड, ढ, ण—टवर्ग अथवा टु। त, थ, द, ध, न—तवर्ग अथवा तु। प, फ, ब, भ, म—पवर्ग अथवा पु।

अन्तःस्थ—अन्तःस्थ का मतलब है बीच वाला। 'य, व, र, ल' स्वर और व्यञ्जन के बीच के हैं अतएव ये अन्तःस्थ कहे जाते हैं।

ऊष्मा—जिन वर्णों के उच्चारण में गर्म वायु का प्राधान्य हो उन्हें ऊष्म वर्ण कहते हैं।

इस प्रकार स्वरों की संख्या १२ और व्यञ्जनों की संख्या ३३ है। क्ष, त्र, ज्ञ आदि की गणना नहीं करनी चाहिए क्योंकि ये स्वतन्त्र व्यञ्जन नही हैं, ये दो व्यञ्जनों के मेल से बने हैं। क्+ष=क्ष। त्+र=त्र। ज्+ञ=ज्ञ। इस प्रकार दो दो, तीन-तीन व्यञ्जन मिलाकर अनेक संयुक्त व्यञ्जन बनाये जा सकते हैं।

यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक व्यञ्जन में अकार जो जुड़ा हुआ है, व्यञ्जनों के उच्चारण की सुविधा की दृष्टि से ही। वास्तव में उनका शुद्ध रूप क्, ख्, ग् आदि ही है।

ध्वनि-माधुर्य की दृष्टि से वर्गों के प्रथम द्वितीय वर्ण तथा श, ष, स का परुष (कठोर) वर्ण कहते हैं और वर्गों के तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम वर्ण तथा य, र, ल, व, ह को मृदु व्यञ्जन कहते हैं। ङ, ञ, ण, न, म को अनुनासिक भी कहते हैं।

प्रत्येक वर्ण का शुद्ध उच्चारण, शुद्ध, स्पष्ट तथा सुन्दर लिखना योग्य गुरु से सीखें और अभ्यास करें।

वर्णों का उच्चारण स्थान और प्रयत्न

अक्षरों का उच्चारण मुख के विभिन्न स्थानों से होता है अतः उन्हें अक्षरों का उच्चारण स्थान कहते हैं।

अ, कवर्ग, ह तथा विसर्ग का उच्चारण स्थान कण्ठ है और ये अक्षर कण्ठ्य कहे जाते हैं।

इ, चवर्ग, य और श का उच्चारण स्थान तालु है और इन अक्षरों को तालव्य कहते हैं।

ऋ, टवर्ग, र और ष का उच्चारण स्थान मूर्धा है अतः इन्हें मूर्द्धन्य कहते हैं।

लृ, तवर्ग, ल, स का दन्त स्थान है अतः इन्हें दन्त्य कहते हैं।

उ, पवर्ग और उपध्मानीय (≍ प ≍ फ) का ओष्ठ स्थान है अतः ये ओष्ठ्य वर्ण कहे जाते हैं।

ञ, म, ङ, ण और न का क्रमशः पूर्वोक्त कण्ठ, तालु, मूर्धा और दन्त स्थान के अतिरिक्त नासिका भी उच्चारण स्थान है अतः ये अनुनासिक भी कहे जाते हैं।

ए और ऐ का उच्चारण स्थान कण्ठ और तालु दोनों है अतः इन्हें कण्ठ्य तालव्य कहते हैं।

ओ तथा औ का उच्चारण स्थान कण्ठ और ओष्ठ दोनों है अतः इन्हें कण्ठ्योष्ठ कहते हैं।

वकार का उच्चारण स्थान दन्त और ओष्ठ दोनों है अतः इसे दन्त्योष्ठ्य वर्ण कहते हैं।

जिह्वामूलीय (≍ क ≍ ख) का उच्चारण स्थान जिह्वामूल (जीभ का मूलभाग) है अतः इसे जिह्वामूलीय कहते हैं।

अनुस्वार का उच्चारण स्थान नासिका है।

अक्षरों के उच्चारण में हमें जो प्रयत्न करना पड़ता है, वह दो प्रकार का होता है—

(१) आभ्यन्तर प्रयत्न—वर्णोच्चारण के पूर्व हमें हृदय में जो प्रयत्न करना पड़ता है उसे आभ्यन्तर प्रयत्न कहते हैं। इस प्रयत्न का अनुभव उच्चारण करने वाला ही कर पाता है।

(२) वाह्य प्रयत्न—मुख से वर्ण निकलते समय जो प्रयत्न किया जाता है उसे वाह्य प्रयत्न कहते हैं। इस प्रयत्न का अनुभव सुनने वाले को भी होता है।

आभ्यन्तर प्रयत्न पाँच प्रकार का होता है—

(१) स्पृष्ट प्रयत्न—स्पर्श (क से म तक) वर्णों का होता है।

(२) ईषत् स्पृष्ट—अन्तःस्थ (य, र, ल, व) वर्णों का होता है।

(३) ईषद् विवृत—शल् अथवा ऊष्म (श, ष, स, ह) वर्णों का होता है ।

(४) विवृत—स्वरों का होता है । ह्रस्व अकार का प्रयोगावस्था में विवृत और साधनिका अवस्था में संवृत (५) प्रयत्न होता है ।

बाह्य प्रयत्न ११ प्रकार का होता है—

(१) विवार—वर्णों के उच्चारण में जब कण्ठ को फैलाना पड़ता है तब विवार प्रयत्न होता है ।

(२) संवार—विवार के विपरीत अर्थात् जब कण्ठ नहीं फैलाना पड़ता है, तब संवार प्रयत्न होता है ।

(३) श्वास—वर्णों के उच्चारण में जब श्वास चलता है तब श्वास प्रयत्न होता है ।

(४) नाद—वर्णों के उच्चारण में जब नाद (विशेष प्रकार की अव्यक्त ध्वनि) होता है तब नाद प्रयत्न होता है ।

(५) घोष—वर्णों के उच्चारण में जब गूँज हो तो घोष प्रयत्न होता है ।

(६) अघोष—घोष के विपरीत अर्थात् जब गूँज न हो तो अघोष प्रयत्न होता है ।

(७) अल्प प्राण—वर्णों के उच्चारण में जब प्राण का अल्प उपयोग हो तब अल्प प्राण होता है ।

(८) महाप्राण—प्राणवायु का अधिक उपयोग हो तो महाप्राण प्रयत्न होता है ।

(९) उदात्त—तालु आदि स्थानों के उर्ध्वभाग में उच्चरित अच् (स्वर) उदात्त कहलाता है अतः तदुच्चारण सम्बन्धी प्रयत्न उदात्त होता है ।

(११) अनुदात्त—तालु आदि स्थानों के अधोभाग में उच्चरित अच् (स्वर) अनुदात्त कहा जाता है और उसके उच्चारण में भी अनुदात्त प्रयत्न होता है ।

(११) स्वरित—उदात्त और अनुदात्त जिस स्वर में सम्मिलित हों उसे स्वरित कहते हैं और उसके प्रयत्न को भी स्वरित कहते हैं ।

खर प्रत्याहार (ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स) अर्थात् वर्गों के प्रथम, द्वितीय वर्ण तथा श, ष, स का विवार, श्वास और अघोष प्रयत्न है। हश् (ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द) अर्थात् वर्गों के तृतीय, चतुर्थ, पंचम वर्ण तथा य, र, ल, व, ह का संवार, नाद, घोष प्रयत्न होता है।

वर्गों के प्रथम, तृतीय, पंचम, तथा य, व, र, ल का अल्प प्राण और वर्गों के द्वितीय, चतुर्थ तथा ऊष्म वर्णों का महाप्राण प्रयत्न होता है।

(ब)

तुम हिन्दी वाक्यों का संस्कृत में सरलता से अनुवाद कर सको, इसके लिए सर्वप्रथम हिन्दी भाषा के व्याकरण सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, अव्यय, क्रिया, कारक, काल, पुरुष, लिङ्ग, वचन, वाच्य आदि) का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लो। अनुवाद के लिए संस्कृत व्याकरण के जो नियम बताए जायँ, हिन्दी व्याकरण से तुलना करते हुए उनका अध्ययन करो। इस प्रकार संस्कृत व्याकरण के नियम सरलता से समझ में आ जाते हैं और अपने आप याद भी हो जाते हैं।

यदि विचारपूर्वक देखो तो तुम्हें हिन्दी वाक्य में संस्कृत के तत्सम (शुद्ध) अधिकांश मिलेंगे। जहां ऐसा न हो, उन शब्दों को शुद्ध संस्कृत में बदल लो, इसके बाद हिन्दी के कारक चिह्नों (विभक्तियों) तथा क्रिया को संस्कृत में बदलना ही शेष रह जाता है।

हिन्दी की तरह संस्कृत में भी कर्ता, कर्म आदि सात कारक होते हैं। जैसे हिन्दी में प्रत्येक कारक के लिए चिह्न (विभक्तियाँ) हैं, उसी तरह संस्कृत में भी प्रत्येक कारक के लिए विभक्तियाँ हैं। 'सम्बोधन' भी दोनों भाषाओं में होता है। हिन्दी और संस्कृत दोनों में तीन पुरुष—प्रथम पुरुष (हिन्दी में अन्य पुरुष भी कहा जाता है) मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष होते हैं। संस्कृत में प्रत्येक पुरुष में तीन वचन—एकवचन, द्विवचन और बहुवचन होते हैं, हिन्दी में द्विवचन नहीं होता केवल एकवचन और बहुवचन ही होते हैं।

विभक्तियाँ (Case signs)	कारक[1] (Cases)	हिन्दी चिह्न
प्रथमा	कर्ता (Nominative)	ने (कहीं प्रकट, कहीं लुप्त रहता है)।
द्वितीया	कर्म (Accusative)	को (कहीं प्रकट, कहीं लुप्त रहता है)।
तृतीया	करण (Instrumental)	से, द्वारा
चतुर्थी	सम्प्रदान (Dative)	के लिए
पञ्चमी	अपादान (Ablative)	से[2]
षष्ठी	सम्बन्ध (Genitive)	का, के, की
सप्तमी	अधिकरण (Locative)	में, पर,
सम्बोधन	सम्बोधन (Vocative)	हे, अये, भोः आदि

संस्कृत में पुरुष और वचन

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम	सः (वह)	तौ (वे दोनों)	ते (वे)
मध्यम	त्वम् (तू)	युवाम् (तुम दोनों)	यूयम् (तुम, तुमलोग)
उत्तम	अहम् (मैं)	आवाम् (हम दोनों)	वयम् (हम, हमलोग)

हिन्दी वाक्य तथा संस्कृत वाक्य की तुलना

प्रथम पु० ए० व०	लड़का जाता है	बालकः गच्छति
,, ,, ब० व०	लड़के जाते हैं	बालकाः गच्छन्ति

---

१. कर्तृवाच्य प्रयोगे तु प्रथमा कर्तृकारके ।
द्वितीयान्तं भवेत् कर्म कर्त्रधीनं क्रियापदम् ॥
कर्त्ता कर्म च करणं च सम्प्रदानं तथैव च ।
अपादानाधिकरणे इत्याहुः कारकाणि षट् ॥

२. जब अलग होने या हटने का ज्ञान हो तब अपादान (पञ्चमी) होता है और जब संज्ञा से क्रिया के साधन का ज्ञान हो तब करण (तृतीया) होता है ।

मध्यम पु० ए० व०	तू जाता है	त्वं गच्छसि
,, ,, ब० व०	तुम जाते हो	यूयं गच्छथ
उत्तम पु० ए० व०	मैं जाता हूँ	अहं गच्छामि
,, पु० व० व०	हम जाते हैं	वयं गच्छामः

(१) हिन्दी में कर्ता का चिह्न यहाँ लुप्त है (किन्तु सर्वत्र ऐसा नहीं होता)। संस्कृत में कर्ता 'बालक' के साथ एकवचन में (:) तथा बहुवचन में (ाः) विभक्तियाँ लगी हुई हैं।

(२) हिन्दी में बहुवचन में 'लड़का' का रूप 'लड़के' हो गया और संस्कृत में भी बहुवचन में 'बालकः' का 'बालकाः' हो गया।

(३) हिन्दी में 'जाना' अर्थ में 'जा' धातु के आगे एकवचन में 'ता है' प्रत्यय और बहुवचन में 'ते हैं' प्रत्यय जुड़ने से 'जाता है', 'जाते हैं' क्रियापद बनते हैं। संस्कृत में 'जाना' अर्थ में 'गच्छ्' से एकवचन में 'अति' बहुवचन में 'अन्ति' जुड़ने से 'गच्छति' और 'गच्छन्ति' क्रियापद बनते हैं।

इसी प्रकार मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष के वाक्यों पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि हिन्दी और संस्कृत दोनों में कर्ता के पुरुष तथा वचन के अनुसार क्रियापद के विभिन्न रूप होते हैं—उसके रूप में परिवर्तन हुआ करता है, एवं संज्ञा, सर्वनाम आदि शब्द अपने लिङ्ग, वचन तथा कारक के अनुसार विभिन्न रूप धारण किया करते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि संस्कृत के संज्ञा आदि शब्दों के आगे प्रयुक्त प्रत्यय (विभक्तियाँ) अपने शब्दों में मिली रहती हैं तथा क्रियापद में धातु के आगे प्रयुक्त प्रत्यय धातु में मिले रहते हैं। संस्कृत भाषा के संज्ञा, सर्वनाम आदि शब्दों के तथा धातुओं के रूपों को याद करने के लिए तुम स्वयं विचार-सम्बन्ध बना सकते हो और एक शब्द अथवा धातु के रूपों को भलीभाँति कण्ठस्थ कर लेने पर उसके समान जितने भी शब्द अथवा धातु हैं, सबके रूप स्वयं बना लोगे। उदाहरणार्थ राम शब्द के प्रत्येक विभक्ति तथा वचन के रूप ध्यानपूर्वक पढ़ो और मूलशब्द (राम) से उसकी तुलना करो तो अनेक नियम ज्ञात कर सकते हो।

प्रथमा विभक्ति रामः, रामौ, रामाः।

मूल शब्द (राम) की अपेक्षा, इसके एक वचन में (ः) अधिक है। अतः तुम कह सकते हो कि प्रथमा एकवचन में राम शब्द से जुड़ी विभक्ति विसर्ग हो जाती है अथवा शब्द का अन्तिम वर्ण अकार और विभक्ति मिलाकर 'अः' हो जाता है अथवा अन्तिम वर्ण हटाकर 'अः' जोड़ दिया जाता है।

इसी प्रकार द्विवचन में 'औ' जोड़कर अ + औ = औ वृद्धि सन्धि कर दी गयी है अथवा अन्तिम वर्ण हटाकर 'औ' जोड़ दिया गया है। इसी प्रकार बहुवचन के रूप के विषय में भी नियम बना सकते हो। एक रूप के लिए सभी संभावित नियमों में से, जिसे चाहो, किसी एक को अपना लो और अकारान्त (जिसका अन्तिम वर्ण 'अ' है) पुंल्लिङ्ग सभी शब्दों के रूप उसी प्रकार से बना सकते हो। यथा—गज शब्द का गजः, गजौ, गजाः। ऐसा ही सभी विभक्तियों के विषय में विचार-सम्बन्ध बना लो।

पठ् धातु के रूप—'पठति, पठतः, पठन्ति' की तुलना मूल धातु पठ् से करो तो समझ सकते हो कि एकवचन में अति, द्विवचन में अतः, बहुवचन में अन्ति जोड़ा गया है। इस प्रकार (गण) की धातुओं के रूप इसी तरह से बनेंगे।

इस पुस्तक में भी स्थान-स्थान पर यथासंभव इस प्रकार के संकेत लिख दिये गये हैं, उनसे भी तुम सहायता ले सकते हो।

संस्कृत व्याकरण की समस्त धातुओं को दस भागों में बाँट दिया गया है। एक गण की धातुओं के रूप प्रायः समान चलते हैं। उन गणों के नाम उनकी पहिली धातु के आधार पर रक्खे गये हैं। यथा—

प्रथम गण — भ्वादिगण—इस गण की धातुओं के रूप 'भू' धातु की तरह।
द्वितीय ,, — अदादिगण—इस गण की धातुओं के रूप 'अद्' धातु की तरह।
तृतीय ,, — जुहोत्यादिगण—इस गण की धातुओं के रूप जुहोति ('हु' धातु) की तरह।
चतुर्थ ,, — दिवादिगण—इस गण की धातुओं के रूप 'दिव्' धातु की तरह।
पञ्चम ,, — स्वादिगण—इस गण की धातुओं के रूप 'सु' धातु की तरह।
षष्ठ ,, — तुदादिगण—इस गण की धातुओं के रूप 'तुद्' धातु की तरह।
सप्तम ,, — रुधादिगण—इस गण की धातुओं के रूप 'रुध्' धातु की तरह।
अष्टम ,, — तनादिगण—इस गण की धातुओं के रूप 'तन्' धातु की तरह।

नवम गण　　क्र्यादिगण—इस गण की धातुओं के रूप 'क्री' धातु की तरह।

दशम „　　चुरादिगण—इस गण की धातुओं के रूप 'चुर्' धातु की तरह।

मूल विभक्तियाँ और प्रत्यय

संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण शब्दों के आगे निम्नलिखित प्रत्यय लगते हैं, जिनको 'विभक्ति' कहते हैं। इन शब्दों के रूपों में ये ही विभक्तियाँ कुछ परिवर्तित अथवा कहीं शुद्ध रूप में मिली रहती हैं—

	अर्थ	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	(ने)	स् (सु)	औ	अस् (जस्)
द्वि०	(को)	अम्	औ (औट्)	अस् (शस्)
तृ०	(से, द्वारा)	आ (टा)	भ्याम्	भिस्
च०	(के लिए)	ए (ङे०)	भ्याम्	भ्यस्
पं०	(से)	अस् (ङसि)	भ्याम्	भ्यस्
ष०	(का, के, की)	अस् (ङस्)	ओस्	आम्
स०	(में, पर)	इ (ङि)	ओस्	सु (सुप्)

चूँकि ये विभक्तियाँ 'सु' से आरम्भ होकर 'प्' पर समाप्त होती हैं अतः सामूहिक रूप से सम्पूर्ण विभक्तियों को 'सुप्' कहते हैं और इन विभक्तियों से बने शब्द रूपों को सुबन्त पद कहते हैं।

धातुओं से क्रियापद बनाने के लिए निम्नलिखित प्रत्यय जुड़ते हैं।

	पुरुष	ए० व०	द्वि व०	ब० व०
परस्मैपद प्रत्यय	प्रथम	तिप् (ति)	तस् (तः)	झि (अन्ति)
	मध्यम	सिप् (सि)	थस् (थः)	थ
	उत्तम	मिप् (मि)	वस् (व)	मस् (मः)
आत्मनेपद प्रत्यय	प्रथम	त	आताम्	झ (अन्त)
	मध्यम	थास् (थाः)	आथाम्	ध्वम्
	उत्तम	इट् (इ)	वहि	महिङ् (महि)

इन अठारह प्रत्ययों को, सामूहिक बोध के लिए तिङ् प्रत्यय कहते हैं क्योंकि इनका आरम्भ 'ति' से होकर समाप्ति 'ङ्' पर होती है। इनसे बने धातुरूपों को तिङन्त पद कहते हैं। प्रथम ९ प्रत्यय परस्मैपद कहलाते हैं। ये जिन धातुओं में

लगते हैं उन्हें परस्मैपदी धातु कहते हैं। दूसरे ९ प्रत्यय आत्मनेपद कहलाते हैं। ये जिन धातुओं में लगते हैं उन्हें 'आत्मनेपदी' धातु कहते हैं।

जिन धातुओं में दोनों प्रकार के प्रत्यय लगते हैं उन्हें उभयपदी धातु कहते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि किसी संज्ञा आदि शब्दों में जब विभक्ति लग जाती है और इस प्रकार निष्पन्न रूप सुबन्त पद बन जाता है तभी उसका प्रयोग वाक्य में होता है। यही बात धातु के लिए भी है। उसमें प्रत्यय लगाकर निष्पन्न रूप को तिङन्त रूप बना दे तभी वाक्य में प्रयोग करे।

अतः कहा गया है—'अपदं न प्रयुञ्जीत' इति।

संस्कृत भाषा में १० लकार[1] क्रियासूचक तथा आज्ञादि सूचक दोनों प्रकार के हैं। लट् आदि सब 'ल्' से आरम्भ होते हैं अतएव इनको दस लकार की भी संज्ञा प्रदान की गई है। इनमें से लोट् एवं विधिलिङ् आज्ञा, अनुज्ञा, विधान आदि अर्थों में प्रयुक्त होते हैं, यथा रामः पठतु, पेठत् वा (गोपाल पढ़े)। आशीर्लिङ् आशीर्वाद अर्थ में आता है। लृङ् लकार हेतु-हेतुमद्भूत (जहाँ एक क्रिया के होने पर दूसरी क्रिया हो) के अर्थ में प्रयुक्त होता है, उदाहरणार्थ यदि त्वमपठिष्यः तदावश्यम् परीक्षायाम् उत्तीर्णोऽभविष्यः (यदि तुम पढ़ते तो परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण होते)। इन चार लकारों के अतिरिक्त शेष लकार काल सूचक हैं। लट् वर्तमान काल में प्रयुक्त होता है, यथा—बालकः पठति (लड़का पढ़ता है)। तीन लकार भूतकाल सूचक हैं—लुङ् (सामान्यभूत), लङ् (अनद्यतनभूत) और लिट् (परोक्षभूत) में आता है। लेट् लकार का प्रयोग केवल वैदिक भाषा में होता है।

संस्कृत भाषा में निम्नलिखित दस काल अथवा वृत्तियाँ होती हैं—

(१) वर्तमान काल	लट्	(Present tense)
(२) अनद्यतनभूत	लङ्	(Past imperfect tense)
(२) सामान्यभूत	लुङ्	(Aorist)

---

१. लट् वर्तमाने लेट् वेदे भूते लुङ् लङ् लिटस्तथा।
विध्याशिषौ तु लिङ् लोटौ लुट् लृट् लृङ् च भविष्यति॥

(४) परोक्षभूत	लिट्	(Past perfect tense)
(५) सामान्यभविष्य	लृट्	(Simple future)
(६) अनद्यतन भविष्य	लुट्	(First future)
(७) आज्ञा	लोट्	(Imprative mood)
(८) विधिलिङ्	विधिलिङ्	(Potential mood)
(९) आशीर्लिङ्	आशीर्लिङ्	(Benedictive)
(१०) क्रियातिपत्ति	लृङ्	(Conditional)

विहङ्गम दृष्टि से धातुओं के रूप

(परस्मैपदी) अस्–होना (लट् लकार)

	ए० व०	द्विव०	ब० व०
प्रथमपुरुष	अस्ति (वह है)	स्तः (वे दो हैं)	सन्ति (वे हैं)
मध्यमपुरुष	असि (तू है)	स्थः (तुम दो हो)	स्थ (तुम हो)
उत्तमपुरुष	अस्मि (मैं हूँ)	स्वः (हम दो हैं)	स्मः (हम हैं)

प्रत्यय

प्र० पु०	(सः) ति	(तौ) तः	(ते) अन्ति
म० पु०	(त्वम्) सि	(युवाम्) थः	(यूयम्) थ
उ० पु०	(अहम्) मि	(आवाम्) वः	(वयम्) मः

अनद्यतन भूतकाल (लङ् लकार)

प्रथम पुरुष	आसीत् (वह था)	आस्ताम् (वे दो थे)	आसन् (वे थे)
मध्यम पुरुष	आसीः (तू था)	आस्तम् (तुम दो थे)	आस्त (तुम थे)
उत्तम पुरुष	आसम् (मैं था)	आस्व (हम दो थे)	आस्म (हम थे)

प्रत्यय

प्र० पु०	(सः) त्	(तौ) ताम्	(ते) अन्
म० पु०	(त्वम्) :	(युवाम्) तम्	(यूयम्) त
उ० पु०	(अहम्) अम्	(आवाम्) व	(वयम्) म

परस्मैपद पठ् (पढ़ना)

वर्तमान (लट्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

ए० व०	द्वि व०	ब० व०		ए० व०	द्वि व०	ब० व०
पठति	पठतः	पठन्ति	प्र०	अति	अतः	अन्ति
पठसि	पठथः	पठथ	म०	असि	अथः	अथ
पठामि	पठावः	पठामः	उ०	आमि	आवः	आमः

अनद्यतनभूत (लङ्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

अपठत्	अपठताम्	अपठन्	प्र०	अत्	अताम्	अन्
अपठः	अपठतम्	अपठत	म०	अः	अतम्	अत
अपठम्	अपठाव	अपठाम	उ०	अम्	आव	आम

सामान्यभूत (लुङ्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

अपाठीत्	अपाठिष्टाम्	अपाठिषुः	प्र०	आइत्	आइष्टाम्	आइषुः
अपाठीः	अपठिष्टम्	अपाठिष्ट	म०	आईः	आइष्टम्	आइष्ट
अपाठिषम्	अपाठिष्व	अपाठिष्म	उ०	आइषम्	आइष्व	आइष्म

परोक्षभूत (लिट्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

पपाठ	पेठतुः	पेठुः	प्र०	आअ	एअतुः	एउः
पेठिथ	पेठथुः	पेठ	म०	एइथ	एअथुः	एअ
पपाठ, पपठ	पेठिव	पेठिम	उ०	आअ	एइव	एइम

सामान्य भविष्य (लृट्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति	प्र०	(इ) स्यति	(इ) स्यतः	(इ) स्यन्ति
पठिष्यसि	पठिष्यथः	पठिष्यथ	म०	(इ) स्यसि	(इ) स्यथः	(इ) स्यथ
पठिष्यामि	पठिष्यावः	पठिष्यामः	उ०	(इ) स्यामि	(इ) स्यावः	(इ) स्यामः

अनद्यतन भविष्य (लुट्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप

पठिता	पठितारौ	पठितारः	प्र०	(इ) ता	(इ) तारौ	(इ) तारः
पठितासि	पठितास्थः	पठितास्थ	म०	(इ) तासि	(इ) तास्थः	(इ) तास्थ
पठितास्मि	पठितास्वः	पठितास्मः	उ०	(इ) तास्मि	(इ) तास्वः	(इ) तास्मः

आज्ञा (लोट्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

पठतु	पठताम्	पठन्तु	प्र० अतु	अताम्	अन्तु
पठ	पठतम्	पठत	म० अ	अतम्	अत
पठानि	पठाव	पठाम	उ० आनि	आव	आम

अनुज्ञा, आज्ञा (विधिलिङ्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

पठेत्	पठेताम्	पठेयुः	प्र० एत्	एताम्	एयुः
पठेः	पठेतम्	पठेत	म० एः	एतम्	एत
पठेयम्	पठेव	पठेम	उ० एयम्	एव	एम

आशीर्वाद (आशीर्लिङ्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

पठ्यात्	पठ्यास्ताम्	पठ्यासुः	प्र० यात्	यास्ताम्	यासुः
पठ्याः	पठ्यास्तम्	पठ्यास्त	म० याः	यास्तम्	यास्त
पठ्यासम्	पठ्यास्व	पठ्यास्म	उ० यासम्	यास्व	यास्म

हेतु-हेतुमद्भाव (लृङ्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

अपठिष्यत्	अपठिष्यताम्	अपठिष्यन्	प्र० (इ) स्यत्	(इ) स्यताम्	(इ) स्यन्
अपठिष्यः	अपठिष्यतम्	अपठिष्यत	म० (इ) स्यः	(इ) स्यतम्	(इ) स्यत
अपठिष्यम्	अपठिष्याव	अपठिष्याम्	उ० (इ) स्यम्	(इ) स्याव	(इ) स्याम्

आत्मनेपद-मुद् (प्रसन्न होना)

वर्तमान् (लट्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

ए०व०	द्वि०व०	ब०व०	ए०व०	द्वि०व०	ब०व०
मोदते	मोदेते	मोदन्ते	प्र० अते	एते	अन्ते
मोदसे	मोदेथे	मोदध्वे	म० असे	एथे	अध्वे
मोदे	मोदावहे	मोदामहे	उ० ए	आवहे	आमहे

अनद्यतनभूत (लङ्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

अमोदत	अमोदेताम्	अमोदन्त	प्र० अत	एताम्	अन्त
अमोदथाः	अमोदेथाम्	अमोदध्वम्	म० अथाः	एथाम्	अध्वम्
अमोदे	अमोदावहि	अमोदामहि	उ० ए	आवहि	आमहि

सामान्यभूत (लुङ्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

अमोदिष्ट	अमोदिषाताम्	अमोदिषत	प्र०	(इ) स्त	(इ) साताम्	(इ) सत
अमोदिष्ठाः	अमोदिषाथाम्	अमोदिध्वम्	म०	(इ) स्थाः	(इ) साथाम्	(इ) ध्वम्
अमोदिषि	अमोदिष्वहि	अमोदिष्महि	उ०	(इ) सि	(इ) स्वहि	(इ) स्महि

परोक्षभूत (लिट्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

मुमुदे	मुमुदाते	मुमुदिरे	प्र०	ए	आते	रे
मुमुदिषे	मुमुदाथे	मुमुदिध्वे	म०	इषे	आथे	इध्वे
मुमुदे	मुमुदिवहे	मुमुदिमहे	उ०	ए	इवहे	इमहे

सामान्यभविष्यत् (लृट्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

मोदिष्यते	मोदिष्येते	मोदिष्यन्ते	प्र०	(इ) स्यते	(इ) स्येते	(इ) स्यन्ते
मोदिष्यसे	मोदिष्येथे	मोदिष्यध्वे	म०	(इ) स्यसे	(इ) स्येथे	(इ) स्यध्वे
मोदिष्ये	मोदिष्यावहे	मोदिष्यामहे	उ०	(इ) स्ये	(इ) स्यावहे	(इ) स्यामहे

अनद्यतनभविष्यत् (लुट्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

मोदिता	मोदितारौ	मोदितारः	प्र०	(इ) ता	(इ) तारौ	(इ) तारः
मोदितासे	मोदितासाथे	मोदिताध्वे	म०	(इ) तासे	(इ) तासाथे	(इ) ताध्वे
मोदिताहे	मोदितास्वहे	मोदितास्महे	उ०	(इ) ताहे	(इ) तास्वहे	(इ) तास्महे

आज्ञा (लोट्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

मोदताम्	मोदेताम्	मोदन्ताम्	प्र०	अताम्	एताम्	अन्ताम्
मोदस्व	मोदेथाम्	मोदध्वम्	म०	अस्व	एथाम्	अध्वम्
मोदै	मोदावहै	मोदामहै	उ०	ऐ	आवहै	आमहै

अनुज्ञा, आज्ञा (विधिलिङ्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

मोदेत	मोदेयाताम्	मोदेरन्	प्र०	एत	एयाताम्	एरन्
मोदेथाः	मोदेयाथाम्	मोदेध्वम्	म०	एथाः	एयाथाम्	एध्वम्
मोदेय	मोदेवहि	मोदेमहि	उ०	एय	एवहि	एमहि

आशीर्वाद (आशीर्लिङ्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

मोदिषीष्ट	मोदिषीयास्ताम्	मोदिषीरन्	प्र०	(इ) ईष्ट	(इ) ईयास्ताम्	(इ) ईरन्
मोदिषीष्ठाः	मोदिषीयास्थाम्	मोदिषीध्वम्	म०	(इ) ईष्ठाः	(इ) ईयास्थाम्	(इ) ईध्वम्
मोदिषीय	मोदिषीवहि	मोदिषीमहि	उ०	(इ) ईय	(इ) ईवहि	(इ) ईमहि

हेतुहेतुमद्भाव (लृङ्) (क्रिया का संक्षिप्त रूप)

अमोदिष्यत	अमोदिष्येताम्	अमोदिष्यन्त	प्र०	(इ) स्यत	(इ) स्येताम्	(इ) स्यन्त
अमोदिष्यथाः	अमोदिष्येथाम्	अमोदिष्यध्वम्	म०	(इ) स्यथाः	(इ) स्येथाम्	(इ) स्यध्वम्
अमोदिष्ये	अमोदिष्यावहि	अमोदिष्यामहि	उ०	(इ) स्ये	(इ) स्यावहि	(इ) स्यामहि

कृदन्तों का क्रिया के रूप में प्रयोग

धातुओं से बने हुए कृदन्तों का भी क्रिया के स्थान पर प्रयोग किया जाता है। कृदन्त भी तीनों कालों को प्रकट करते हैं। इसके साथ ही साथ आज्ञा अथवा अनुज्ञा आदि का भी बोध कराते हैं। शतृ और शानच्[1] वर्तमान क्रिया को प्रकट करते हैं, क्त और क्तवत् भूतकालिक क्रिया को प्रकट करते हैं एवं तव्य और अनीयर् आज्ञा तथा भविष्यत् काल की क्रिया को प्रकट करते हैं।

तव्य, अनीयर् , यत्—ये कृत्य प्रत्यय भाववाच्य और कर्मवाच्य में होते हैं। जब ये कर्मवाच्य में होते हैं तो कर्म के अनुसार इनका लिङ्ग, वचन और कारक होता है, कर्ता में तृतीया होती है और कर्म में प्रथमा। जैसे—तेन त्वया मया अस्माभिः वा पुस्तकानि पठितव्यानि, पठनीयानि वा। जब भाववाच्य में तव्य, अनीय, यत् होंगे तो इनमें नपुंसक० एकवचन ही रहेगा, कर्ता में तृतीया होगी। *यथा*—तेन हसितव्यम्। मया त्वया अस्माभिः वा जलं पेयम्। मया स्थेयम्। दानं देयम्।

क्त प्रत्यय जब सकर्मक धातु से कर्मवाच्य में होगा तो कर्म में प्रथमा, कर्ता में तृतीया और क्रिया का लिङ्ग, वचन और विभक्ति कर्म के अनुसार होगी, कर्ता के अनुसार नहीं। *यथा*—अस्माभिः ग्रन्थः पठितः। छात्रैः पुस्तकानि पठितानि। दमयन्त्या लता दृष्टा।

अकर्मक धातु से क्त प्रत्यय होगा तो कर्ता में तृतीया होगी, क्रिया में नपुंसकलिङ्ग एकवचन ही रहेगा। *यथा*—तेन हसितम् , तेन रुदितम्। परन्तु जाना, चलना अर्थ की धातुओं, अकर्मक धातुओं तथा श्लिष् , शी, स्था, आस् , वस् , जन् , रुह् , जॄ (वृद्ध होना) धातु से क्त प्रत्यय कर्तृवाच्य में भी होता है। अतः

---

१. शतृ एवं शानच् का प्रयोग प्रायः विशेषण रूप में ही होता है, मुख्य वर्तमान क्रिया के रूप में नहीं।

कर्ता में प्रथमा और कर्म में द्वितीया होती है। यथा, स गृहं गतः। स ग्रामं प्राप्तः। स भूतः। हरिः रमामाश्लिष्टः।

क्तवत् प्रत्यय अकर्मक और सकर्मक धातुओं से कर्तृवाच्य में ही होता है। उदाहरणार्थ सः पुष्पं दृष्टवान्, स हसितवान्, सा हसितवती।

परस्मैपद में शतृ और आत्मनेपद में शानच् होता है। ये प्रत्यय विशेषण रूप में होते हैं, मुख्य क्रिया के रूप में नहीं। यथा—शयानः बालकः (सोता हुआ लड़का), पठन् छात्रः (पढ़ता हुआ विद्यार्थी)। ये प्रत्यय भविष्यत् काल का भी बोध कराते हैं। यथा—पठिष्यन् छात्रः (वह छात्र जो पढ़ता हुआ होगा)।

सुबन्त शब्दों की रूपावली

अब सुबन्त (रामः, रामौ, रामाः आदि) शब्दों के रूप यहाँ दिए जा रहे हैं। सुबन्त शब्दों की सात विभक्तियों के तीन-तीन वचनों में २१ प्रत्ययों के मूल रूपों पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

विभक्तियों के मूलरूप

	ए० व०	द्वि व०	ब० व०
प्रथमा	स् (:)	औ	अस् (अः)
द्वितीया	अम्	औ	अः[1]
तृतीया	एन[2]	भ्याम्	भिः
चतुर्थी	ए[3]	भ्याम्	भ्यः
पञ्चमी	आत्[4]	भ्याम्	भ्यः
षष्ठी	स्य	ओस् (ओः)	आम्
सप्तमी	इ[5]	ओस् (ओः)	सु (षु)

१. अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त और ऋकारान्त शब्दों को दीर्घ होकर अन्त में 'न्' हो जाता है। यथा—रामान् आदि। २. इकारान्त, उकारान्त और ऋकारान्त शब्दों के अन्त में 'ना' होता है। यथा—कविना, साधुना आदि। ३. अकारान्त शब्दों के अन्त में 'आय' होता है। ४. इकारान्त, उकारान्त, ऋकारान्त शब्दों के पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में इ, उ, ऋ को गुण होकर 'स्' का विसर्ग (:) होता है। ५. इकारान्त तथा उकारान्त के अन्त में 'औ' और आकारान्त के 'याम्' हो जाता है।

शब्दों के रूप-पुँल्लिङ्ग

(१) राम

प्र०	रामः (राम)	रामौ (दो राम)	रामाः (बहुत राम)
द्वि०	रामम् (राम को)	रामौ (दो रामों को)	रामान् (रामों को)
तृ०	रामेण (राम से)	रामाभ्याम् (दो रामों से)	रामैः (रामों से)
च०	रामाय (राम के लिए)	रामाभ्याम् (दो रामों के०)	रामेभ्यः (रामों के लिए)
पं०	रामात् (राम से)	रामाभ्याम् (दो रामों से)	रामेभ्यः (रामों से)
ष०	रामस्य (राम का,के,की)	रामयोः (दो रामों का)	रामाणाम् (रामों का)
स०	रामे (राम में, पर)	रामयोः (दो रामों में)	रामेषु (रामों में)
सं०	हे राम (हे राम)	हे रामौ (हे दो रामो)	हे रामाः (हे रामो)

राम की भाँति इनके रूप चलते हैं—

नरः-मनुष्य	शिवः-शिव	वृषभः-बैल	कृष्णः-कृष्ण
शुकः-तोता	खड्गः-तलवार	नटः-नट	पुत्रः-पुत्र
अश्वः-घोड़ा	छात्रः-छात्र	बकः-बगला	मेघः-मेघ
मनुष्यः-मनुष्य	कालः-काल	गजः-हाथी	शिक्षकः-शिक्षक
ग्रहः-ग्रह	देवः-देव	मूर्खः-मूर्ख	जनकः-पिता
कूपः-कुआँ	विद्यालयः-विद्यालय	सूर्यः-सूर्य	ईश्वरः-ईश्वर
आम्रः-आम	खलः-दुष्ट	नृपः-राजा	करः-हाथ
कुक्कुरः-कुत्ता	चौरः-चोर	कपोतः-कबूतर	वृक्षः-पेड़
बालकः-लड़का	चापः-धनुष	मयूरः-मोर	मूषकः-चूहा
मीनः-मछली	दैत्यः-राक्षस	अनिलः-हवा	हस्तः-हाथ

(२) हरि (विष्णु, बन्दर)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	हरिः	हरी	हरयः
द्वि०	हरिम्	हरी	हरीन्

सूचना—इसी प्रकार समस्त अकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों के रूप 'राम' शब्द को तरह ही चलते हैं। केवल 'र' और 'ष' रखने वाले शब्दों के तृतीया एकवचन और षष्ठी बहुवचन में 'ण' होता है, अन्यत्र 'ण' के स्थान पर 'न' होगा।

तृ०	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
च०	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
पं०	हरेः	„	„
ष०	„	हर्योः	हरीणाम्
स०	हरौ	„	हरिषु
सं०	हे हरे	हे हरी	हे हरयः

इसी प्रकार—

मुनिः—मुनि	गिरिः—पर्वत	कविः—कवि
अरिः—शत्रु	कपिः—बन्दर	वह्निः—आग
रविः—सूर्य	निधिः—खजाना	नृपतिः—राजा
अग्निः—आग	असिः—तलवार	व्याधिः—बीमारी
मरीचिः—किरण	अतिथिः—मेहमान	विधिः—भाग्य
उदधिः—समुद्र	यतिः—योगी	पाणिः—हाथ

(३) सखि (मित्र)

प्र०	सखा	सखायौ	सखायः
द्वि०	सखायम्	„	सखीन्
तृ०	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
च०	सख्ये	„	सखिभ्यः
पं०	सख्युः	„	„
ष०	„	सख्योः	सखीनाम्
स०	सख्यौ	„	सखिषु
सं०	हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः

सूचना—केवल 'र' और 'ष' रखने वाले शब्दों के तृतीया एकवचन तथा षष्ठी बहुवचन में 'ण' रहता है, अन्यत्र 'ण' के स्थान पर 'न' होगा।

यद्यपि समस्त इकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों के रूप 'हरि' की तरह ही चलते हैं, तथापि 'पति' और 'सखि' के रूप विभिन्न प्रकार से चलते हैं। अतएव अब आगे इन शब्दों का रूप दिया जा रहा है।

(४) पति (स्वामी)

प्र०	पतिः	पती	पतयः
द्वि०	पतिम्	पती	पतीन्
तृ०	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
च०	पत्ये	,,	पतिभ्यः
पं०	पत्युः	,,	,,
ष०	,,	पत्योः	पतीनाम्
स०	पत्यौ	,,	पतिषु
सं०	हे पते	हे पती	हे पतयः

(५) शिशु (बच्चा)

प्र०	शिशुः	शिशू	शिशवः
द्वि०	शिशुम्	,,	शिशून्
तृ०	शिशुना	शिशुभ्याम्	शिशुभिः
च०	शिशवे	,,	शिशुभ्यः
पं०	शिशोः	,,	,,
ष०	,,	शिश्वोः	शिशूनाम्
स०	शिशौ	,,	शिशुषु
सं०	हे शिशो	हे शिशू	हे शिशवः

इसी प्रकार गुरुः (गुरु), भानुः (सूर्य), वायुः (वायु), इन्दुः (चन्द्रमा), पशुः (पशु), विष्णुः (विष्णु), रिपुः (शत्रु), शम्भुः (शम्भु), सिन्धुः, शत्रुः, मृत्युः, तरुः (वृक्ष), पांशुः (धूलि), मृदुः (कोमल), विधुः (चन्द्रमा), इषुः (बाण), सूनुः (पुत्र) आदि समस्त उकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों के रूप चलते हैं। केवल 'र' और 'ष' रखने वाले शब्दों के तृ० ए० व० तथा ष० ब० व० में 'न' के स्थान पर 'ण' होगा।

(६) कर्तृ (करने वाला)

प्र०	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
द्वि०	कर्तारम्	कर्तारौ	कर्तॄन्

तृ०	कर्त्रा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः
च०	कर्त्रे	,,	कर्तृभ्यः
पं०	कर्तुः	,,	,,
ष०	,,	कर्त्रोः	कर्तृणाम्
स०	कर्तरि	कर्त्रोः	कर्तृषु
सं०	हे कर्तः	हे कर्तारौ	हे कर्तारः

इसी प्रकार वक्तृ (बोलने वाला), रक्षितृ (रक्षक), भर्तृ (स्वामी), नेतृ (नेता), सवितृ (सूर्य), नप्तृ (नाती), जनयितृ (पैदा करने वाला), गन्तृ (जाने वाला), जेतृ (जीतने वाला), श्रोतृ (सुनने वाला) आदि समस्त ऋका-रान्त शब्दों के रूप 'कर्तृ' शब्द की तरह होते हैं।

(७) पितृ (पिता)

प्र०	पिता	पितरौ	पितरः
द्वि०	पितरम्	,,	पितॄन्
तृ०	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
च०	पित्रे	,,	पितृभ्यः
प०	पितुः	,,	,,
ष०	,,	पित्रोः	पितॄणाम्
स०	पितरि	,,	पितृषु
सं०	हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः

इसी प्रकार भ्रातृ (भाई), जामातृ (दामाद), देवृ (देवर), नृ (आदमी) शब्दों के रूप भी चलते हैं।

(८) गो (गाय या बैल)

प्र०	गौः	गावौ	गावः
द्वि०	गाम्	,,	गाः
तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
च०	गवे	,,	गोभ्यः
प०	गोः	,,	,,

ष०	गोः	गवोः	गवाम्
स०	गवि	,,	गोषु
सं०	हे गौः	हे गावौ	हे गावः

साधारणतया 'द्यौः' शब्द के अतिरिक्त अन्य कोई शब्द 'गौ' शब्द के समान नहीं चलता।

स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप

(१) बालिका (लड़की)

	ए० व०	द्वि०	ब० व०
प्र०	बालिका	बालिके	बालिकाः
द्वि०	बालिकाम्	,,	,,
तृ०	बालिकया	बालिकाभ्याम्	बालिकाभिः
च०	बालिकायै	,,	बालिकाभ्यः
पं०	बालिकायाः	,,	,,
ष०	,,	बालिकयोः	बालिकानाम्
स०	बालिकायाम्	,,	बालिकासु
सं०	हे बालिके	हे बालिके	हे बालिकाः

इसी प्रकार लता, रमा (लक्ष्मी), विद्या, अजा (बकरी), गङ्गा, कन्या, महिला, इच्छा, कान्ता (पत्नी), शोभा, निद्रा, प्रमदा (युवती), आज्ञा, क्षमा, क्रीडा (खेल), शिला (पत्थर), भार्या (पत्नी), व्यथा (कष्ट), कथा, प्रजा आदि समस्त शब्दों के रूप भी चलते हैं। 'अम्बा' शब्द का रूप 'बालिका' के समान ही होता है, केवल संबोधन के एकवचन में 'हे अम्ब' होता है।

(२) मति (बुद्धि)

प्र०	मतिः	मती	मतयः
द्वि०	मतिम्	,,	मतीः
तृ०	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
च०	मत्यै, मतये	,,	मतिभ्यः
पं०	मत्याः, मतेः	,,	,,

ष०	मत्याः, मतेः	मत्योः	मतीनाम्
स०	मत्याम् , मतौ	,,	मतिषु
सं०	हे मते	हे मती	हे मतयः

इसी प्रकार श्रुतिः (वेद), स्मृतिः (शास्त्र), भित्तिः (दीवार), सम्पत्तिः, विपत्तिः, शक्तिः, नीतिः, प्रीतिः, प्रकृतिः (स्वभाव), श्रेणिः (कक्षा), भूतिः (ऐश्वर्य), स्तुतिः (प्रशंसा), उन्नतिः, धूलिः, पंक्तिः, गतिः, कान्तिः, समृद्धिः (समृद्धि), नियतिः (भाग्य), मुक्तिः (मोक्ष), बुद्धिः (ज्ञान) आदि इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के भी रूप चलते हैं।

(३) नदी

प्र०	नदी	नद्यौ	नद्यः
द्वि०	नदीम्	,,	नदीः
तृ०	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
च०	नद्यै	,,	नदीभ्यः
पं०	नद्याः	,,	,,
ष०	,,	नद्योः	नदीनाम्
स०	नद्याम्	,,	नदीषु
सं०	हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्यः

इसी प्रकार जननी (माता), पुत्री (कन्या), रजनी (रात), सुन्दरी, राज्ञी (रानी), कुमारी, पत्नी, वापी (तालाब), पुरी (शहर), देवी, भगिनी (बहन), विभावरी (रात), कौमुदी (चन्द्रिका), प्राची (पूर्व), प्रतीची (पश्चिम), वाणी, उदीची (उत्तर) आदि ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप चलते हैं।

(४) स्त्री

प्र०	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
द्वि०	स्त्रियम्	,,	स्त्रीः
तृ०	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः
च०	स्त्रियै	,,	स्त्रीभ्यः

पं०	स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
ष०	,,	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
स०	स्त्रियाम्	,,	स्त्रीषु
सं०	हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः

(५) धेनु (गाय)

प्र०	धेनुः	धेनू	धेनवः
द्वि०	धेनुम्	,,	धेनूः
तृ०	धेन्वा धेनुना	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
च०	धेन्वै, धेनवे	,,	धेनुभ्यः
पं०	धेन्वाः, धेनोः	,,	,,
ष०	,, ,,	धेन्वोः	धेनूनाम्
स०	धेन्वाम् , धेनौ	,,	धेनुषु
सं०	हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः

इसी प्रकार रेणुः (धूल), तनुः (शरीर), चञ्चुः (चोंच), उडुः (तारा), रज्जुः (रस्सी), हनुः (ठोढ़ी) आदि उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के भी रूप चलते हैं।

(६) वधू (बहू)

प्र०	वधूः	वध्वौ	वध्वः
द्वि०	वधूम्	,,	वधूः
तृ०	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
च०	वध्वै	,,	वधूभ्यः
पं०	वध्वाः	,,	,,
ष०	,,	वध्वोः	वधूनाम्
स०	वध्वाम्	,,	वधूषु
सं०	हे वधु	हे वध्वौ	हे वध्वः

निम्नलिखित शब्दों के भी रूप इसी प्रकार चलते हैं—

चमूः (सेना), श्वश्रूः (सास), तनूः (शरीर), जम्बूः (जामुन का पेड़)।

(७) मातृ (माता)

प्र०	माता	मातरौ	मातरः
द्वि०	मातरम्	,,	मातॄः
तृ०	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
च०	मात्रे	,,	मातृभ्यः
पं०	मातुः	,,	,,
ष०	,,	मात्रोः	मातॄणाम्
स०	मातरि	,,	मातृषु
सं०	हे मातः	हे मातरौ	हे मातरः

'मातृ' शब्द भी 'पितृ' शब्द की भाँति चलता है, केवल द्वितीया के बहुवचन में अन्तर है, यथा—पितॄन् , मातॄः।

(८) नौ (नौका)

प्र०	नौः	नावौ	नावः
द्वि०	नावम्	नावौ	नावः
तृ०	नावा	नौभ्याम्	नौभिः
च०	नावे	नौभ्याम्	नौभ्यः
पं०	नावः	,,	,,
ष०	,,	नावोः	नावाम्
स०	नावि	,,	नौषु
सं०	हे नौः	हे नावौ	हे नावः

एवं ग्लौ (चन्द्रमा) के रूप भी 'नौ' शब्द की तरह चलेंगे।

नपुंसकलिंग शब्दों के रूप

(१) फल

प्र०	फलम्	फले	फलानि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	फलेन	फलाभ्याम्	फलैः
च०	फलाय	,,	फलेभ्यः

पं०	फलात्	फलाभ्याम्	फलेभ्यः
ष०	फलस्य	फलयोः	फलानाम्
स०	फले	,,	फलेषु
सं०	हे फल	हे फले	हे फलानि

इसी प्रकार मित्रम् (दोस्त), सुखम् , कुसुमम् , नेत्रम् (आँख), उद्यानम् , भोजनम् , पुष्पम् , वचनम्, विषम् (जहर), रत्नम् (मणि), जलजम् (कमल), मौनम् आदि शब्दों के रूप चलेंगे ।

(२) गृह (घर)

प्र०	गृहम्	गृहे	गृहाणि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	गृहेण	गृहाभ्याम्	गृहैः
च०	गृहाय	,,	गृहेभ्यः
पं०	गृहात्	,,	,,
ष०	गृहस्य	गृहयोः	गृहाणाम्
स०	गृहे	गृहयोः	गृहेषु
सं०	हे गृह	हे गृहे	हे गृहाणि

(३) वारि (जल)

प्र०	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
च०	वारिणे	,,	वारिभ्यः
पं०	वारिणः	,,	,,
ष०	,,	वारिणोः	वारीणाम्
स०	वारिणि	,,	वारिषु
सं०	हे वारि, वारे	हे वारिणी	हे वारीणि

एवं दधि (दही), अस्थि (हड्डी), सक्थि (जङ्घा) और अक्षि (आँख) शब्दों को छोड़कर सभी इकारान्त नपुंसक शब्दों के रूप 'वारि' शब्द के समान होते हैं ।

(४) दधि (दही)

प्र०	दधि	दधिनी	दधीनि
द्वि०	”	”	”
तृ०	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः
च०	दध्ने	”	दधिभ्यः
पं०	दध्नः	”	”
ष०	”	दध्नोः	दध्नाम्
स०	दध्नि	”	दधिषु
सं०	हे दधि (हे दधे)	हे दधिनी	हे दधीनि

एवं अस्थि, सक्थि और अक्षि के रूप 'दधि' के समान चलते हैं।

(५) मधु (शहद)

प्र०	मधु	मधुनी	मधूनि
द्वि०	”	”	”
तृ०	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
च०	मधुने	”	मधुभ्यः
पं०	मधुनः	”	”
ष०	”	मधुनोः	मधूनाम्
स०	मधुनि	”	मधुषु
सं०	हे मधु	हे मधुनी	हे मधूनि

इसी प्रकार दारु (लकड़ी), जानु (घुटना), अम्बु (पानी), वस्तु (चीज), वसु (धन), अश्रु (आंसू), जतु (लाख), श्मश्रु (दाढ़ी), सानु (पहाड़ की चोटी), त्रपु (रांगा), तालु आदि शब्दों के रूप चलते हैं।

अकारान्त पुँल्लिङ्ग सर्वनाम 'सर्व' (सब)

प्र०	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
द्वि०	सर्वम्	”	सर्वान्
तृ०	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
च०	सर्वस्मै	”	सर्वेभ्यः

पं०	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
ष०	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
स०	सर्वस्मिन्	,,	सर्वेषु
सं०	हे सर्व	हे सर्वौ	हे सर्वे

आकारान्त स्त्रीलिङ्ग 'सर्वा'

प्र०	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वि०	सर्वाम्	,,	,,
तृ०	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
च०	सर्वस्यै	,,	सर्वाभ्यः
पं०	सर्वस्याः	,,	,,
ष०	,,	सर्वयोः	सर्वासाम्
स०	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु
सं०	हे सर्वे	हे सर्वे	हे सर्वाः

इसी प्रकार विश्वा, अन्या, कतरा, कतमा, अन्यतरा, इतरा आदि।

पूर्व शब्द

	पुँल्लिङ्ग			स्त्रीलिङ्ग		
प्र०	पूर्वः	पूर्वौ	पूर्वे (पूर्वाः)	पूर्वा	पूर्वे	पूर्वाः
द्वि०	पूर्वम्	पूर्वौ	पूर्वान्	पूर्वाम्	पूर्वे	पूर्वाः
तृ०	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः	पूर्वया	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभिः
च०	पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः	पूर्वस्यै	,,	पूर्वाभ्यः
पं०	पूर्वस्मात्	पूर्वाभ्याम्	,,	पूर्वस्याः	,,	,,
ष०	पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्	,,	पूर्वयोः	पूर्वासाम्
स०	पूर्वस्मिन् (पूर्वे)	पूर्वयोः	पूर्वेषु	पूर्वस्याम्	,,	पूर्वासु
सं०	हे पूर्व	हे पूर्वौ	हे पूर्वे (पूर्वाः)	हे पूर्वे	हे पूर्वे	हे पूर्वाः

नपुंसकलिङ्ग

प्र०	पूर्वम्	पूर्वे	पूर्वाणि
द्वि०	पूर्वम्	पूर्वे	पूर्वाणि

शेष विभक्तियाँ पुँल्लिङ्ग के समान।

उभ (दोनों) नित्य द्विवचन

	पुं०	स्त्री०
प्र०	उभौ	उभे
द्वि०	उभौ	उभे
तृ०	उभाभ्याम्	उभाभ्याम्
च०	,,	,,
पं०	,,	,,
ष०	उभयोः	उभयोः
स०	उभयोः	उभयोः
सं०	हे उभे	हे उभे

'उभय' शब्द के रूप एकवचन तथा बहुवचन में ही होते हैं, यथा—

उभयः, उभये, उभयम्, उभयान्, उभयेन, उभयैः, उभयस्मै, उभयेभ्यः, आदि।

संस्कृत में लिङ्गों और वचनों का विचार

संस्कृत में लिङ्गों के विषय में बड़ी कठिनाई होती है। इसका मुख्य कारण है कि संस्कृत में लिङ्ग का सम्बन्ध केवल शब्द से रहता है अर्थात् उस शब्द से व्यक्त होने वाले अर्थ से लिङ्ग का सम्बन्ध नहीं रहता। यथा—

'दार' शब्द पुंलिङ्ग है किन्तु इसका अर्थ 'पत्नी' स्त्रीलिङ्ग है। अतः किसी शब्द के लिङ्ग का निर्णय उसके अर्थ के आधार पर नहीं किया जा सकता। इसका पूर्ण ज्ञान व्याकरणशास्त्र का सम्यक् अध्ययन कर चुकने पर ही हो पाता है और कोष-काव्य के अध्ययन से भी इसके सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

संस्कृत में तीन वचन होते हैं। एकवचन से 'एक' का बोध होता है। जाति या वर्ग का बोध कराना हो तो चाहे एकवचन बोले चाहे बहुवचन। दार (पत्नी), अप् (जल), वर्षा, सिकता (बालू), असु (प्राण), प्राण (प्राण) इत्यादि शब्द बहुवचनान्त ही होते हैं, परन्तु अर्थ में 'एक' ही का बोध कराते हैं।

आदरणीय व्यक्ति के विषय में आदर प्रकट करने के लिए भी कभी-कभी बहुवचन का प्रयोग करते हैं।

द्विवचन से 'दो' का बोध होता है। द्वय, द्वितय, युगल, युग, द्वन्द्व इत्यादि शब्द 'दो' का बोध कराते हैं परन्तु एकवचनान्त ही प्रयोग किए जाते हैं।

किसी देश का नाम बहुवचनान्त होता है, परन्तु यदि नाम के साथ 'देश' अथवा 'देश' शब्द का पर्यायवाची शब्द लगा होता है तो एकवचन ही होता है। यथा—मगधेषु, मगधदेशे।

प्रथम सोपान

प्रथम अभ्यास (कारक-विचार)

कर्ता (प्रथमा) (— , ने)

संज्ञा-शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पुँल्लिङ्ग	बालकः	बालकौ	बालकाः
स्त्रीलिङ्ग	रमा	रमे	रमाः
नपुंसकलिङ्ग	पुस्तकम्	पुस्तके	पुस्तकानि

सर्वनाम शब्द

(युष्मद्-अस्मद् शब्दों के रूप पुँल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग तथा नपुं० में एक समान होते हैं)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
उत्तम पुरुष — अस्मद्	अहम् (मैं)	आवाम् (हम दोनों)	वयम् (हम)
मध्यम पुरुष — युष्मद्	त्वम् (तू)	युवाम् (तुम दोनों)	यूयम् (तुम)

प्रथम पुरुष—

		एकवचन		द्विवचन		बहुवचन	
तत्	पुं०	सः	(वह)	तौ	(वे दो)	ते	(वे)
	स्त्री०	सा		ते		ताः	
	नपुं०	तत्		ते		तानि	
इदम्	पु०	अयम्	(यह)	इमौ	(ये दो)	इमे	(ये)
	स्त्री०	इयम्		इमे		इमाः	
	नपुं०	इदम्		इमे		इमानि	
किम्	पुं०	कः	(कौन ?)	कौ	(कौन दो ?)	के	(कौन सब?)
	स्त्री०	का		के		काः	
	नपुं०	किम्		के		कानि	
यत्	पुं०	यः		यौ		ये	(जो सब)
	स्त्री०	या		ये		याः	
	नपुं०	यत्		ये		यानि	

(१) भ्वादिगणीय हस्—(हँसना) परस्मैपद

वर्तमानकाल (लट्)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	हसति (वह हँसता है)	हसतः (वे दो हँसते हैं)	हसन्ति (वे हँसते हैं)
म०	हससि (तू हँसता है)	हसथः (तुम दो हँसते हो)	हसथ (तुम हँसते हो)
उ०	हसामि (मैं हँसता हूँ)	हसावः (हम दो हँसते हैं)	हसामः (हम हँसते हैं)

संक्षिप्त रूप

प्र०	(सः) अति	(तौ) अतः	(ते) अन्ति
म०	(त्वम्) असि	(युवाम्) अथः	(यूयम्) अथ
उ०	(अहम्) आमि	(आवाम्) आवः	(वयम्) आमः

इसी प्रकार कुछ भ्वादिगणीय धातुएँ

धातु	ए० व०	द्वि०	ब० व०
भू (भव)—होना	भवति	भवतः	भवन्ति
पठ्—पढ़ना	पठति	पठतः	पठन्ति
रक्ष्—रक्षाकरना	रक्षति	रक्षतः	रक्षन्ति
वद्—बोलना	वदति	वदतः	वदन्ति
पच्—पकाना	पचति	पचतः	पचन्ति
नम—झुकना, प्रणाम करना	नमति	नमतः	नमन्ति
गम् (गच्छ्)—जाना	गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति
दृश् (पश्य्)—देखना	पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
सद्—बैठना	सीदति	सीदतः	सीदन्ति
स्था—रुकना	तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति
पा—पीना	पिवति	पिबतः	पिवन्ति
घ्रा—सूघना	जिघ्रति	जिघ्रतः	जिघ्रन्ति
स्मृ—स्मरण करना	स्मरति	स्मरतः	स्मरन्ति
जि—जीतना	जयति	जयतः	जयन्ति

कर्ता—क्रिया के करने वाले को कर्ता कहते हैं। 'रामः हसति' (राम हँसता है) में 'हँसने' का काम राम करता है, अतएव राम कर्ता है।

कर्ता के अनुसार क्रिया का वचन और पुरुष होता है। जैसे, सः पठति (वह पढ़ता है), कर्ता प्रथम पुरुष एकवचन है तो क्रिया भी प्रथम पुरुष एकवचन होगी। कर्ता में प्रथमा विभक्ति आती है।

संस्कृत अनुवाद

इन वाक्यों को ध्यान से देखो—

(१) ते पठन्ति (वे सब पढ़ते हैं)।

(२) युवां वदथः (तुम दोनों बोलते हो)।

(३) अहं पश्यामि (मैं देखता हूँ)।

(४) भवन्तौ हसतः (आप दोनों हँसते हैं)।

प्रथम वाक्य में 'पठन्ति' क्रिया का कार्य 'ते' करता है, द्वितीय में 'वदथः' क्रिया का कार्य 'युवां' करता है, तृतीय में 'पश्यामि' क्रिया का कार्य 'अहं' करता है और चतुर्थ में 'हसतः' क्रिया का कार्य 'भवन्तौ' करता है। ये चारों ते, युवां, अहं, भवन्तौ कर्ता हैं क्योंकि क्रिया के करने वाले को कर्ता कहते हैं।

प्रथम वाक्य में 'पठन्ति' क्रिया प्रथम पुरुष के बहुवचन में है और उसका कर्ता 'ते' भी प्रथम पुरुष के बहुवचन में, द्वितीय वाक्य में 'वदथः' क्रिया मध्यम पुरुष के द्विवचन में है और उसका कर्ता 'युवां' भी मध्यम पुरुष के द्विवचन में है, तृतीय वाक्य में 'पश्यामि' क्रिया उत्तम पुरुष के एकवचन में है और उसका कर्ता 'अहं' भी उत्तम पुरुष के एकवचन में है, चतुर्थ वाक्य में 'हसतः' क्रिया प्रथम पुरुष के द्विवचन में है और उसका कर्ता 'भवन्तौ' भी प्रथम पुरुष के द्विवचन में हैं।

इसका निष्कर्ष यह निकला कि संस्कृत भाषा के अनुवाद करने में यदि कर्ता प्रथम पुरुष का हो तो क्रिया भी प्रथम पुरुष की होगी, यदि कर्ता मध्यम पुरुष का हो तो क्रिया भी मध्यम पुरुष की होगी और यदि कर्ता उत्तम पुरुष का हो तो क्रिया भी उत्तम पुरुष की होगी। पुनश्च यदि कर्ता एकवचन में होता है तो क्रिया भी एकवचन में, यदि कर्ता द्विवचन में होता है तो क्रिया भी द्विवचन में और यदि कर्ता बहुवचन में होता है तो क्रिया भी बहुवचन में होती है।

भवान्, भवन्तौ, भवन्तः के साथ क्रिया प्रथम पुरुष की आती है, मध्यम पुरुष की नहीं।

अँग्रेजी भाषा के वाक्य में पहले कर्ता, तदनन्तर क्रिया और अन्त में कर्म आता है, हिन्दी में सर्वप्रथम कर्ता, तदनन्तर कर्म और तब क्रिया आती है, किन्तु संस्कृत भाषा में विकारी शब्दों का बाहुल्य होने के कारण कोई ऐसा विशेष नियम नहीं है। 'छात्रः पठति' इसी वाक्य को हम 'पठति छात्रः' लिख या बोल सकते हैं। यह प्रणाली संस्कृत भाषा की अपनी विशेषता है।

उपर्युक्त वाक्यों में क्रिया का पुरुष और वचन कर्ता के अनुसार है, अत एव इन वाक्यों को कर्तृवाच्य कहते हैं।

संस्कृत में अनुवाद करो—

(क) १—मैं जाता हूँ। २—राजा रक्षा करता है। ३—जब (यदा) छात्र पढ़ते रहते हैं, वह बोला करता है। ४—तुम देखते हो। ५—हम दोनों पीते हैं। ६—तुम दोनों हँसते हो। ७—हम पकाते हैं। ८—वे बैठते हैं। ९—तुम दोनों रुकते हो। १०—मैं सूँघता हूँ। ११—आप याद करते हैं। १२—कृष्ण जीतता है।

(ख) १—तुम क्यों नहीं जाते हो? २—आप सब (भवन्तः) कहाँ (कुत्र) जाते हैं? ३—आप क्या देखती हैं? ४—आप दोनों क्यों बोलते हैं? ५—मैं क्या सूँघता हूँ? ६—आप लोग क्यों नहीं रुकते? ७—लड़की क्या पकाती है? ८—तुम क्यों बोलते हो? ९—मैं नहीं बोलता हूँ? १०—तुम क्यों नहीं जीतते हो? ११—दो राजा रक्षा करते हैं। १२—तू क्यों नहीं याद करता है। १३—वे दोनों जोर से (उच्चैः) बोलते हैं। १४—आप क्यों हँसती हैं? १५—वे दोनों कहाँ रुकते हैं? १६—हम दोनों नहीं पकाते हैं। १७—माता रक्षा करती है। १८—ईश्वर रक्षा करता है। १९—मैं जीतता नहीं हूँ। २०—हम नहीं बैठते हैं। २१—पुत्र होता है। २२—मैं नमस्कार करता हूँ।

द्वितीय अभ्यास

अनद्यतनभूतकाल (लङ्)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अहसत् (वह हँसा)	अहसताम् (वे दोनों हँसे)	अहसन् (वे हँसे)
म०	अहसः (तू हँसा)	अहसतम् (तुम दोनों हँसे)	अहसत (तुम हँसे)
उ०	अहसम् (मैं हँसा)	अहसाव (हम दोनों हँसे)	अहसाम (हम हँसे)

संक्षिप्तरूप

प्र०	(सः) अत्	(तौ) अताम्	(ते) अन्
म०	(त्वम्) अः	(युवाम्) अतम्	(यूयम्) अत
उ०	(अहम्) अम्	(आवाम्) आव	(वयम्) आम

इसी प्रकार :—

धातु	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
भू—होना	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
पठ्—पढ़ना	अपठत्	अपठताम्	अपठन्
रक्ष्—रक्षा करना	अरक्षत्	अरक्षताम्	अरक्षन्
वद्—बोलना	अवदत्	अवदताम्	अवदन्
पच्—पकाना	अपचत्	अपचताम्	अपचन्
नम्—झुकना, प्रणाम करना	अनमत्	अनमताम्	अनमन्
गम्—जाना	अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्
दृश्—देखना	अपश्यत्	अपश्यताम्	अपश्यन्
सद्—बैठना	असीदत्	असीदताम्	असीदन्
स्था—रुकना	अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्
पा—पीना	अपिबत्	अपिबताम्	अपिबन्
घ्रा—सूँघना	अजिघ्रत्	अजिघ्रताम्	अजिघ्रन्
स्मृ—स्मरण करना	अस्मरत्	अस्मरताम्	अस्मरन्
जि—जीतना	अजयत्	अजयताम्	अजयन्

भूतकाल—भूतकाल के लिए संस्कृत में तीन लकार हैं—लिट् लकार, लङ् लकार, लुङ् लकार। वक्ता के बोलने के २४ घण्टा पहले जो हो गया हो तथा वक्ता ने जिसका प्रत्यक्ष नहीं किया हो उसके लिए लिट् लकार प्रयुक्त होता है। वक्ता के बोलने के २४ घण्टा पहले जो हो गया हो तथा वक्ता ने जिसका साक्षात् किया हो उसके लिए लङ्लकार प्रयुक्त होता है। यहाँ सभी प्रकार के भूत काल के लिए लुङ् लकार प्रयुक्त होता है। अत्यन्त प्राचीन काल में उपर्युक्त विभाग के अनुकूल ही भूतकाल के इन लकारों का प्रयोग होता था; परन्तु आजकल इनके प्रयोगों के लिए कोई निश्चित नियम नहीं है। किसी प्रकार के भूतकाल के लिए इन

तीनों लकारों में से लोग किसी का प्रयोग कर बैठते हैं। प्रायः भूतकाल में लङ् का ही प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक होता है।

भूतकाल के लङ् का प्रयोग करते समय विद्यार्थी प्रायः भूल करते हैं। वे 'राम ने पढ़ा' का अनुवाद 'रामेण अपठत्' कर देते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि 'राम ने' का अनुवाद 'रामः' होगा क्योंकि प्रथमा विभक्ति का भी अर्थ 'ने' है, अत एव इस वाक्य का अनुवाद 'रामः अपठत्' होगा।

उदाहरणार्थ—

१—सः अपठत् (उसने पढ़ा)। २—तौ अहसताम् (वे दोनों हँसे)। ३—अहम् अपठम् (मैंने पढ़ा)। ४—ते अगच्छन् (वे गए)। ५—युवाम् अवदतम् (तुम दोनों ने कहा)।

संस्कृत में अनुवाद करो—

(क) १—तुमने पढ़ा। २—वह गया। ३—मैंने नमस्कार किया। ४—वे दोनों बैठे। ५—लड़की ने पकाया। ६—तुम दोनों ने पिया। ७—लड़के ने सूँघा। ८—राजा ने रक्षा की। ९—उसने कहा। १०—उन दोनों ने क्या कहा? ११—पुत्र हुआ। १२—लड़के ने देखा। १३—हम दोनों गए। १४—तुम कहाँ गए थे? १५—राजा ने जीता।

(ख) १—ईश्वर ने रक्षा की। २—तुम दोनों ने क्यों नहीं स्मरण किया? ३—लड़के ने क्यों नहीं पिया। ४—तुम कहाँ बैठे? ५—मैंने देखा। ६—पिता ने (जनकः) कहा। ७—वे दो कहाँ गए। ८—विद्यार्थियों ने क्यों नहीं पढ़ा? ९—तुम नहीं हँसे। १०—उसने कुछ नहीं (किमपि न) पढ़ा।

तृतीय अभ्यास

सामान्य भविष्यत् (लृट्)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	हसिष्यति (वह हंसेगा)	हसिष्यतः (वे दो हंसेंगे)	हसिष्यन्ति (वे हंसेंगे)
म०	हसिष्यसि (तू हंसेगा)	हसिष्यथः (तुम दो हंसोगे)	हसिष्यथ (तुम हंसोगे)
उ०	हसिष्यामि (मैं हँसूंगा)	हसिष्यावः (हम दो हंसेंगे)	हसिष्यामः (हम हंसेंगे)

संक्षिप्त रूप

प्र०	(सः) इष्यति	(तौ) इष्यतः	(ते) इष्यन्ति
म०	(त्वम्) इष्यसि	(युवाम्) इष्यथः	(यूयम्) इष्यथ
उ०	(अहम्) इष्यामि	(आवाम्) इष्यावः	(वयम्) इष्यामः

इसी प्रकार

धातु	ए० व०	द्वि व०	ब० व०
भू—होना	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
पठ्—पढ़ना	पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति
रक्ष्—रक्षा करना	रक्षिष्यति	रक्षिष्यतः	रक्षिष्यन्ति
वद्—बोलना	वदिष्यति	वदिष्यतः	वदिष्यन्ति
पच्—पकाना	पक्ष्यति	पक्ष्यतः	पक्ष्यन्ति
नम्—झुकना, प्रणाम करना	नंस्यति	नंस्यतः	नंस्यन्ति
गम्—जाना	गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति
दृश्—देखना	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
सद्—बैठना	सत्स्यति	सत्स्यतः	सत्स्यन्ति
स्था—रुकना	स्थास्यति	स्थास्यतः	स्थास्यन्ति
पा—पीना	पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति
घ्रा—सूंघना	घ्रास्यति	घ्रास्यतः	घ्रास्यन्ति
स्मृ—स्मरण करना	स्मरिष्यति	स्मरिष्यतः	स्मरिष्यन्ति
जि—जीतना	जेष्यति	जेष्यतः	जेष्यन्ति

भविष्यत् काल—भविष्य काल की क्रिया का बोध कराने के लिए दो लकार हैं—लृट् (सामान्य भविष्य) और लुट् (अनद्यतन भविष्य)। परन्तु यह अन्तर भी व्यवहार में अब नहीं रहा। लुट् का प्रयोग बहुत कम होता है। केवल लृट का ही प्रयोग होता है।

लृट् बनाने का आसान तरीका यह है कि शुद्ध धातु पर 'इ' लगाकर आगे 'ष्य' रखो और फिर लट् लकार की तरह 'ति', 'त.' 'न्ति' आदि प्रत्यय जोड़ दो।

विशेष—कुछ ऐसी भी धातुएं हैं जिनमें 'इ' नहीं लगता, ऐसी दशा में शुद्ध धातु के आगे 'स्यति', 'स्यतः', 'स्यन्ति' जोड़ दो। यथा—पास्यति (पीवेगा)।

उदाहरणार्थ

१—अहं गमिष्यामि (मैं जाऊँगा)। २—बालकाः पठिष्यन्ति (लड़के पढ़ेंगे)। ३—त्वं हसिष्यसि (तू हँसेगा)। ४—तौ पास्यतः (वे दो पीवेंगे)। ५—ते स्मरिष्यन्ति (वे याद करेंगे)। ६—नृपः जेष्यति (राजा जीतेगा)।

संस्कृत में अनुवाद करो—

(क) १—माता पकायेगी। २—मैं प्रणाम करूँगा। ३—वे दोनों सूँघेंगे। ४—वह पढ़ेगा। ५—मैं हँसूँगा। ६—वह रक्षा करेगा। ७—मैं देखूँगा। ८—तू नमस्कार करेगा। ९—वह पकाएगा। १०—वे दोनों स्मरण करेंगे। ११—दो राजा जीतेंगे। १२—तू बैठेगा। १३—वह बोलेगा। १४—लड़कियाँ पकायेंगी। १५—अतिथि रुकेगा।

(ख) १—वह क्यों नहीं जायगा? २—मैं कल आऊँगा। ३—ईश्वर रक्षा करेगा। ४—तुम नहीं जीतोगे। ५—विद्यार्थी यहाँ पढ़ेंगे। ६—मैं नहीं हँसूंगा। ७—बच्चा नहीं बोलेगा। ८—तुम क्यों नहीं प्रणाम करोगे? ९—वे यहाँ नहीं रुकेंगी, मैं रुकूंगा। १०—पुत्र होगा। ११—मैं याद करूंगा। १२—तुम क्यों नहीं याद करोगे? १३—मैं नहीं बोलूंगा।

चतुर्थ अभ्यास

आज्ञार्थक लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	हसतु (वह हंसे)	हसताम् (वे दो हंसें)	हसन्तु (वे हंसें)
म०	हस (तू हंस)	हसतम् (तुम दो हंसो)	हसत (तुम हंसो)
उ०	हसानि (मैं हंसूं)	हसाव (हम दो हंसें)	हसाम (हम हंसें)

संक्षिप्त रूप

प्र०	(सः) अतु	(तौ) अताम्	(ते) अन्तु
म०	(त्वम्) अ	(युवाम्) अतम्	(यूयम्) अत
उ०	(अहम्) आनि	(आवाम्) आव	(वयम्) आम

इसी प्रकार—

धातु	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
भू—होना	भवतु	भवताम्	भवन्तु
पठ्—पढ़ना	पठतु	पठताम्	पठन्तु
रक्ष्—रक्षा करना	रक्षतु	रक्षताम्	रक्षन्तु
वद्—बोलना	वदतु	वदताम्	वदन्तु
पच्—पकाना	पचतु	पचताम्	पचन्तु
नम्—झुकना, प्रणाम करना	नमतु	नमताम्	नमन्तु
गम्—जाना	गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु
दृश्—देखना	पश्यतु	पश्यताम्	पश्यन्तु
सद्—बैठना	सीदतु	सीदताम्	सीदन्तु
स्था—रुकना	तिष्ठतु	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु
पा—पीना	पिबतु	पिबताम्	पिबन्तु
घ्रा—सूंघना	जिघ्रतु	जिघ्रताम्	जिघ्रन्तु
स्मृ—स्मरण करना	स्मरतु	स्मरताम्	स्मरन्तु
जि—जीतना	जयतु	जयताम्	जयन्तु

आज्ञार्थक लोट्—विधिलिङ् और लोट् लकार आज्ञा, अनुज्ञा, प्रार्थना, निमन्त्रण आदि के अर्थों के सूचक हैं। आशीर्वाद के अर्थ में भी लोट् लकार प्रयुक्त होता है।

उदाहरणार्थ

१—बालिका गच्छतु (लड़की जावे)। २—बालकाः पठन्तु (लड़के पढ़ें)। ३—ईश्वरः रक्षतु (ईश्वर रक्षा करे)। ४—यूयम् पठत (तुम पढ़ो)। ५—कन्याः पचन्तु (लड़कियाँ पकावें)। ६—पठाम किम् (क्या हम पढ़ें)। ७—इदानीं छात्राः गच्छन्तु (इस समय विद्यार्थी जायें)।

(विशेष अध्ययन के लिए आगे क्रिया-प्रकरण देखिए)

संस्कृत में अनुवाद करो

१—विद्यार्थी पढ़े। २—तुम स्मरण करो। ३—राजा जीते। ४—मैं पकाऊँ। ५—तू देख। ६—पुत्र हो। ७—राजा रक्षा करे। ८—तुम दोनों

हँसो। ९—क्या हम हँसें ? १०—हम दोनों पढ़ें। ११—तुम बोलो। १२—१२—सुशीला पकावे। १३—तुम नमस्कार करो। १४—वे जायँ। १५—हम देखें। वे बैठें। १७—तुम दोनों रुको। १८—बालक पिए। १९—वे सूँघें। २०—मैं याद करूँ। २१—हँसो मत, पढ़ो। २२—तुम जाओ। २३—सभी (सर्वे) सुखी (सुखिनः) हों। २४—सभी नीरोग (निरामयाः) हों (सन्तु)। २५—वे न हँसें, पढ़ें।

पञ्चम अभ्यास

कर्मकारक (द्वितीया) 'को'

संज्ञा शब्द

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
पुं०	बालकम्	बालकौ	बालकान्
स्त्री०	रमाम्	रमे	रमाः
नपुं०	पुस्तकम्	पुस्तके	पुस्तकानि

सर्वनाम-शब्द

	पुँल्लिङ्ग			स्त्रीलिङ्ग		
शब्द	ए०व०	द्विव०	ब०व०	ए०व०	द्वि०व०	ब०व०
अस्मद्	माम्	आवाम्	अस्मान्	माम्	आवाम्	अस्मान्
युष्मद्	त्वाम्	युवाम्	युष्मान्	त्वाम्	युवाम्	यु'मान्
तद्	तम्	तौ	तान्	ताम्	ते	ताः
इदम्	इमम्	इमौ	इमान्	इमाम्	इमे	इमाः
किम्	कम्	कौ	कान्	काम्	के	काः
यद्	यम्	यौ	यान्	याम्	ये	याः
भवत्	भवन्तम्	भवन्तौ	भवतः	भवतीम्	भवत्यौ	भवती

आज्ञार्थक विधिलिङ्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	हसेत्	हसेताम्	हसेयुः
म०	हसेः	हसेतम्	हसेत
उ०	हसेयम्	हसेव	हसेम

संक्षिप्त रूप

प्र०	(सः) एत्	(तौ) एताम्	(ते) एयुः
म०	(त्वम्) एः	(युवाम्) एतम्	(यूयम्) एत
उ०	(अहम्) एयम्	(आवाम्) एव	(वयम्) एम

इसी प्रकार—

धातु	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
भू—होना	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
पठ्—पढ़ना	पठेत्	पठेताम्	पठेयुः
रक्ष्—रक्षा करना	रक्षेत्	रक्षेताम्	रक्षेयुः
वद्—बोलना	वदेत्	वदेताम्	वदेयुः
पच्—पकाना	पचेत्	पचेताम्	पचेयुः
नम्—झुकना, नमस्कार करना	नमेत्	नमेताम्	नमेयुः
गम्—जाना	गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयुः
दृश्—देखना	पश्येत्	पश्येताम्	पश्येयुः
सद्—बैठना	सीदेत्	सीदेताम्	सीदेयुः
स्था—रुकना	तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः
पा—पीना	पिबेत्	पिबेताम्	पिबेयुः
घ्रा—सूंघना	जिघ्रेत्	जिघ्रेताम्	जिघ्रेयुः
स्मृ—स्मरण करना	स्मरेत्	स्मरेताम्	स्मरेयुः
जि—जीतना	जयेत्	जयेताम्	जयेयुः

निम्नलिखित वाक्यों को ध्यान से पढ़ो—

(१) अहं गुरुं नमेयम् (मैं गुरु को नमस्कार करूँ)।
(२) भूपतिः शत्रून् जयेत् (राजा शत्रु को जीते)।
(३) गुरुः शिशुं प्रश्नं पृच्छेत् (गुरु शिशु से प्रश्न पूछे)।
(४) इन्दुः सुधां वर्षेत् (चन्द्रमा अमृत की वर्षा करे)।
(५) बालकः दुग्धं पिबेत् (बालक दूध पीवे)।

कर्म

कर्ता जिसको (व्यक्ति, वस्तु या क्रिया को) बहुत चाहता है, उसे कर्म कहते हैं (कर्तुरीप्सिततमं कर्म)।

"जिस वस्तु या पुरुष के ऊपर क्रिया का फल (प्रभाव) समाप्त होता है, उसे कर्म कहते हैं"—यह हिन्दी तथा अंग्रेजी में कर्मकारक का लक्षण बतलाया जाता है, परन्तु कर्म का यह लक्षण ठीक नहीं क्योंकि साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण आते हैं जिन पर क्रिया का फल समाप्त तो होता है, पर वे कर्मकारक नहीं माने जाते। उदाहरणार्थ 'वह घर जाता है।' यहाँ यद्यपि 'जाने' का कार्य 'घर' पर समाप्त होता है तथापि 'घर' साधारणतः कर्म नहीं माना जाता है। संस्कृत में भी 'घर' को साधारण नियमों के अनुसार कर्म नहीं माना जाता, न 'जाना' को ही सकर्मक क्रिया माना जाता है। 'घर' को कर्म मानने के लिए साधारण नियमों के अतिरिक्त विशेष नियम हैं।

कर्ता जिस क्रियान्वयी पदार्थ को अपने व्यापार से प्राप्त करने के लिए सबसे अधिक चाह या इच्छा रखता है, उसे कर्म कहते हैं। कर्ता की इच्छा का ही प्राधान्य कर्म निर्धारण में निर्णायक होता है, न कि कर्ता से अतिरिक्त अन्य किसी की इच्छा का प्राधान्य।

जिस पदार्थ को कर्म की संज्ञा प्रदान की जायगी, वह कर्ता की क्रियाविशेष द्वारा कर्ता को अभीष्टतम् होना चाहिए। तात्पर्य है कि यदि उसी क्रिया से कई पदार्थ ऐसे सम्बद्ध हों जिन सभी की सामान्य इच्छा कर्ता रखता है तो उन सबों में जो सबसे अधिक ईप्सित होगा, वही कर्म संज्ञा का अधिकारी होगा। यथा 'पयसा ओदनं भुंक्ते'—इस वाक्य में कर्ता को दूध भी भात की ही तरह प्रिय है, परन्तु कर्ता अपने भोजन व्यापार द्वारा जिसको सबसे अधिक चाहता है, वह भात है। दूध तो केवल भोजन-क्रिया के सम्पादन में सहायक है।

कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति होती है (कर्मणि द्वितीया)।

उपपद विभक्तियाँ

कारकों से सदैव विभक्तियों का ही निर्देश नहीं होता, अपितु ये विभक्तियाँ वाक्य में अन्तरा, सह आदि निपातों तथा नमः, अलम् आदि अव्ययों के

योग से भी व्यवहृत होती हैं। ऐसी दशा में ये 'उपपद विभक्तियाँ' कहलाती हैं।

उपपद विभक्तियों के उदाहरण—

(१) गमनार्थक धातुओं के योग में जहाँ जाया जाता है, उसमें द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—

सः विद्यालयं गच्छति (वह विद्यालय जाता है)।

(२) अभि एवं नि पूर्वक विश् धातु के योग में आधार वाचक शब्द में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है (अभिनिविशश्च)। यथा—

सन्मार्गम् अभिनिविशते (वह अच्छे मार्ग का अनुसरण करता है)।

(३) उप, अनु, अधि एवं आङ् (आ) पूर्वक वस् धातु के आधार वाचक शब्द में द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त होती है (उपान्वध्याङ्वसः)। यथा—

हरिः वैकुण्ठम् उपवसति हरिः वैकुण्ठम् अनुवसति हरिः वैकुण्ठम् अधिवसति हरिः वैकुण्ठम् आवसति	हरि वैकुण्ठ में वास करते हैं।

विशेष—यदि उपवस् का अर्थ उपवास करना हो तो आधार वाचक शब्द में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग किया जाता हैं।

(४) अन्तरा और अन्तरेण के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है (अन्तरान्तरेण युक्ते) यथा—

अन्तरा त्वां मां हरिः (तुम्हारे हमारे बीच में हरि हैं)।

ज्ञानमन्तरेण नैव सुखम् (ज्ञान के बिना सुख नहीं है)।

(५) विना एवं ऋते अव्यय के योग में द्वितीया विभक्ति आती है। यथा—

ज्ञानं विना ऋते वा सुखं नास्ति (ज्ञान के बिना सुख नहीं है)।

(६) उभयतः, सर्वतः, धिक्, उपर्युपरि, अधोऽधः एवं अध्यधि शब्दों की जिससे सन्निकटता पायी जाती है, उसमें द्वितीया विभक्ति होती है[1]। यथा—

उभयतः कृष्णं गोपाः (कृष्ण के दोनों ओर ग्वाले हैं)।

---

1. उभसर्वतसोः कार्याधिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते॥

सर्वतः कृष्णं गोपाः (कृष्ण के सभी ओर ग्वाले हैं)।
धिक् दुर्जनम् (दुर्जन को धिक्कार है)।
उपर्युपरि लोकं हरिः (हरि लोक के ठीक ऊपर हैं)।
अधोऽधो लोकं पातालः (पाताल, लोक के ठीक नीचे है)।
अध्यधि लोकम् (संसार के ठीक नीचे)।

विशेष—कभी कभी धिक् के योग में प्रथमा विभक्ति अथवा सम्बोधन का भी प्रयोग किया जाता है। यथा—
धिङ् मूढ (ऐ मूर्ख ! धिक्कार है)।

(७) अभितः, परितः, समया, निकषा, हा, प्रति और यावत् के योग में भी द्वितीया विभक्ति आती है। यथा—

परिजनः राजानाम् अभितः तस्थौ (नौकर राजा के चारों ओर खड़े थे)।
रक्षांसि वेदीं परितो निरास्थत् (राक्षसों को वेदी के चारों ओर से निकाल दिया)।

ग्रामं समया निकषा वा (ग्राम के समीप)।
हा शठम् (हाय शठ !)।
मातुः हृदयं कन्यां प्रति स्निग्धं भवति (माता का हृदय कन्या की ओर (कन्या के प्रति) कोमल होता है)।
सः वनं यावत् अगच्छत् (वह वन तक गया)।

(८) समय तथा दूरी को बतलाने वाले शब्दों में नैरन्तर्य बतलाने के लिए द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त होती है (कालाध्वनोरत्यन्त संयोगे)। यथा—
क्रोशं कुटिला नदी (नदी कोस भर तक टेढ़ी है)।
चत्वारि वर्षाणि वेदम् अपठत् (चार वर्ष तक वेद पढ़ा)।

(९) अधि उपसर्गपूर्वक शी, स्था एवं आस् धातु के योग में आधार वाचक स्थान या वस्तु में द्वितीया होती है (अधिशीङ् स्थासां कर्म) यथा—
गुरुः आसनम् अधितिष्ठति, अध्यास्ते, अधिशेते वा (गुरु आसन पर बैठता है या सोता है)।

(१०) (क्रिया विशेषण शब्द में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—
अश्वः सत्वरं धावति (घोड़ा तेजी से दौड़ता है)।

(११) एनप् प्रत्ययान्त शब्द की जिससे सन्निकटता प्रतीत होती है, उसमें द्वितीया या षष्ठी होती है। यथा—

ग्रामं ग्रामस्य वा दक्षिणेन (गाँव के दक्षिण की ओर)।

उत्तरेण नदीम् (नदी के उत्तर)।

तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयम् (वहाँ पर कुबेर के महल के उत्तर मेरा घर है)।

(१२) नाम धरना, चुनना, बनाना, नियुक्त करना, निर्वाचित करना, जानना, समझना, पुकारना इत्यादि अर्थ वाली धातुएँ दो कर्म की अपेक्षा करती हैं। उनमें एक प्रत्यक्ष कर्म होता है और दूसरा अप्रत्यक्ष, दोनों में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—

त्वामामनन्ति पुरुषाः प्रकृतिम् (तुम्हें लोग प्रकृति मानते हैं)।

स त्वां मूर्खं जानाति (वह तुम्हें मूर्ख समझता है)।

मुनिः तं मूषिकं सिंहं कृतवान् (मुनि ने उस चूहे को सिंह बना दिया)।

द्विकर्मक धातुएँ—दुह् , याच् , पच् , दण्ड् , रुध् , प्रच्छ् , चि, ब्रू , शास् , जि, मन्थ् , मुष् , नी, हृ, कृष् , वह् तथा इन धातुओं के समान अर्थ रखने वाली धातुएँ द्विकर्मक होती हैं। इनके साथ दो कर्म होते हैं।

(१) गां दोग्धि पयः (गाय से दूध दुहता है)।

(२) बलिं याचते वसुधाम् (बलि से पृथ्वी माँगता है)।

(३) तण्डुलान् ओदनं पचति (चावलों से भात पकाता है)।

(४) लुण्ठकान् सहस्रं दण्डितवान् (लुटेरों पर हजार रुपया दण्ड लगाया)।

(५) व्रजमवरुणद्धि गाम् (गाय को गोष्ठ में घेरता है।

(६) शिष्यः गुरुं धर्मं पृच्छति (शिष्य गुरु से धर्म पूछता है)।

(७) वृक्षमवचिनोति पुष्पाणि (पेड़ से फूलों को एकत्र करता है)।

(८) माणवकं धर्मं ब्रूते (बटुक से धर्म की बात कहता है)।

(९) शिष्यं धर्मं शास्ति (शिष्य को धर्म की बात बताता है)।

(१०) प्रद्युम्नं शतं जयति (प्रद्युम्न से सौ जीतता है)।

(११) सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति (क्षीरसागर से अमृत मथता है)।

(१२) रामं शतं मुष्णाति (राम से सौ चुराता है)।

(१३-१४) सः ग्राममजां नयति वहति वा (वह गाँव को बकरी ले जाता है।

(१५) कृपणं धनमहरत् (कंजूस का धन ले गया)।

(१६) वृषम् क्षेत्रं कर्षति (बैल को खींचकर खेत में ले जाता है)।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—राजा नगर में प्रवेश करता है। २—राजा और सारथि के बीच में ब्राह्मण है। ३—भोजन के बिना बल नहीं। ४—पुत्र के बिना सुख नहीं। ५—दुर्जन अच्छे मार्ग का आश्रय नहीं लेता है। ६—गुरु के चारों ओर शिष्य हैं। ७—संसार के ऊपर शम्भु हैं। ८—शिशु के प्रति दया करो। ९—प्रमदा को धिक्कार है। १०—रमा गाय से दूध दुहती है। ११—वामन बलि से भूमि माँगता है। १२—वह चावलों से भात पकाती है। १३—राजा चोर को सौ रुपयों का दण्ड देता है। १४—दुष्ट गाय को वन में घेरता है। १५—आचार्य शिष्य से प्रश्न पूछता है। १६—माली (मालाकारः) पेड़ से फूल चुनता है। १७—बालक रमा से एक हजार रुपए जीतता है। १८—नौकर (भृत्यः) गाँव को बोझा ले जाता है। १९—मनुष्य पृथ्वी से रत्न निकालते हैं। २०—दो बालक शय्या पर लेटे हैं। २१—क्या राजा सिंहासन पर बैठा है? २२—नदी कोस भर है। २३—वह चौदह वर्ष तक लगातार अध्ययन करता है। २४—कुत्ता तेजी से दौड़ता है। २५—वह तुम्हें मूर्ख समझता है।

षष्ठ अभ्यास

करण कारक (तृतीया) ने, से, द्वारा संज्ञा शब्द

	ए० व०	द्वि व०	ब० व०
पुं०	बालकेन	बालकाभ्याम्	बालकैः
स्त्री०	रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः
नपुं०	पुस्तकेन	पुस्तकाभ्याम्	पुस्तकैः

पुँल्लिङ्ग			स्त्रीलिङ्ग		
ए० व०	द्वि व०	ब० व०	ए० व०	द्विव०	ब० व०
मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
तेन	ताभ्याम्	तैः	तया	ताभ्याम्	ताभिः
अनेन	आभ्याम्	एभिः	अनया	आभ्याम्	आभिः
केन	काभ्याम्	कैः	कया	काभ्याम्	काभिः
येन	याभ्याम्	यैः	यया	याभ्याम्	याभिः
भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः	भवत्या	भवतीभ्याम्	भवतीभिः

अदादिगणीय अस् (होना) परस्मैपद

वर्तमानकाल (लट्)

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	अस्ति (वह है)	स्तः (वे दो हैं)	सन्ति (वे हैं)
म०	असि (तू है)	स्थः (तुम दो हो)	स्थ (तुम हो)
उ०	अस्मि (मैं हूँ)	स्वः (हम दो हैं)	स्मः (हम हैं)

अनद्यतनभूत (लङ्)

प्र०	आसीत् (वह था)	आस्ताम् (वे दो थे)	आसन् (वे थे)
म०	आसीः (तू था)	आस्तम् (तुम दो थे)	आस्त (तुम थे)
उ०	आसम् (मैं था)	आस्व (हम दो थे)	आस्म (हम थे)

आज्ञार्थक लोट

प्र०	अस्तु	स्ताम्	सन्तु
म०	एधि	स्तम्	स्त
उ०	असानि	असाव	असाम

भविष्यत् काल (लृट्) भविष्यति भविष्यतः, भविष्यन्ति आदि ।

विधिलिङ्

प्र०	स्यात्	स्याताम्	स्युः
म०	स्याः	स्यातम्	स्यात
उ०	स्याम्	स्याव	स्याम

अद् (खाना) लट्

प्र०	अत्ति	अत्तः	अदन्ति
म०	अत्सि	अत्थः	अत्थ
उ०	अद्मि	अद्वः	अद्मः

अनद्यतनभूत (लङ्)

प्र०	आदत्	आत्ताम्	आदन्
म०	आदः	आत्तम्	आत्त
उ०	आदम्	आद्व	आद्म

आज्ञार्थक लोट्

प्र०	अत्तु	अत्ताम्	अदन्तु
म०	अद्धि	अत्तम्	अत्त
उ०	अदानि	अदाव	अदाम

विधिलिङ्

प्र०	अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः
म०	अद्याः	अद्यातम्	अद्यात
उ०	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

भविष्यत् काल अत्स्यति, अत्स्यतः, अत्स्यन्ति आदि।

अदादिगणीय कुछ धातुएँ

धातु	लट्	लङ्	लृट्	लोट्	विधिलिङ्
दुह्—दुहना	दोग्धि	अधोक्-ग्	धोक्ष्यति	दोग्धु	दुह्यात्
रुद्—रोना	रोदिति	अरोदीत्, अरोदत्	रोदिष्यति	रोदितु	रुद्यात्
स्वप्—सोना	स्वपिति	अस्वपीत्, अस्वपत्	स्वप्स्यति	स्वपितु	स्वप्यात्
हन्—मारना	हन्ति	अहन्	हनिष्यति	हन्तु	हन्यात्
इ—जाना	एति	ऐत्	एष्यति	एतु	इयात्

निम्नलिखित वाक्यों को ध्यान से पढ़ो—

(१) प्रकृत्या चारुः (स्वभाव से ही सुन्दर है)।

(२) सत्येन शपामि (मैं सत्य की शपथ करता हूँ)।

(३) पुत्रेण सह आगच्छति पिता (पुत्र के साथ पिता आता है)।

(४) अध्ययनेन वसति (अध्ययन करने के प्रयोजन से रहता है)।

(५) धनेन किं प्रयोजनम् (धन से क्या प्रयोजन) ?

(६) पादेन खञ्जः (पैर से लंगड़ा)।

(७) बालकः जलेन मुखं प्रक्षालयति (लड़का पानी से मुँह धोता है)।

करण-कारक (तृतीया)—कर्ता की क्रिया के सम्पादन में जो प्रधान साधन है, उसे करण कहते हैं। (साधकतमं करणम्)। करण में तृतीया विभक्ति होती है। यथा—मुसलेन शिरः चूर्णयति (मुसल से शिर चूर-चूर करता है)। यहाँ कर्ता की 'चूर-चूर करना जो क्रिया है उस क्रिया के सम्पादन में मुसल प्रधान साधन है इसलिए वह करण कहलाया और उसमें तृतीया विभक्ति हुई। कर्मवाच्य अथवा भाववाच्य के कर्ता में भी तृतीया होती है (कर्तृकरणयोस्तृतीया)।

कर्मवाच्य—मया विद्यालयो गम्यते।

भाववाच्य—तेन पठ्यते।

इसका विस्तृत वर्णन आगे किया गया है।

जैसा कि 'कर्मकारक' में बताया गया है कि निपातों तथा अव्ययों के योग से भी ये विभक्तियाँ व्यवहृत होती हैं। अतः इन्हें उपपद विभक्ति कहते हैं। इनके कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं—

(१) प्रकृति (स्वभाव) आदि अर्थों में तृतीया होती है (प्रकृत्यादिभ्य-उपसंख्यानम्)। यथा—

सुखेन जीवति (सुखपूर्वक जीता है।

(२) कार्य-सिद्धि को अपवर्ग की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

अपवर्ग का अर्थ बोध कराने के लिए काल-सातत्यवाची शब्दों में तृतीया होती है (अपवर्गे तृतीया)। यथा—

मासेन व्याकरणम् अधीतवान् (मास भर में व्याकरण पढ़ डाला)।

(३) सह के योग में अप्रधान में तृतीया होती है (सहयुक्तेऽप्रधाने)। यथा—शिष्यः गुरुणा सह हट्टं गच्छति (शिष्य गुरु के साथ बाजार जाता है।)

(४) साकम्, सार्धम् और समम् के योग में भी अप्रधान में तृतीया होती है (एवं साकं सार्धं समंयोगेऽपि)। यथा—

रामः जानक्या समं वनम् अगच्छत् (राम जानकी के साथ बन गए)।

(५) गत्यर्थक धातुओं के योग में जिसके द्वारा गमन क्रिया जाता है, वह करण होता है और उसमें तृतीया विभक्ति होती है। यथा—

सः रथेन विद्यालयं गच्छति (वह रथ से विद्यालय जाता है)।

(६) पृथक् (अलग), विना, नाना शब्दों के साथ तृतीया, द्वितीया तथा पञ्चमी विभक्तियों में से कोई एक होती है (पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्य-तरस्याम्)। यथा—

दशरथो रामेण, रामं, रामात् वा विना नाजीवत्—

विना या वर्जन अर्थ के होने पर ही नाना के योग में द्वितीया, तृतीया अथवा पञ्चमी विभक्ति होती है। यथाः—

नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा (स्त्री के विना जीवन निष्फल है)।

(७) जिस विकृत अङ्ग के द्वारा अङ्गी का विकार परिलक्षित होता है, उस अङ्ग में तृतीया विभक्ति होती है (येनाङ्गविकारः)।

यथा—अक्ष्णा काणः (एक आँख का काना)।

पादेन खञ्जः (एक पैर का लंगड़ा)।

(८) 'तुला' एवं 'उपमा' इन दो शब्दों के अतिरिक्त शेष समस्त तुल्य अर्थ बतलाने वाले शब्दों के योग में तृतीया अथवा षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त होती है (तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्)।

यथा—कृष्णस्य, कृष्णेन वा तुल्यः, सदृशः वा (कृष्ण के सदृश)।

(९) जिस कारण या प्रयोजन से किसी कार्य का सम्पादन किया जाता है, उसमें तृतीया होती है (हेतौ तृतीया)। यथा—

अध्ययनेन वसति (अध्ययन के प्रयोजन से रहता है)।

हेतु में पञ्चमी भी होती है।

(१०) जिस विशेष चिह्न से कोई ज्ञापित हो, उस विशेष चिह्न में तृतीया विभक्ति होती है (इत्थंभूतलक्षणे)। यथा—

जटाभिः तापसः।

(११) किम्, कार्यम्, अर्थः, प्रयोजनम् एवं अलम् के योग में तृतीया होती है। यथा—

धनेन किम् (धन से क्या ?)

कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः (उस पुत्र के पैदा होने से क्या, जो न विद्वान् हो और न धार्मिक हो)।

मूर्खाणां किं पुस्तकैः प्रयोजनम् (मूर्खों का किताबों से क्या मतलब) ?

अलं श्रमेण (परिश्रम मत करो)।

(१२) जिस मूल्य पर कोई वस्तु खरीदी जाती है, उसमें तृतीया होती है। यथा—

सहस्रमुद्राभिः क्रीतोऽयमश्वः (हजार रुपये में खरीदा हुआ यह घोड़ा है)।

(१३) शपथबोधक शब्दों के योग में जिसके नाम पर शपथ ली जाती है, उसमें तृतीया विभक्ति होती है। यथा—

सत्येन शपामि (मैं सत्य का शपथ करता हूँ)।

(१४) वहनार्थक तथा न्यासार्थक धातुओं के योग में जिस पर कोई वस्तु ढोई जाती है या रखी जाती है, उसमें तृतीया विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। यथा—

स शिरसा तव पादुकां वहति (वह शिर पर तेरी खराऊँ ले चलता है)।

तदाज्ञां शिरसाऽऽदाय (उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर)।

(१५) किसी स्थान-विशेष तक जाने के लिए जिस मार्ग का अनुसरण किया जाता है, उसकी दिशा में तृतीया विभक्ति प्रयुक्त होती है। यथा—

कतमेन दिग्भागेन सः अगच्छत् (किस दिशा से वह गया)।

(१६) 'बढ़ जाना', 'सदृश होना' अर्थ में प्रयुक्त होनेवाली क्रियाओं में जिस गुण में बढ़ जाने या सदृश होने की बात कही जाती है, उसमें तृतीया विभक्ति होती है। यथा—

त्वं विनयेन सर्वान् भ्रातॄन् अतिशेषे (तू विनय के कारण सब भाइयों में बढ़ गया)।

अयम् बालकः रूपेण पितरम् अनुहरति (यह बालक रूप में पिता से मिलता-जुलता है)।

(१७) दिव् धातु की क्रिया का प्रधान साधन द्वितीया अथवा तृतीया में रखा जाता है (दिवः कर्म च)। यथा—

अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति (पाशों से जूआ खेलता है)।

संस्कृत में अनुवाद करो—

(१) मैं कल पिता के साथ विद्यालय गया था। (२) बालिका जल से मुख धोती है। (३) कृष्ण के द्वारा कंस मारा गया (हतः)। (४) राम स्वभाव से दयालु है। (५) उसने वर्ष भर में व्याकरण पढ़ लिया। (६) पिता उसे रथ से ले गए। (७) वह एक आँख का काना है। (८) वह राम के समान नहीं है। (९) धन परिश्रम से होता है। (१०) वह पासे से जूआ खेलता है। (११) कानी आँख से क्या? (१२) परिश्रम व्यर्थ है। (१३) वह रूप से हीन है। (१४) मैं ज्ञान से शून्य एवं बल से हीन हूँ। (१५) विवाद से क्या? (१६) वह किस दिशा से गया। (१७) रमा वीणा बजाने में सुशीला से बढ़ गई है। (१८) वह हवाई जहाज से दिल्ली गया। (१९) हजार रूपये में खरीदा हुआ यह हाथी है। (२०) दण्ड से घड़ा होता है। (२१) किस कारण से जाता है?

सप्तम अभ्यास

सम्प्रदान कारक (चतुर्थी) को, के लिए

संज्ञा शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पुं०	बालकाय	बालकाभ्याम्	बालकेभ्यः
स्त्री०	रमायै	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
नपुं०	पुस्तकाय	पुस्तकाभ्याम्	पुस्तकेभ्यः

सर्वनाम शब्द

पुंल्लिङ्ग			स्त्रीलिङ्ग		
ए०व०	द्वि०व०	ब०व०	ए०व०	द्वि०व०	ब०व०
मह्यम्	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्	मह्यम्	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्
तुभ्यम्	युवाभ्याम्	युष्मभ्यम्	तुभ्यम्	युवाभ्याम्	युष्मभ्यम्
तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः
अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः	कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः
यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः	यस्यै	याभ्याम्	याभ्यः
भवते	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः	भवत्यै	भवतीभ्याम्	भवतीभ्यः

(३) जुहोत्यादिगणीय (दा) देना परस्मैपद

वर्तमानकाल (लट्)

	ए०व०	द्वि०व०	ब०व०
प्र०	ददाति	दत्तः	ददति
म०	ददासि	दत्थः	दत्थ
उ०	ददामि	दद्वः	दद्मः

भूतकाल (लङ्)

प्र०	अददात्	अदत्ताम्	अददुः
म०	अददाः	अदत्तम्	अदत्त
उ०	अददाम्	अदद्व	अदद्म

भविष्यत् काल (लृट्)

प्र०	दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति
म०	दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ
उ०	दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः

आज्ञार्थक (लोट्)

प्र०	ददातु	दत्ताम्	ददतु
म०	देहि	दत्तम्	दत्त
उ०	ददानि	ददाव	ददाम

विधिलिङ्

प्र०	दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः
म०	दद्याः	दद्यातम्	दद्यात
उ०	दद्याम्	दद्याव	दद्याम

जुहोत्यादिगणीय कुछ अन्य धातुएँ

	लट्	लङ्	लृट्	लोट्	विधिलिङ्
भी—डरना	बिभेति	अबिभेत्	भेष्यति	बिभेतु	बिभीयात्
हु—हवन करना	जुहोति	अजुहोत्	होष्यति	जुहोतु	जुहुयात्
धा—धारण करना	दधाति	अदधात्	धास्यति	दधातु	दध्यात्
हा—छोड़ना	जहाति	अजहात्	हास्यति	जहातु	जह्यात्

निम्नलिखित वाक्यों को ध्यान से पढ़ो :—

(१) बालकाय स्वदते अपूपः (लड़के को पूआ अच्छा लगता है)।

(२) मुक्तये हरिं भजति (मुक्ति के लिए भगवान को भजता है)।

(३) फलेभ्यो याति (फलों को लाने के लिए जाता है)।

(४) देवदत्तः भृत्याय क्रुध्यति (देवदत्त नौकर पर क्रोध करता है)।

(५) नमः कमलनाभाय (भगवान् विष्णु को नमस्कार)।

(६) विधिरपि न येभ्यः प्रभवति (ब्रह्मा भी जिनके लिए समर्थ नहीं हैं)

सम्प्रदान कारक (चतुर्थी) जिसको कोई वस्तु दी जाती है या जिसके लिए किसी कार्य का सम्पादन किया जाता है, उसे सम्प्रदान कहते हैं (कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्)। सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति प्रयुक्त होती है। जैसे ब्राह्मणाय गां ददाति। इस वाक्य में ब्राह्मण को गाय के दिए जाने का वर्णन है, अतएव 'ब्राह्मण' में चतुर्थी विभक्ति प्रयुक्त हुई है।

सम्प्रदान का अर्थ है—अच्छा दान अर्थात् जिसमें दी हुई वस्तु सर्वदा के लिए दी जाती है अर्थात् दानकर्ता के पास पुनः वापस नहीं आता। 'स रजकस्य वस्त्रं ददाति' (वह धोबी को कपड़े देता है)। इसमें वह धोबी को कपड़ा सर्वथा नहीं देता है अपितु कुछ दिन के बाद वापस ले लेता है, इस कारण 'रजकस्य' में चतुर्थी नहीं हुई।

किसी विशेष क्रिया के द्वारा भी जो अभिप्रेत हो वह भी सम्प्रदान समझा जाता है (क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्)। यथा—

'पत्ये शेते' यहाँ पर पति को अनुकूल बनाने की क्रिया का अभिप्रेत पति ही है, अतः पति सम्प्रदान हुआ।

निम्नलिखित उपपद विभक्तियों के साथ भी चतुर्थी होती है—

(१) रुच् धातु तथा रुच् के समान अर्थवाली धातुओं के योग में प्रसन्न होनेवाला सम्प्रदान होता है और उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है (रुच्यर्थानां प्रीयमाणः)। यथा—

शिशवे क्रीडनकं रोचते (बच्चे को खिलौना अच्छा लगता है)।

(२) क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्य् तथा असूय् धातुओं के योग में तथा इन धातुओं के समान अर्थ रखने वाली धातुओं के योग में जिसके प्रति क्रोध आदि किया

जाता है, वह सम्प्रदान समझा जाता है और उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है (क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः)। यथा—

सः मित्रेभ्यः क्रुध्यति (वह मित्रों पर क्रोध करता है)।

दुर्जनः सज्जनेभ्य ईर्ष्यति , असूयति वा (दुर्जन सज्जनों से ईर्ष्या करता है, असूया करता है)।

शठः पण्डिताय द्रुह्यति (शठ पण्डित से द्रोह करता है)।

विशेष—जब क्रुध् तथा द्रुह् धातुएँ किसी उपसर्ग के साथ प्रयुक्त होती हैं, तब जिसके प्रति क्रोध या द्रोह किया जाता है, वह कर्म संज्ञा वाला होता है (क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म)। यथा—

पिता पुत्रं संक्रुध्यति ।

(३) स्पृह् धातु के योग में जिसे चाहा जाता है, वह सम्प्रदान कहा जाता है और उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है (स्पृहेरीप्सितः)। यथा—

पुष्पेभ्यः स्पृहयति (फूलों की इच्छा करता है)।

(४) जिस प्रयोजन को उद्दिष्ट करके किसी कार्य का सम्पादन किया जाता है, उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है (तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या)। यथा—

काव्यं यशसे (काव्य यश के लिए)।

(५) नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् तथा वषट् शब्दों के योग में चतुर्थी होती है (नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च) यथा—

नमः शिवाय (शिव को नमस्कार है)।

नृपाय स्वस्ति (राजा का कल्याण हो)।

अग्नये स्वाहा ।

पितृभ्यः स्वधा ।

इन्द्राय वषट् ।

दुर्गा मधुकैटभाभ्याम् अलम् ।

(६) प्रति और आपूर्वक श्रु धातु के प्रयोग में जिसके लिए देने की प्रतिज्ञा की जाती है, वह सम्प्रदान होता है और उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है (प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता)। यथा—

दरिद्राय वस्त्रं प्रतिश्रृणोति आश्रृणोति वा (दरिद्र को कपड़ा देने की प्रतिज्ञा करता है)।

(७) धारि धातु के योग में ऋण देनेवाला सम्प्रदान होता है और उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है (धारेरुत्तमर्णः)। यथा—

रामः श्यामाय शतं धारयति (राम श्याम से सौ रूपया लेता है।

(८) जब किसी वाक्य में तुमुन् प्रत्ययान्त धातु का अर्थ छिपा रहे तो उसके कर्म में चतुर्थी होती है (क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः)। यथा—

फलेभ्यो याति = फलानि आहर्तुं याति—फलों को लाने के लिए जाता है।

(९) तुमुन् अर्थ से युक्त धातु-निष्पन्न भाववाचक संज्ञा में चतुर्थी होती है (तुमर्थाच्च भाववचनात्)। तात्पर्य है कि किसी धातु में तुमुन् प्रत्यय जोड़ने से जो अर्थ निकलता है, उसी अर्थ की प्राप्ति के लिए उस धातु से बनी हुई भाववाचक संज्ञा में चतुर्थी होती है। यथा—

यागाय याति = यष्टुं याति—वह यज्ञ करने जाता है।

(१०) जिस वस्तु के निर्माण के लिए दूसरी वस्तु का प्रयोग किया जाता है, उसमें चतुर्थी होती है। यथा—

यूपाय दारु (यज्ञ का खम्भा बनाने के लिए लकड़ी)।

(११) जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता है, उसमें चतुर्थी होती है। यथा—

दानम् धर्माय (दान धर्म के लिए होता है)।

(१२) हित और सुख के योग में जिसके लिए हित अथवा सुख हो, उसमें चतुर्थी होती है (हितयोगे च)। यथा—

लोकाय हितम् (संसार के लिए हितकर)।

(१३) जब गत्यर्थक धातुओं का कर्म कोई मार्गवाची शब्द न रहे तथा क्रिया के सम्पादन में शरीर से व्यापार करना पड़े, तो उस कर्म में द्वितीया या चतुर्थी होती है (गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि)। यथा—

ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति।

(१४) कथन अर्थवाली क्रिया के योग में जिससे कुछ कहा जाता है या निवेदन किया जाता है, उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—

कथयामि ते भूतार्थम् (तुमसे सत्य कहता हूँ)।

(१५) 'भेजना' अर्थ वाली धातु के योग में जिस व्यक्ति के पास कोई भेजा जाता है, वह चतुर्थी विभक्ति में रखा जाता है। यथा—

कृष्णः दुर्योधनाय एकं दूतं प्रेषितवान्।

(१६) क्लृप् धातु तथा इसके समान अर्थ रखने वाली संपद्, भू, जन् इत्यादि धातुओं के योग में परिणाम में चतुर्थी प्रयुक्त होती है (क्लृपि सम्पद्यमाने च)। यथा—

मूत्राय कल्पते, जायते, सम्पद्यते वा यवागूः (माड़ पेशाब पैदा करता है)।

(१७) 'शुभाशुभकथन' अर्थ में विद्यमान राध् एवं ईक्ष् धातु के योग में जिसके विषय में कुशल एवं सुखादि-सम्बन्धी प्रश्न किए जाते हैं, उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—

बालकाय राध्यति ईक्षते वा पिता।

(१८) 'प्रणाम करना' अर्थ से युक्त 'प्रणम्' इत्यादि धातुओं के कर्म में द्वितीया अथवा चतुर्थी होती है। यथा—

पितरं प्रणिपत्याह (पिता को प्रणाम करके बोला)।

ते देवताभ्यः प्रणमन्ति (वे देवताओं को प्रणाम करते हैं।)

(१९) 'स्वागतम्', 'कुशलम्', 'भद्रम्', 'सुखम्' इत्यादि शब्द जिसके लिए प्रयुक्त होते हैं, उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—

रामाय स्वागतम् , कुशलम् , भद्रं वा

भद्रम् , कुशलम् एवं सुखम् के योग में षष्ठी भी होती है।

(२०) जब अनादर दिखाया जाता है तो दिवादिगणीय 'मन्' धातु के गौण कर्म में (यदि वह प्राणी न हो तो) द्वितीया या चतुर्थी विभक्ति होती है (मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु)। यथा—

न त्वां तृणाय तृणं वा मन्ये (मैं तुम्हें तिनके के बराबर भी नहीं समझता)।

जब निषेध या अनादर नहीं दिखाया जाता है, केवल तुलना दिखाई जाती है, तब केवल द्वितीया विभक्ति आती है।

(२१) जिस नियत मूल्य पर कोई वस्तु खरीदी जाय या जिस नियत मजदूरी पर कोई व्यक्ति नियुक्त किया जाय, उस मूल्य तथा पारिश्रमिक में तृतीया

अथवा चतुर्थी विभक्तिप्रयुक्त होती है (परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्)। यथा—

शतेन शताय वा परिक्रीतोऽयं दासः (यह नौकर सौ रुपये में खरीद लिया गया है)।

(२२) उपदिशति के योग में चतुर्थी विभक्ति प्रयुक्त होती है। यथा—

शिक्षकः छात्रेभ्यः धर्ममुपदिशति (शिक्षक छात्रों को धर्म का उपदेश देता है)।

संस्कृत में अनुवाद करो :—

१—दरिद्र को धन देता है। २—मुझे भक्ति अच्छी लगती है। ३—गुरु छात्र पर क्रुद्ध होता है। ४—महादेव को नमस्कार है। ५—मुझे मिठाई नहीं अच्छी लगती है। ६—आपका कल्याण हो। ७—मुक्ति के लिए हरि का भजन करता है। ८—धन सुख के लिए होता है। ९—वह मरने के लिए गङ्गातट को जाता है। १०—मैं फूल लाने के लिए जाता हूँ। ११—मोहन महाजन से एक लाख उधार लेता है। १२—वह मुनि को वस्त्र देने की प्रतिज्ञा करता है। १३—ब्राह्मण के लिए हितकर। १४—मुनि राजा को उपदेश देता है। १५—तुमसे सत्य कह रहा हूँ। १६—गुरु राजा के पास शिष्य भेजता है। १७—विद्या से ज्ञान होता है। १८—माता पुत्र के लिए मंगलकामना करती है। १९—मैं तुम्हें तिनके के बराबर भी नहीं समझता हूँ। २०—मैं तुम्हें तिनके के बराबर भी नहीं समझता हूँ। २१—ज्ञान से मुक्ति होती है। २२—मुझसे सारी घटना कहो।

अष्टम अभ्यास

अपादान कारक (पञ्चमी) से

संज्ञा शब्द

	ए०व०	द्वि०व०	ब०व०
पुं०	बालकात्	बालकाभ्याम्	बालकेभ्यः
स्त्री०	रमायाः	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
नपुं०	पुस्तकात्	पुस्तकाभ्याम्	पुस्तकेभ्यः

सर्वनाम शब्द

पुँल्लिङ्ग			स्त्रीलिङ्ग		
ए०व०	द्वि०व०	ब०व०	ए०व०	द्वि०व०	ब०व०
मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः	कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः
यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः	यस्याः	याभ्याम्	याभ्यः
भवतः	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः	भवत्याः	भवतीभ्याम्	भवतीभ्यः

(४) दिवादिगणीय युध् (लड़ना) आत्मनेपद

वर्तमानकाल (लट्)

प्र०	युध्यते	युध्येते	युध्यन्ते
म०	युध्यसे	युध्येथे	युध्यध्वे
उ०	युध्ये	युध्यावहे	युध्यामहे

भूतकाल (लङ्)

प्र०	अयुध्यत	अयुध्येताम्	अयुध्यन्त
म०	अयुध्यथाः	अयुध्येथाम्	अयुध्यध्वम्
उ०	अयुध्ये	अयुध्यावहि	अयुध्यामहि

भविष्यत्काल (लृट्)

प्र०	जनिष्यते	जनिष्येते	जनिष्यन्ते इत्यादि

आज्ञार्थक लोट्

प्र०	युध्यताम्	युध्येताम्	युध्यन्ताम्
म०	युध्यस्व	युध्येथाम्	युध्यध्वम्
उ०	युध्यै	युध्यावहै	युध्यामहै

विधिलिङ्

प्र०	युध्येत	युध्येयाताम्	युध्येरन्
म०	युध्येथाः	युध्येयाथाम्	युध्येध्वम्
उ०	युध्येय	युध्येवहि	युध्येमहि

दिवादिगणीय कुछ धातुएँ

	लट्	लङ्	लृट्	लोट्	विधिलिङ्
दिव्—चमकना	दीव्यति	अदीव्यत्	देविष्यति	दीव्यतु	दीव्येत्
नृत्—नाचना	नृत्यति	अनृत्यत्	नर्तिष्यति	नृत्यतु	नृत्येत्
नश्—नष्ट होना	नश्यति	अनश्यत्	नशिष्यति, नङ्क्ष्यति	नश्यतु	नश्येत्
भ्रम्—घूमना	भ्राम्यति	अभ्राम्यत्	भ्रमिष्यति	भ्राम्यतु	भ्राम्येत्
जन्—पैदा होना	जायते	अजायत	जनिष्यते	जायताम्	जायेत

निम्नलिखित वाक्यों को ध्यान से पढ़ो—

(१) पापात् जुगुप्सते (पाप से घृणा करता है)।

(२) हिमालयात् गङ्गा प्रभवति (हिमालय से गङ्गा निकलती हैं)।

(३) कामात् क्रोधोऽभिजायते (काम से क्रोध पैदा होता है)।

(४) आ मूलात् श्रोतुमिच्छामि (आरम्भ से ही सुनना चाहता हूँ)।

(५) तण्डुलेभ्यः प्रतियच्छति गोधूमान् (चावलों के बदले गेहूँ देता है)।

(६) कृष्णात् अन्यः को मां रक्षेत् (कृष्ण के सिवा कौन मुझे बचावे)।

अपादान कारक (पञ्चमी) जिस पुरुष, स्थान या वस्तु से अप्रत्यक्ष अथवा प्रत्यक्ष वियोग होता है, वह अपादान कहलाता है (ध्रुवमपायेऽपादानम्)। जैसे वह घर से जाता है। यहाँ गमन करने वाले का घर से वियोग हो रहा है। इसलिए 'गृह' अपादान हुआ।

अपादान में पञ्चमी होती है (अपादाने पञ्चमी)। इस सूत्र के अनुसार उपर्युक्त वाक्य में आये हुए 'घर से' का संस्कृत में अनुवाद 'गृहात्' होगा। सम्पूर्ण वाक्य का निम्न स्वरूप होगा—

सः गृहात् गच्छति।

(१) जुगुप्सा (घृणा), विराम (बन्द हो जाना, अलग होना), प्रमाद (भूल या असावधानी करना) अर्थवाली तथा इनकी समानार्थक धातुओं के योग में जिससे जुगुप्सा, विराम या प्रमाद किया जाता है, वह पञ्चमी विभक्ति में रखा जाता है (जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्)। यथा—

पापात् जुगुप्सते (पाप से घृणा करता है)।

अधर्मात् विरमति (अधर्म से दूर होता है)।

धर्मात् प्रमाद्यति (धर्म में प्रमाद करता है)।

(२) 'भय' और 'भय से रक्षा करना' अर्थों का बोध कराने वाली धातुओं के योग में जिससे भय हो अथवा जिससे रक्षा करनी या करानी हो, उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है (भीत्रार्थानां भयहेतुः)। यथा—

बालकः सर्पात् बिभेति (लड़का साँप से डरता है)।

ईश्वरः दुःखात् रक्षति (ईश्वर दुःख से बचाते हैं)।

(३) जिससे कोई वस्तु या पुरुष दूर किया जाता है या मना किया जाता है, वह पञ्चमी में रखा जाता है (वारणार्थानामीप्सितः)। यथा—

पापात् निवारयति (पाप से दूर रखता है)।

(४) परा पूर्वक जि धातु के योग में जो असह्य होता है, उसकी अपादान संज्ञा होती है और उसमें पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है (पराजेर-सोढः)। यथा—

अध्ययनात् पराजयते (अध्ययन असह्य हो रहा है)।

(५) जब कोई स्वयं को किसी से छिपाता है तो जिससे छिपाता है, वह अपादान होता है और उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है (अन्तर्धौ येनादर्शनमि-च्छति)। यथा—

मातुर्निलीयते कृष्णः (कृष्ण अपनी माता से छिपता है)।

(६) जिस गुरु या अध्यापक या मनुष्य से कोई चीज नियमपूर्वक पढ़ी जाती है। अथवा मालूम की जाती है, वह गुरु या अध्यापक या अन्य मनुष्य अपादान होता है (आख्यातोपयोमे)। यथा—

उपाध्यायादधीते (गुरु से पढ़ता है)।

(७) जन् धातु के कर्ता का आदि कारण अपादान होता है और उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है (जनिकर्तुः प्रकृतिः)। यथा—

ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते (ब्रह्मा जी से सारी प्रजा उत्पन्न होती है)।

(८) भू धातु के कर्ता का उद्गम स्थान अथवा प्रादुर्भाव स्थान अपादान होता है (भुवः प्रभवश्च)। यथा—

हिमालयात् गङ्गा प्रभवति (गङ्गा हिमालय से निकलती है)।

संस्कृत में अनुवाद करो

(१) मेरा पुत्र आज सीढ़ी से गिर पड़ा। २—जो धर्म से प्रमाद करता है, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। ३—छात्र विद्यालय से आते हैं। ४—मैं पाप से घृणा करता हूँ। ५—बिल्ली कुत्ता से डरती है। ६—जौ से गाय को रोकता है। ७—बालिका अपनी माता से छिपती है। ८—गुरु से पढ़ता है। ९—इससे दूर रहो। १०—क्रोध से संमोह पैदा होता है। ११—महल से देखता है। १२—नववधू अतिथि से लजाती है। १३—नदियाँ हिमालय से निकलती हैं। १४—उद्यान से नदी तीन योजन पर है। १५—भूमि से माता श्रेष्ठ है। १६—बचपन से ही वह चतुर है। १७—ईश्वर के अतिरिक्त कौन बचावे। १८—तू कहाँ से आता है? मैं विद्यालय से आता हूँ। १९—वह पुत्र से सुख पाता है। २०—राम के सिवा मेरा कोई शरण नहीं है। २१—गेहूँ के बदले उड़द देता है (प्रतियच्छति)। २२—घर से उत्तर दिशा में कुआँ है। २३—परिश्रम के विना विद्या नहीं।

नवम अभ्यास

सम्बन्ध (षष्ठी) का, के, की, रा, रे, री,

संज्ञा शब्द

	ए० व०	द्विव०	ब० व०
पुं०	बालकस्य	बालकयोः	बालकानाम्
स्त्री०	रमायाः	रमयोः	रमाणाम्
नपुं०	पुस्तकस्य	पुस्तकयोः	पुस्तकानाम्

सर्वनाम शब्द

पुँल्लिङ्ग			स्त्रीलिङ्ग		
ए० व०	द्विव०	ब० व०	ए० व०	द्विव०	ब० व०
मम	आवयोः	अस्माकम्	मम	आवयोः	अस्माकम्
तव	युवयोः	युष्माकम्	तव	युवयोः	युष्माकम्
तस्य	तयोः	तेषाम्	तस्याः	तयोः	तासाम्

	पुंल्लिङ्ग			स्त्रीलिङ्ग	
अस्य	अनयोः	एषाम्	अस्याः	अनयोः	आसाम्
कस्य	कयोः	केषाम्	कस्याः	कयोः	कासाम्
यस्य	ययोः	येषाम्	यस्याः	ययोः	यासाम्
भवतः	भवतोः	भवताम्	भवत्याः	भवत्योः	भवतीनाम्

(५) स्वादिगणीय सु (स्नान करना या कराना, रस निकालना) परस्मैपद

वर्तमान काल (लट् लकार)

प्र० पु०	सुनोति	सुनुतः	सुन्वन्ति
म० पु०	सुनोषि	सुनुथः	सुनुथ
उ० पु०	सुनोमि	सुनुवः, सुन्वः	सुनुमः, सुन्मः

अनद्यतन भूतकाल (लङ्)

प्र० पु०	असुनोत्	असुनुताम्	असुन्वन्
म० पु०	असुनोः	असुनुतम	असुनुत
उ० पु०	असुनवम्	असुनुव	असुनुम

भविष्यत् काल (लृट्)

प्र० पु०	सोष्यति	सोष्यतः	सोष्यन्ति आदि

आज्ञार्थक लोट्

प्र० पु०	सुनोतु	सुनुताम्	सुन्वन्तु
म० पु०	सुनु	सुनुतम्	सुनुत
उ० पु०	सुनवानि	सुनवाव	सुनवाव

विधिलिङ्

प्र० पु०	सुनुयात्	सुनुयाताम्	सुनुयुः
म० पु०	सुनुयाः	सुनुयातम्	सुनुयात
उ० पु०	सुनुयाम्	सुनुयाव	सुनुयाम

स्वादिगणीय कुछ धातुएँ

	लट्	लङ्	लृट्	लोट्	विधिलिङ्
आप्-पाना	आप्नोति	आप्नोत्	आप्स्यति	आप्नोतु	आप्नुयात्
शक्-सकना	शक्नोति	अशक्नोत्	शक्ष्यति	शक्नोतु	शक्नुयात्
क्षि-कमहोना	क्षिणोति	अक्षिणोत्	क्षेष्यति	क्षिणोतु	क्षिणुयात्
चिञ्-चुनना	चिनोति	अचिनोत्	चेष्यति	चिनोतु	चिनुयात्

निम्नलिखित वाक्यों को ध्यान से पढ़ो—

(१) रामः राक्षसस्य उज्जासयति (राम राक्षस को मारता है)।

(२) कृष्णस्य कुशलं भूयात् (कृष्ण का कुशल होवे)।

(३) सहस्रस्य व्यवहरति (हजारों का लेन-देन करता है)।

(४) शिक्षकः शिष्यस्य ईष्टे (अध्यापक शिष्य पर शासन करता है)।

(५) अलसस्य कुतो विद्या (आलसी को विद्या कहाँ) ?

(६) त्वं लोकव्यवहाराणाम् अनभिज्ञोऽसि (तुम लोक-व्यवहार को नहीं जानते)।

सम्बन्ध (षष्ठी)—जो बात अन्य कारकों में नहीं बतायी जा सकती, उसको बतलाने के लिए षष्ठी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है (षष्ठी शेषे)। षष्ठी विभक्ति सम्बन्ध प्रकट करती है। जहाँ स्वामी तथा भृत्य, जन्य तथा जनक, कार्य तथा कारण इत्यादि सम्बन्ध दिखाए जाते हैं वहाँ षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त होती हैं। यथा—

मम पुत्रः (मेरा पुत्र)।

वृक्षस्य पत्रम् (पेड़ का पत्ता)।

रामस्य पुस्तकम् (राम की पुस्तक)।

(१) हेतु शब्द के योग में कारण शब्द तथा हेतु शब्द दोनों में षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त होती है (षष्ठी हेतुप्रयोगे)। यथा—

अन्नस्य हेतोः वसति (अन्न के वास्ते रहता है)।

(२) जब हेतु शब्द के साथ प्रयोजन या कारणबोधक शब्द सर्वनाम हो तो उसके तथा हेतु शब्द के आगे षष्ठी और तृतीया दोनों विभक्ति होती हैं (सर्व-

नाम्नस्तृतीया च)। पञ्चमी विभक्ति का भी प्रयोग किया जाता है। यथा—

कस्य हेतोः
कस्मात् हेतोः } किसलिए
केन हेतुना

(३) दिशावाची अतसुच् (तस्) प्रत्ययान्त शब्दों के योग में तथा इस प्रत्यय का अर्थ रखनेवाले प्रत्ययों में अन्त होनेवाले शब्दों के योग में जिसको लक्षित करके दिशा आदि बताई जाय, उसमें षष्ठी होती है (षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन)। यथा—

ग्रामस्य दक्षिणतः (ग्राम के दक्षिण)।

(४) दूर, अन्तिक (समीप) तथा इनके अर्थवाले शब्दों के योग में पञ्चमी और षष्ठी दोनों विभक्तियों का प्रयोग होता है (दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम्)। यथा—

वनं ग्रामस्य ग्रामात् वा दूरम् (वन गाँव से दूर है)।

अन्तिकं विद्यालयस्य विद्यालयाद् वा (विद्यालय के समीप)।

(५) अधिपूर्वक 'इ' धातु (स्मरण करना), दय् (दया करना), ईश् (समर्थ होना, शासन करना) तथा इनका अर्थ रखनेवाली धातुओं के कर्म में द्वितीया और षष्ठी दोनों विभक्ति होती है (अधीगर्थदयेशां कर्मणि)। यथा—

माता पुत्रस्य, पुत्रं वा स्मरति (माता पुत्र को याद करती है)।

बलवान् निर्बलस्य, निर्बलं वा दयते (बलवान् निर्बल पर दया करता है)।

अध्यापकः शिष्यस्य, शिष्यं वा ईष्टे (अध्यापक शिष्य पर शासन करता है)।

(६) कृत् प्रत्ययों के योग में कर्ता और कर्म में षष्ठी होती है (कर्तृकर्मणोः कृति) यथा—

छात्रस्य पठनम् (छात्र का अध्ययन)।

(७) कर्ता एवं कर्म दोनों के वर्तमान रहने से कर्म में ही षष्ठी होती है, कर्ता में नहीं (उभयप्राप्तौ कर्मणि)। यथा—

वस्त्रस्य दानं धनिना (धनी का वस्त्र देना)।

(८) क्रिया द्वारा जिसका अनादर सूचित हो, उसमें सप्तमी अथवा षष्ठी विभक्ति होती है। (षष्ठी चानादरे) यथा—

रुदतः पुत्रस्य रुदति पुत्रे वा पिता अगच्छत् (रोते पुत्र को छोडकर पिता चला गया)।

(९) आशीर्वाद अभिप्रेत होने पर आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ, हित तथा इनके अर्थवाले शब्दों के योग में जिसके प्रति आशीर्वाद आदि क्रिया जाय, उसमें चतुर्थी या षष्ठी दोनों विभक्ति होती है (चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः)। यथा—

तव, तुभ्यं वा आयुष्यं भूयात् (तू चिरञ्जीवी हो)।

कृष्णस्य कृष्णाय वा कुशलं, हितं, मद्रं, भद्रं वा भूयात् (कृष्ण का कुशल आदि होवे)।

(१०) अनु उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु (नकल करना या सदृश होना) का प्रयोग होने पर प्रायः इसके कर्म में षष्ठी होती है। यथा—

शैलाधिपस्यानुचकार लक्ष्मीम् (नगाधिराज हिमालय के ऐश्वर्य से मिलता-जुलता था)।

(११) योग्य, उचित, उपयुक्त, अनुरूप, सदृश अर्थवाची शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति आती है। यथा—

नैतदनुरूपं भवतः (यह तुम्हारे योग्य नहीं है)।

(१२) कृते (लिए) और समक्षम् (सामने) आदि के योग में षष्ठी होती है। यथा—

धर्मस्य कृते (धर्म के लिए)।

राज्ञः समक्षम् (राजा के सामने)।

(१३) प्रिय, वल्लभ तथा इसी अर्थ में उपयुक्त होने वाले अन्य शब्दों के योग में षष्ठी होती है। यथा—

कायः कस्य न वल्लभः (शरीर किसे नहीं प्रिय होता)।

(१४) समान अर्थवाची तुल्य, सदृश, सम इत्यादि शब्दों के योग में जिससे तुलना की जाती है, उसमें तृतीया अथवा षष्ठी दोनों विभक्ति होती है। यथा—

कृष्णेन कृष्णस्य वा तुल्यः (कृष्ण के समान)।

(१५) हिंसा अर्थ का बोध होने पर नि और प्र उपसर्गपूर्वक हन्, क्रथ् एवं पिष् धातु के कर्म में षष्ठी होती है। यथा—

रामः राक्षस्य निहन्ति
रामः राक्षसस्य प्रहन्ति
रामः राक्षसस्य क्राथयति
रामः राक्षसस्य पिनष्टि
} राम राक्षस को मारता है।

(१६) तृप्ति अर्थवाले धातुओं के योग में तृतीया और षष्ठी दोनों होती है। यथा—

भोगैः भोगानां वा न तृप्यन्ति जनाः (लोग भोग से तृप्त नहीं होते हैं)।

संस्कृत में अनुवाद करो :—

१—यह राम का पुत्र है। २—छात्र पर दया करता है। ३—अध्यापक शिष्य पर शासन करता है। ४—धन के कारण वहाँ जाता है। ५—वह वहाँ किसलिए जाता है ? ६—विद्यालय के दक्षिण नदी है। ७—पिता को याद करता है। ८—राजा प्रजा पर शासन करता है। ९—इस बालक के समान कोई सत्यवादी नहीं है। १०—रोते हुए (रुदतः) पुत्र को छोड़कर माँ चली गई। ११—राजा सुखी हो (भूयात्)। १२—बच्चे का कल्याण होवे। १३—यह तुम्हारे योग्य नहीं है। १४—शकुन्तला दुष्यन्त की प्रिया थी। १५—देवता राक्षसों को मारते हैं। १६—राजा शत्रु को मारता है (पिष्)। १७—दुर्जन साधुको मारता है (क्रथ्)। १८—सांसारिक सुखों से लोगों की तृप्ति नहीं होती है। १९—वह अपने स्वभाव से ही सबको प्रिय है। २०—वह राम के रूप से मिलता-जुलता है। २१—विद्यार्थी को सुख कहाँ ?

दशम अभ्यास

अधिकरण कारक (सप्तमी) में, पर

संज्ञा शब्द

	ए०व०	द्वि०व०	ब०व०
पु०	बालके	बालकयोः	बालकेषु
स्त्री०	रमायाम्	रमयोः	रमासु
नपुं०	पुस्तके	पुस्तकयोः	पुस्तकेषु

सर्वनाम शब्द

पुँल्लिङ्ग			स्त्रीलिङ्ग		
ए०व०	द्वि व०	ब०व०	ए०व०	द्वि०व०	ब०व०
मयि	आवयोः	अस्मासु	मयि	आवयोः	अस्मासु
त्वयि	युवयोः	युष्मासु	त्वयि	युवयोः	युष्मासु
तस्मिन्	तयोः	तेषु	तस्याम्	तयोः	तासु
अस्मिन्	अनयोः	एषु	अस्याम्	अनयोः	आसु
कस्मिन्	कयोः	केषु	कस्याम्	कयोः	कासु
यस्मिन्	ययोः	येषु	यस्याम्	ययोः	यासु
भवति	भवतोः	भवत्सु	भवत्याम्	भवत्योः	भवतीषु

(६) तुदादिगणीय तुद् धातु (दुःख देना) परस्मैपद

वर्तमानकाल (लट्)

प्र० पु०	तुदति	तुदतः	तुदन्ति
म० पु०	तुदसि	तुदथः	तुदथ
उ० पु०	तुदामि	तुदावः	तुदामः

अनद्यतनभूतकाल (लङ्)

प्र० पु०	अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्
म० पु०	अतुदः	अतुदतम्	अतुदत
उ० पु०	अतुदम्	अतुदाव	अतुदाम

भविष्यत् काल (लृट्)

प्र० पु०	तोत्स्यति	तोत्स्यतः	तोत्स्यन्ति इत्यादि

आज्ञार्थक लोट्

प्र० पु०	तुदतु	तुदताम्	तुदन्तु
म० पु०	तुद	तुदतम्	तुदत
उ० पु०	तुदानि	तुदाव	तुदाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	तुदेत्	तुदेताम्	तुदेयुः
म० पु०	तुदेः	तुदेतम्	तुदेत
उ० पु०	तुदेयम्	तुदेव	तुदेम

तुदादिगणीय कुछ धातुएँ

	लट्	लङ्	लृट्	लोट्	विधिलिङ्
इष्-चाहना	इच्छति	ऐच्छत्	एषिष्यति	इच्छतु	इच्छेत्
स्पृश् छूना	स्पृशति	अस्पृशत्	स्पर्क्ष्यति, स्प्रक्ष्यति	स्पृशतु	स्पृशेत्
प्रच्छ्-पूछना	पृच्छति	अपृच्छत	प्रक्ष्यति	पृच्छतु	पृच्छेत्
लिख्-लिखना	लिखति	अलिखत्	लेखिष्यति	लिखतु	लिखेत्
मृ-मरना	म्रियते	अम्रियत	मरिष्यति	म्रियताम्	म्रियेत
मुच् छोड़ना	मुञ्चति	अमुञ्चत्	मोक्ष्यति	मुञ्चतु	मुञ्चेत्

(७) रुधादिगणीय रुध् (ढकना, रोकना) आत्मनेपद

वर्तमानकाल (लट्)

प्र० पु०	रुन्धे	रुन्धाते	रुन्धते
म० पु०	रुन्त्से	रुन्धाथे	रुन्ध्वे
उ० पु०	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे

अनद्यतनभूतकाल (लङ्)

प्र० पु०	अरुन्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
म० पु०	अरुन्धाः	अरुन्धाथाम्	अरुन्ध्वम्
उ० पु०	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि

भविष्यत् काल (लृट्)

प्र० पु०	रोत्स्यते	रोत्स्येते	रोत्स्यन्ते
म० पु०	रोत्स्यसे	रोत्स्येथे	रोत्स्यध्वे
उ० पु०	रोत्स्ये	रोत्स्यावहे	रोत्स्यामहे

आज्ञार्थक लोट्

प्र० पु०	रुन्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
म० पु०	रुन्त्स्व	रुन्धाथाम्	रुन्ध्वम्
उ० पु०	रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
म० पु०	रुन्धीथाः	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्
उ० पु०	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि

रुधादिगणीय कुछ धातुएँ

	लट्	लङ्	लृट्	लोट्	विधिलिङ्
भिद्—फाड़ना	भिनत्ति	अभिनत्	भेत्स्यति	भिनत्तु	भिन्द्यात्
छिद्—काटना	छिनत्ति	अच्छिनत्	छेत्स्यति	छिनत्तु	छिन्द्यात्
भुज्—भोजनकरना	भुनक्ति	अभुनक्	भोक्ष्यति	भुनक्तु	भुञ्ज्यात्

निम्नलिखित वाक्यों को ध्यान से पढ़ो—

(१) चर्मणि द्वीपिनं हन्ति (चमड़े के लिए बाघ मारते हैं)।

(२) असत्यवादिनि कोऽपि न विश्वसिति (मिथ्याभाषी में कोई विश्वास नहीं करता)।

(३) कथं माम् अस्मिन् पापकर्मणि नियुङ्क्ते भवान् (क्यों मुझे आप इस पाप कर्म में लगाते हैं)।

(४) मोक्षे तस्य अभिलाषः अस्ति (मोक्ष में उसका अभिलाष है)।

(५) गृहकार्ये संलग्नः (घर के कामों में संलग्न है)।

(६) सूर्ये उदितः कृष्णः प्रस्थितः (सूर्य उगने पर कृष्ण ने प्रस्थान किया)।

अधिकरण कारक (सप्तमी)—कर्ता की क्रिया जिस स्थान पर या जिस समय में हो उसको अधिकरण कहते हैं और अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है (आधारोऽधिकरणम्। सप्तम्यधिकरणे च)। आधार के तीन भेद हैं—(१) औपश्लेषिक—इस आधार के साथ आधेय का भौतिक संश्लेष होता है। जैसे—कटे आस्ते (चटाई पर बैठा है)। यहाँ 'पर' अर्थ का बोध भी हो रहा है और बैठनेवाले का भौतिक संश्लेष प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है। (२) वैषयिक—इस आधार के साथ आधेय का भौतिक संश्लेष होता है। इस आधार में 'विषय में' इस अर्थ का बोध होता है। यथा—मोक्षे इच्छा अस्ति (मोक्ष के विषय में इच्छा है)। (३) अभिव्यापक—इस आधार के साथ आधेय का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध होता है। इसमें 'प्रत्येक में' इस अर्थ का बोध होता है। जैसे—तिलेषु तैलम् (प्रत्येक तिल में तेल है)।

(१) जिस समय कोई काम होता है, वह सप्तमी में रखा जाता है। यथा—आसाढस्य प्रथमदिवसे (आसाढ़ महीने की प्रतिपदा को)।

(२) साधु और असाधु के प्रयोग में भी सप्तमी विभक्ति होती है (साध्वसाधुप्रयोगे च)। यथा—

साधुः कृष्णो मातरि (कृष्ण अपनी माता के लिए बहुत अच्छा है)।

(३) जिस निमित्त या प्रयोजन से कोई कार्य किया जाता है, उसका बोध कराने के लिए सप्तमी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है (निमित्तात्कर्मयोगे)। यथा—चर्मणि द्वीपिनं हन्ति (चमड़े के लिए बाघ मारते हैं)।

चर्म की प्राप्ति के लिए ही हत्या-व्यापार का सम्पादन हुआ है। अतएव सप्तमी विभक्ति प्रयुक्त हुई है।

(४) यदि किसी वस्तु की, अपने समुदाय के अन्य अवयवों से किसी विशेषण द्वारा कुछ विशेषता निर्दिष्ट की जाती है तो समुदायवाचक शब्द में षष्ठी अथवा सप्तमी विभक्ति प्रयुक्त होती है (यतश्च निर्धारणम्)। यथा—

छात्राणां छात्रेषु वा विनयः सुशीलः—छात्रों में विनय सुशील है।

कवीनां कविषु वा कालिदासः श्रेष्ठः—कवियों में कालिदास श्रेष्ठ हैं।

(५) प्रसित (अत्यन्त इच्छुक) तथा उत्सुक (अत्यन्त इच्छुक) शब्दों के योग में सप्तमी अथवा तृतीया विभक्ति होती है। यथा—

निद्रायाम् उत्सुकः (नींद का इच्छुक है)।

शिष्यः विद्यायां विद्यया वा उत्सुकः (शिष्य विद्या का अत्यन्त इच्छुक है)।

(६) व्यवहार या आचरण अर्थवाले शब्दों के योग में जिसके प्रति व्यवहार या आचरण किया जाता है, उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

अस्मिन् विनयेन वर्तताम् (इसके प्रति विनयपूर्वक व्यवहार करें)।

(७) स्नेह, आदर, अनुराग तथा इनका अर्थ देनेवाले शब्दों के योग में जिसके लिए स्नेह, आदर अथवा अनुराग आदि का प्रदर्शन किया जाता है, उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

धर्मे तस्य अनुरागं दृष्ट्वा मनः प्रसीदति (धर्म में उसका अनुराग देखकर मन प्रसन्न होता है)।

विषयेषु आसक्तिः न शोभना (विषयों में आसक्ति अच्छी नहीं)।

न तेषु रमते बुधः (ज्ञानी उनमें रमण नहीं करता)।

बालेऽस्मिन् स्निह्यति मे मनः (मेरा मन इस लड़के में स्नेह करता है)।

(८) कारणवाची शब्दों के योग में कार्य सप्तमी विभक्ति में रखा जाता है। यथा—

दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम् (भाग्य ही मनुष्य की उन्नति तथा अवनति का कारण है)।

(९) निपूर्वक युज् (नियुक्त करना, लगाना) के साथ तथा उस (युज्) से प्रत्यय द्वारा निष्पन्न शब्दों के साथ जिस विषय में नियुक्त किया जाय उसमें सप्तमी होती है। यथा—

कथं माम् अस्मिन् पापकर्मणि नियुङ्क्ते भवान् (क्यों मुझे आप इस पापकर्म में लगाते हैं)?

(१०) व्यापृत, संलग्न, कटिबद्ध, आसक्त, व्यग्र, तत्पर एवं व्यस्त इत्यादि शब्दों के योग में जिस विषय में संलग्नता आदि हो, उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

गृहकर्मणि संलग्नः, कटिबद्धः, व्यापृतः, आसक्तः, व्यग्रः, व्यस्तः अस्ति (घर के कामों में संलग्न है)।

(११) कुशल, निपुण, पटु, प्रवीण, शौण्ड एवं पण्डित इत्यादि चतुर अर्थवाचक शब्दों के योग में तथा धूर्त और कितव (ठग, छलिया आदि) शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

सः व्यवहारे कुशलः, निपुणः, पटुः, प्रवीणः, शौण्डः, पण्डितः, चतुरः (वह व्यवहार में कुशल है)।

सः व्यवहारे धूर्तः, शठः, कितवः (वह व्यवहार में ठग है)।

(१२) अप + राध् धातु तथा उससे बने शब्दों के योग में सप्तमी प्रयुक्त होती है। यथा—

कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शकुन्तला (शकुन्तला ने किसी पूज्य व्यक्ति का अपराध किया है)।

(१३) जब किसी काम के हो जाने पर दूसरे काम का होना प्रतीत होता है, तो जो कार्य हो चुका रहता है, उसमें सप्तमी होती है। यथा—

सूर्ये उदिते कृष्णः अगच्छत् (सूर्योदय होने पर कृष्ण गया)।

(१४) 'योग्यता' अथवा 'उपयुक्तता' इत्यादि अर्थों का बोध करनेवाले शब्दों के योग में जिसके विषय में योग्यता अथवा उपयुक्तता प्रकट की जाती है, उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

युक्तरूपमिदं त्वयि (यह तुम्हारे लिए योग्य है)।

(१५) ग्रहणार्थक तथा प्रहारार्थक धातुओं के योग में जिस पर प्रहार किया जाता है या जो पकड़ा जाता है, उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

मृगेषु शरान् मुञ्चति (मृगों पर बाण छोड़ता है)।

(१६) विश्वास अर्थवाले धातुओं तथा शब्दों के योग में जिस पर विश्वास किया जाता है, उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

पुंसि विश्वसिति कुत्र कुमारी (भला कुमारी कन्या कब पुरुष का विश्वास करती है)।

(१७) स्वामिन्, ईश्वर, अधिपति, साक्षिन्, प्रतिभू (जमानत करने वाला)।

शब्दों के योग में वह षष्ठी अथवा सप्तमी में रक्खा जाता है जिसके प्रति स्वामित्व आदि का बोध कराया जाता है। यथा—

मनुष्याणां मनुष्येषु वा स्वामी (मनुष्यों का मालिक)।

देवानां देवेषु वा अधिपति, यदूनां यदुषु वा दायादः आदि।

संस्कृत में अनुवाद करो—

(१) कैकेयी भरत के लिए बहुत अच्छी है, पर राम के लिए बहुत बुरी। (२) विद्यार्थियों में राम चतुर है। (३) कवियों में कालिदास सर्वश्रेष्ठ हैं। (४) आसन पर बैठा है। (५) मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। (६) कस्तूरी के लिए कस्तूरीमृग को मारते हैं। (७) सावन महीने में मोर नाचते हैं। (८) मुनिकन्या में मेरा स्नेह नहीं है। (९) राजा दशरथ के प्रति प्रजावर्ग का बहुत बड़ा अनुराग है। (१०) इसके प्रति पुत्र जैसा प्रेम है। (११) इसे विद्यालय के काम में नियुक्त कर रखा है। (१२) यह बालक विद्या के लिए अत्यन्त इच्छुक है। (१३) विद्या में उसका अनुराग देखकर (दृष्ट्वा) मैं प्रसन्न होता हूँ। (१४) मुनि ज्ञान का अत्यन्त इच्छुक है। (१५) ज्ञानी उसमें रमता नहीं है। (१६) दुष्ट जूए में दक्ष है। (१७) चोर व्यवहार में धूर्त है। (१७) सूर्य के उदय होने पर बालक उद्यान गया। (१९) इस राजा के लिए यह उचित है। (२०) राजा सिंह पर बाण छोड़ता है। (२१) माता पुत्र पर विश्वास करती है। (२२) विद्यार्थी ने गुरु के प्रति अपराध किया है। (२३) वह मनुष्यों का स्वामी है।

एकादश अभ्यास

सम्बोधन (प्रथमा) हे, भोः

	ए०व०	द्वि०	ब०व०
पुं०	हे बालक !	हे बालकौ	हे बालकाः
स्त्री०	हे रमे	हे रमे	हे रमाः
नपुं०	हे पुस्तक	हे पुस्तके	हे पुस्तकानि

सूचना—सर्वनाम शब्दों का सम्बोधन नहीं होता।

(८) तनादिगणीय कृ (करना) आत्मनेपद

वर्तमान काल (लट्)

प्र०	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
म०	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
उ०	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

लङ्

प्र०	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
म०	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
उ०	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

लृट्

प्र०	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते

आज्ञार्थक लोट्

प्र०	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
म०	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
उ०	करवै	करवावहै	करवामहै

विधिलिङ्

प्र०	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
म०	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
उ०	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि

(९) क्र्यादिगणीय ज्ञा (जानना) परस्मैपद

लट्

प्र०	जानाति	जानीतः	जानन्ति
म०	जानासि	जानीथः	जानीथ
म०	जानामि	जानीवः	जानीमः

लङ्

प्र० पु०	अजानात्	अजानीताम्	अजानन्
म० पु०	अजानाः	अजानीतम्	अजानीत
उ० पु०	अजनाम्	अजानीव	अजानीम

लृट्

प्र० पु०	ज्ञास्यति	ज्ञास्यतः	ज्ञास्यन्ति इत्यादि

लोट्

प्र० पु०	जानातु	जानीताम्	जानन्तु
म० पु०	जानीहि	जानीतम्	जानीत
उ० पु०	जानानि	जानाव	जानाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयुः
म० पु०	जानीयाः	जानीयातम्	जानीयात
उ० पु०	जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम

क्र्यादिगणीय कुछ धातुएँ

	लट्	लङ्	लृट्	लोट्	विधिलिङ्
क्री-खरीदना	क्रीणाति	अक्रीणात्	क्रेष्यति	क्रीणातु	क्रीणीयात्
मुष्-चुराना	मुष्णाति	अमुष्णात्	मोषिष्यति	मुष्णातु	मुष्णीयात्
प्री-खुश करना	प्रीणाति	अप्रीणात्	प्रेष्यति	प्रीणातु	प्रीणीयात्
पू-पवित्र करना	पुनाति	अपुनात्	पविष्यति	पुनातु	पुनीयात्
वृ-वर छाँटना	वृणाति	अवृणात्	वरिष्यति	वृणातु	वृणीयात्
अश्-खाना	अश्नाति	आश्नात्	अशिष्यति	अश्नातु	अश्नीयात्

(१०) चुरादिगणीय कुछ धातुएँ

	लट्	लङ्	लृट्	लोट्	विधिलिङ्
चुर्-चुराना	चोरयति-ते	अचोरयत्-त	चोरयिष्यति-ते	चोरयतु-ताम्	चोरयेत्
कथ्-कहना	कथयति	अकथयत्	कथयिष्यति	कथयतु	कथयेत्
कृत्-नाम लेना	कीर्तयति	अकीर्तयत्	कीर्तयिष्यति	कीर्तयतु	कीर्तयेत्
क्षल्-धोना	क्षालयति	अक्षालयत्	क्षालयिष्यति	क्षालयतु	क्षालयेत्
खण्ड् खण्डन करना	खण्डयति	अखण्डयत्	खण्डयिष्यति	खण्डयतु	खण्डयेत्
गण्-गिनना	गणयति	अगणयत्	गणयिष्यति	गणयतु	गणयेत्
गवेष् खोजना	गवेषयति	अगवेषयत्	गवेषयिष्यति	गवेषयतु	गवेषयेत्
चिन्त्-सोचना	चिन्तयति	अचिन्तयत्	चिन्तयिष्यति	चिन्तयतु	चिन्तयेत्
तड् पीटना	ताडयति	अताडयत्	ताडयिष्यति	ताडयतु	ताडयेत्
तर्क्-सोचना	तर्कयति	अतर्कयत्	तर्कयिष्यति	तर्कयतु	तर्कयेत्
तुल् तोलना	तोलयति	अतोलयत्	तोलयिष्यति	तोलयतु	तोलयेत्
तृप् तृप्त करना	तर्पयति	अतर्पयत	तर्पयिष्यति	तर्पयतु	तर्पयिष्यति
दण्ड-दण्ड देना	दण्डयति	अदण्डयत्	दण्डयिष्यति	दण्डयतु	दण्डयेत्
धृ-पहनना	धारयति	अधारयत्	धारयिष्यति	धारयतु	धारयेत्
पाल् रक्षा करना	पालयति	अपालयत्	पालयिष्यति	पालयतु	पालयेत्
पीड्-दुःख देना	पीडयति	अपीडयत्	पीडयिष्यति	पीडयतु	पीडयेत्
भक्ष् खाना	भक्षयति	अभक्षयत्	भक्षयिष्यति	भक्षयतु	भक्षयेत्
मण्ड्-मण्डन करना	मण्डयति	अमण्डयत्	मण्डयिष्यति	मण्डयतु	अमण्डयत्
युज्-लगाना	योजयति	अयोजयत्	योजयिष्यति	योजयतु	योजयेत्
रच्-बनाना	रचयति	अरचयत्	रचयिष्यति	रचयतु	रचयेत्
लोक्-देखना	लोकयति	अलोकयत्	लोकयिष्यति	लोकयतु	लाकयेत्
लोच्-देखना	लोचयति	अलोचयत्	लोचयिष्यति	लोचयतु	लोचयेत्
स्पृह्-चाहना	स्पृहयति	अस्पृहयत्	स्पृहयिष्यति	स्पृहयतु	स्पृहयेत्

निम्नलिखित वाक्यों को ध्यान से पढ़ो—

(१) हे कृष्ण ! पुस्तकम् आनय (हे कृष्ण ! किताब लाओ)।

(२) सखे पुण्डरीक ! नैतदनुरूपं भवतः (हे मित्र पुण्डरीक ! यह आपके योग्य नहीं है)।

(३) चन्द्रापीड ! इहागच्छ (चन्द्रापीड ! यहाँ आओ)।

(४) अये देवदत्त ! इदं किं कृतम् (अरे देवदत्त ! यह क्या किया)।

(५) भोः सभ्याः ! इदं श्रृणुत (हें सभ्यगण ! यह सुनिये)।

(६) अयि देवि ! किं रोदिषि (हे देवी ; क्यों रोती है) ?

(७) अहो ! महाराज ! विद्वान् भूत्वा कथम् अयमेवं ब्रवीति (हे महाराज ! विद्वान् होकर यह ऐसा क्यों बोलता है)।

सम्बोधन (प्रथमा)—किसी को पुकार कर अपनी ओर आकृष्ट करने को सम्बोधन कहते हैं। सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति प्रयुक्त होती है और सम्बोधन-वाचक शब्द के पहले भोः, अरे, रे आदि चिह्न लगते हैं। आकारान्त और इकारान्त शब्दों के प्रथमा के एकवचन में ए (हे रमे, हे मुने) और ईकारान्त शब्दों के प्रथमा के एकवचन में 'इ' (हे नदि) और उकारन्त शब्द के प्रथमा के एकवचन में 'ओ' (हे शिशो) हो जाता है। सर्वनाम शब्दों का सम्वोधन नहीं होता और अकारान्त शब्दों के एकवचन में विसर्ग का अभाव रहता है।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—हे राम ! मुझे बचाओ। २—हे कृष्ण ! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। ३—अरे दुष्ट ! कहाँ भागा जाता है। ४—इन्द्रायुध ! अन्तरिक्ष में ही ठहर। ५—हे माता ! मैंने तुम्हारी आराधना नहीं की। ६—हे सरस्वती ! मुझे शुद्ध बुद्धि दो। ७—मित्र ! कहाँ से आ रहे हो। ८—बेटे ! गुरु पर श्रद्धा करो। ९—हे शिष्या ! तुम्हें सच बोलना चाहिए। १०—हे राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो। ११—हे ईश्वर ! मुझे मुक्ति दो। १२—हे मित्र ! क्षमा करो। १३—हे बाला ! कहाँ जाना चाहती हो। १४—लड़को, परिश्रम करो। १५—पिता जी, मैं परिश्रम करूँगा और परीक्षा में उत्तीर्ण होऊँगा। १६—हे कल्याणी ! तुम यहीं रहो, मैं वन जा रहा हूँ।

उपपद विभक्तियों की पुनरावृत्ति—

कारण बताओ कि रेखाङ्कित शब्दों में उल्लिखित विभक्तियाँ क्यों हुई हैं ?

(अ) द्वितीया

१—**धनम्** ऋते सुखं न (धन के बिना सुख नहीं)। २—**नृपम् ऋषिम्** चान्तरा कन्या (राजा और ऋषि के बीच में कन्या है।) ३—ते **वनम्** उप-

वसन्ति (वे वन में रहते हैं), ४—अलयः **कुसुमानि** आवसन्ति (भौंरे फूल में रहते हैं)। ५—सज्जनः **सन्मार्गम्** अभिनिविशते (सज्जन अच्छे मार्ग का आश्रय लेता है। ६—**बालकम्**—सर्वतः बालिकाः सन्ति (लड़के के चारों ओर लड़कियाँ हैं)। ७—**लोकम्** उपर्युपरि ईश्वरः (लोक के ऊपर-ऊपर ईश्वर है)। ८—**पर्वतम्** अधोऽधः गच्छति (पर्वत के नीचे-नीचे जाता है)। ९—**विद्यालयं** निकषा उद्यानमस्ति (विद्यालय के निकट बगीचा है)। १०—**कृतघ्नं** धिक् (कृतघ्न को धिक्कार है)। ११—हा ! **ईश्वराभक्तम्** (ईश्वर के अभक्त के लिए खेद)। १२—वामनः **बलिं वसुधां** याचते (वामन बलि से पृथ्वी माँगता है)।

(ब) तृतीया

१—कृष्णः **बालकेन** सह गच्छति (कृष्ण बालक के साथ जाता है)।

२—नरः **जलेन** मुखं प्रक्षालयति (मनुष्य जल से मुख धोता है)।

३—**हिरण्यनार्थिनो** भवन्ति राजानः (राजाओं को सोने की आवश्यकता रहती है)।

४—**प्रकृत्या** दयालुः (स्वभाव से ही दयालु है)।

५—**पादेन** खञ्जः (पैर का लंगड़ा)।

६—**पुण्येन** दृष्टो हरिः (पुण्य के कारण भगवान् को देखा)।

७—स **स्वरेण** रामभद्रमनुहरति (वह स्वर में प्रिय राम से मिलता-जुलता है)।

८—**पुत्रेण** शपामि (पुत्र की शपथ करता हूँ)।

९—अलं **श्रमेण** (परिश्रम व्यर्थ है)।

१०—कृतं कलेहन (बस झगड़ा हटाओ)।

(स) चतुर्थी

१—उपदेशो हि मूर्खाणां **प्रकोपाय** न **शान्तये** (मूर्खों को उपदेश देना केवल उनके क्रोध को बढ़ाना है न कि उनकी शान्ति के लिए)।

२—खलाः **सज्जनेभ्यः** असूयन्ति (दुष्ट सज्जनों से असूया करते हैं)।

३—अलं मल्लो **मल्लाय** (पहलवान, पहलवान के लिए काफी है)।

४—नमः **शिवाय** (शिव को नमस्कार है)।

५—फलेभ्यः स्पृहयति (फलों की स्पृहा करता है)।

६—नृपः मुनये गां प्रतिश्रृणोति (राजा मुनि को गाय देने की प्रतिज्ञा करता है)।

७—कुण्डलाय हिरण्यम् (कुण्डल बनाने के लिए सोना)।

८—देवदत्तः भृत्याय क्रुध्यति (देवदत्त नौकर पर क्रोध करता है)।

९—पुत्राय ईक्षते जननी (माता पुत्र के शुभाशुभ का विचार कर रही है)।

(द) पञ्चमी

१—नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात् पातकं महत् (सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं और झूठ से बढ़कर कोई पाप नहीं)।

२—मूर्खो हि चापलेन भिद्यते पण्डितात् (मूर्ख का चपलता के कारण पण्डित से भेद समझा जाता है)।

३—पापात् निवारयति (पाप से हटाता है)।

४—मुनिः पापात् बिभेति (मुनि पाप से डरता है)।

५—गोमयात् वृश्चिकः जायते (गोबर से विच्छू पैदा होता है)।

६—जन्मभूमिः स्वर्गात् गरीयसी (जन्मभूमि स्वर्ग से श्रेष्ठ है)।

७—हिमालयात् गङ्गा प्रभवति (गङ्गा हिमालय से निकलती है)।

८—अधर्मात् दुःखं जायते (अधर्म से दुःख होता है)।

९—धीरा मनस्विनो न धनात्प्रतियच्छन्ति मानम् (धीर मनस्वी लोग धन के बदले मान को नहीं छोड़ते)।

१०—ऋते वसन्तान्नापरः ऋतुराजः (वसन्त के अतिरिक्त अन्य ऋतु को ऋतुराज नहीं कहते)।

(य) षष्ठी

१—दवदहनजटालज्वालजालाहतानाम्,
परिगलितलतानां म्लायतां भूरुहाणाम्
अयि जलधर ! शैलश्रेणिशृङ्गेषु तोयं,
वितरसि बहु कोऽयं श्रीमदस्तावकीनः ।

(ऐ बादल, तेरा यह कैसा घमण्ड है कि दावाग्नि की लपटों से जले हुए, गलित लताओं वाले, म्लान वृक्षों का अनादर करके तू पर्वत-शिखरों को खूब पानी देता है)।

२—**कोऽतिभारः समर्थानाम्** ? (कार्य में समर्थ लोगों के लिए क्या कठिन है ?) ? ३—चिरं दृष्टस्य **तस्य** (उसे देखे हुए बहुत दिन हो गया है)। ४—**भोगानां** ते न तृप्यन्ति (भोगों से वे सन्तुष्ट नहीं होते)। ५—कायः **कस्य** न वल्लभः (शरीर किसे प्यारा नहीं है)। ६—त्वं **लोकस्य** वाल्मीकिः, **मम** पुनस्तात एव (तुम संसार के लिए वाल्मीकि हो, किन्तु मेरे तो तुम पिता हो)।

(फ) सप्तमी

१—**चर्मणि** द्वीपिनं हन्ति **दन्तयो**र्हन्ति कुञ्जरम् ।
केशेषु चमरीं हन्ति **सीम्नि** पुष्कलको हतः ॥

(लोग चमड़े के लिए बाघ, दांत के लिए हाथी, केश के लिए चमरी और अण्डकोश (जिसमें कस्तूरी रहती है) के लिए कस्तूरी मृग को मारते हैं)।

२—**अस्मिन् दुर्जने** कथं तवैवं विश्वासः (इस दुष्ट में तेरा ऐसा विश्वास कैसे हुआ)। (३) **बालेऽस्मिन्** स्निह्यति मे मनः (मेरा मन इस लड़के में स्नेह करता है)। ४—**सूर्ये उदिते** कृष्णः प्रस्थितः (सूर्य उगने पर कृष्ण ने प्रस्थान किया)।

५—गते **भीष्मे** हते **द्रोणे कर्णे** च विनिपातिते ।
आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ॥

(भीष्म के चले जाने पर, द्रोण के मारे जाने पर और कर्ण के मार गिराये जाने पर, हे राजन् आशा ही बलवती है कि शल्य पाण्डवों को जीतेगा)। ६—**काव्येषु** नाटकं रम्यम् (काव्यों में नाटक श्रेष्ठ है)।

कारक (एक दृष्टि में)

प्रथमा—१—कर्ता में—रामः पठति ।
२—कर्मवाच्य के कर्म में—वटुभिः पठ्यते वेदः ।
३—सम्बोधन में—हे राम ! हे कृष्ण ।
४—अव्यय के साथ—मिथिलायां जनक इति ख्यातः नृपः आसीत् ।
५—नाम मात्र में—सुदर्शनो नाम नरपतिरासीत् ।

द्वितीया—१—कर्म में—स रामं पश्यति ।

२—गत्यर्थक धातुओं के साथ—ग्रामं गच्छति ।

३—अभि एवं नि पूर्वक विश् धातु के योग में—सन्मार्गम् अभिनिविशते ।

४—उप, अनु, अधि एवं आङ्-पूर्वक वस् धातु के साथ—हरिः वैकुण्ठम् उपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति वा ।

५—अन्तरा और अन्तरेण के योग में—अन्तरा त्वां मां हरिः । ज्ञानमन्तरेण न सुखम् ।

६—विना एवं ऋते अव्यय के योग में—ज्ञानं विना, ऋते वा नैव सुखम् ।

७—उभयतः, सर्वतः के साथ—उभयतः कृष्णं गोपाः, सर्वतः कृष्णं गोपाः ।

८—धिक् के योग में—धिक् दुर्जनम् ।

९—उपर्युपरि, अधोऽधः एवं अध्यधि शब्दों के योग में—लोकम् उपर्युपरि, अधोऽधः, अध्यधि, ईश्वरः अस्ति ।

१०—अभितः के योग में—ग्रामम् अभितः ।

११—परितः के योग में—ग्रामं परितः वनमस्ति ।

१२—समया के योग में—ग्रामं समया पाठशाला अस्ति ।

१३—निकषा के योग में—विद्यालयम् निकषा वनम् अस्ति ।

१४—हा के योग में—हा दुर्जनम् ।

१५—प्रति के योग में—वनं प्रति गच्छति ।

१६—द्विकर्मक धातुओं के योग में—गां दोग्धि पयः वृक्षमवचिनोति-फलानि ।

१७—समय तथा दूरी को बतलाने वाले शब्दों में नैरन्तर्य बतलाने के लिए—पञ्चवर्षाणि पठति । क्रोशं गच्छति ।

१८—अधि उपसर्गपूर्वक शी धातु के योग में—आसनम् अधिशेते ।

१९—अधि उपसर्गपूर्वक स्था धातु के योग में—आसनम् अधितिष्ठति ।

२०—अधि उपसर्गपूर्वक आस् धातु के योग में—आसनम् अध्यास्ते ।

२१—क्रिया विशेषण शब्द में—कुक्कुरः सत्वरं धावति ।

२२—नामधरना, समझना, इत्यादि अर्थ वाली धातुओं के योग में—स त्वां मूर्खं जानाति । त्वामामनन्ति पुरुषाः प्रकृतिम् ।

तृतीया—१—करण में—कन्दुकेन क्रीडति ।

२—कर्मवाच्य या भाववाच्य कर्ता में—रामेण गृहं गम्यते, रामेण भूयते ।

३—प्रकृति (स्वभाव) आदि अर्थों में—दुःखेन जीवति ।

४—अपवर्ग में—मासेन व्याकरणम् अधीतवान् ।

५—सह, साकम् , सार्धम् और समम् के योग में—जनकेन सह, साकं सार्धं समं वा गृहं गच्छति ।

६—गत्यर्थक धातुओं के योग में जिसके द्वारा गमन किया जाता है, उसमें—सः रथेन चिकित्सालयं गच्छति ।

७—पृथक् , विना, नाना आदि शब्दों के योग में—रामेण विना०...।

८—विकृत अङ्ग में—नेत्रेण काणः ।

९—तुल्य एवं सदृश शब्दों के साथ—कृष्णेन तुल्यः सदृशः वा ।

१०—हेतु में—अध्ययनेन वसति ।

११—जिस विशेष चिह्न से कोई ज्ञापित हो, उसमें—जटाभिः यतिः ।

१२—शपथबोधक शब्दों के योग में—सत्येन शपामि ।

१३—जिस पर कोई वस्तु ढोई जाय, उसमें—स शिरसा तव पादुकां वहति ।

१४—जिस मार्ग का अनुसरण किया जाय, उसमें—कतमेन दिग्भागेन सः अगच्छत् ।

१५—जिस गुण में बढ़ जाने या सदृश होने की बात कही जाय, उसमें—त्वं विनयेन सर्वान् भ्रातॄन् अतिशेषे ।

१६—ऊन अर्थ वाले शब्दों के योग में—एकेन ऊनः ।

१७—निषेध अर्थ वाले शब्दों के योग में—विद्यया शून्यः ।

१८—प्रयोजन अर्थ वाले शब्दों के योग में—धनेन किं प्रयोजनम् ?

१९—दिव् धातु की क्रिया के प्रधान साधन में—अक्षैः दीव्यति ।

चतुर्थी—१—सम्प्रदान में—विप्राय धानं ददाति ।

२—रुच् धातु तथा रुच् के समान अर्थ वाली धातुओं के योग में—पुत्राय दुग्धं रोचते ।

३—क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्य् तथा असूय् धातुओं के योग में—रामः मूर्खाय क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति ।

४—स्पृह् धातु के योग में—पुष्पेभ्यः स्पृहयति ।

५—प्रयोजन में—काव्यं यशसे ।

६—नमः के योग में—नमः शिवाय ।

७—स्वस्ति के योग में—नृपाय स्वस्ति ।

८—स्वाहा के योग में—अग्नये स्वाहा ।

९—स्वधा के योग में—पितृभ्यः स्वधा ।

१०—अलं के योग में—हरिः दैत्येभ्यः अलम् ।

११—वषट् के योग में—इन्द्राय वषट् ।

१२—प्रति और आपूर्वक श्रु धातु के योग में-दरिद्राय वस्त्रं प्रतिश्रृणोति आश्रृणोति वा ।

१३—धारि धातु के योग में—रामः गोविन्दाय शतं धारयति ।

१४—तुमुन्-प्रत्ययान्त के कर्म में—फलेभ्यो याति ।

१५—तुमुन् अर्थ से युक्त धातु-निष्पन्न भाववाचक संज्ञा में-यागाय याति ।

१६—जिस वस्तु के निर्माण के लिए दूसरी वस्तु का प्रयोग किया जाय, उसमें—यूपाय दारु ।

१७—हित और सुख के योग में—लोकाय हितम् । ब्राह्मणाय सुखम् ।

१८—गत्यर्थक धातु के कर्म में—ग्रामाय गच्छति ।

१९—कथन अर्थवाली क्रिया के योग में—कथयामि ते भूतार्थम् ।

२०—भेजना अर्थवाली धातु के योग में—मुनिः नृपाय एकं शिष्यं प्रेषितवान् ।

२१—क्लृप् धातु तथा इसके समान अर्थ रखनेवाली धातुओं के योग में— मूत्राय कल्पते, जायते, सम्पद्यते यवागूः ।

२२—राध् एवं ईक्ष् धातु के योग में-बालकाय राध्यति ईक्षते वा पिता ।

२३—प्रणम् इत्यादि धातुओं के कर्म में—ते गुरुभ्यः प्रणमन्ति ।

२४—स्वागतम्, कुशलम् आदि के योग में—रामाय स्वागतम्, कुशलं, भद्रं, सुखं वा ।

२५—मन् धातु के गौण कर्म में—त्वां तृणाय मन्ये ।

२६—मूल्य तथा पारिश्रमिक शब्द में—शताय परिक्रीतोऽयं दासः ।

२७—उपदिशति के योग में—शिक्षकः छात्रेभ्यः धर्ममुपदिशति ।

पञ्चमी—१-पृथक् अर्थ में—वृक्षात् पत्रं पतति ।

२—जुगुप्सते के साथ—पापात् जुगुप्सते ।

३—विरमति के साथ—पापात् विरमति ।

४—प्रमाद्यति के साथ—धर्मात् प्रमाद्यति ।

५—भय अर्थ वाले धातु के योग में—बालकः सर्पात् बिभेति ।

६—रक्षा अर्थ वाले धातु के योग में—ईश्वरः दुःखात् रक्षति ।

७—'वारण' अर्थ वाले धातु के योग में—यवेभ्यो गां वारयति ।

८—परापूर्वक जि धातु के योग में—अध्ययनात् पराजयते ।

९—जिससे छिपा या छिपाया जाय, उसमें—मातुर्निलीयते कृष्णः ।

१०—जिससे कोई विद्या सीखी जाय, उसमें—उपाध्यायादधीते ।

११—जन् धातु के कर्ता में—प्रजापतेः लोकः जायते ।

१२—भू धातु के कर्ता के उद्गम स्थान में—हिमालयाद् गङ्गा प्रभवति ।

१३—ल्यप् प्रत्ययान्त क्रिया के लुप्त रहने पर क्रिया के कर्म और आधार में—श्वशुरात् जिह्रेति ।

१४—काल और मार्ग की अवधि में—विवाहात् नवमे दिने ।

१५—ईयसुन् अथवा तरप्-प्रत्ययान्त विशेषणों के साथ—जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।

१६—अन्य के योग में—कृष्णात् अन्यः को मां रक्षेत् ।

१७—इतर, आरात्, ऋते आदि के योग में—आरात् विद्यालयात् । ज्ञानात् ऋते न मुक्तिः ।

१८—दिशावाचक और कालवाचक शब्दों के योग में—पूर्वः गृहात् । चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः ।

१९. आ और आहि प्रत्ययान्त शब्दों के योग में—आ कैलाशात्। गृहात् दक्षिणाहि गर्तः।

२०—प्रभृति, परम्, अनन्तरम् के योग में—शैशवात् प्रभृति। तस्मात् परम् अनन्तरम् वा।

२१—बहिः और ऊर्ध्वम् के योग में—गृहाद्बहिः। मासादूर्ध्वम्।

२२—कर्मप्रवचनीय-संज्ञक अप, परि और आङ् के योग में—अप परि वा हरेः संसारः। आ जन्मनः आ मरणात् स्वकर्त्तव्यं पालयेन्नरः।

२३—प्रतिनिधि एवं प्रतिदान के अर्थ में प्रति के योग में—तण्डुलेभ्यः प्रतियच्छति गोधूमान्।

२४—हेतु या कारण प्रकट करने वाले अस्त्रीलिङ्ग शब्द में—जाड्यात् बद्धः।

२५—ग्रहण एवं प्राप्ति अर्थ वाले धातुओं के योग में—पुत्रात् सुखमवाप्नोति प्रजाभ्यः करमादत्ते।

षष्ठी—१ सम्बन्ध में—देवदत्तस्य धनम्।

२—हेतु शब्द के योग मे—अन्नस्य हेतोः वसति।

३—दिशावाची अतसुच् (तस्) प्रत्ययान्त शब्दों के योग में—ग्रामस्य दक्षिणतः।

४—दूर अन्तिक शब्द के योग में—वनं ग्रामस्य दूरम्। आदि।

५—अधिपूर्वक 'इ' धातु, दय्, ईश् धातुओं के योग में—शिक्षकः शिष्यस्य ईष्टे। बलवान् निर्बलस्य दयते। माता पुत्रस्य स्मरति। आदि।

६—कृत् प्रत्ययों के कर्ता और कर्म में—छात्रस्य पठनम्। आदि।

७—अनादर में—रुदतः पुत्रस्य सः वनम् अगच्छत्।

८—आशीर्वाद अभिप्रेत होने पर 'कुशल' इत्यादि शब्दों के योग में—कृष्णस्य कुशलं स्यात्।

९—अनु उपसर्गपूर्वक कृ धातु के योग में—शैलाधिपस्यानुचकार लक्ष्मीम्।

१०—अनुरूप इत्यादि शब्दों के योग में—नैतदनुरूपं भवतः।

११—'कृते' और 'समक्षम्' के योग में—राज्ञः समक्षम्।

१२—प्रिय, वल्लभ के योग में—कायः कस्य न वल्लभः।

१३—नि और प्र पूर्वक हन्, क्रथ् एवं पिष् धातु के कर्म में—रामः राक्षसस्य निप्रहन्ति, क्राथयति, पिनष्टि वा।

१४—तृप्ति अर्थ वाले धातुओं के योग में—भोगानां न तृप्यन्ति जनाः।

सप्तमी १—अधिकरण में—विद्यालये पठति।

२—साधु, असाधु के प्रयोग में—साधुः कृष्णो मातरि।

३—किसी निमित्त का बोध कराने के लिए—चर्मणि द्वीपिनं हन्ति।

४—निर्धारण में—बालकेषु श्यामः उत्तमः।

५—प्रसित, उत्सुक शब्दों के योग में—निद्रायाम् उत्सुकः।

६—व्यवहार अर्थ वाले शब्दों के योग में—अस्मिन् विनयेन वर्तताम्।

७—स्नेह, आदर का अर्थ देने वाले शब्दों के योग में—अस्मिन् स्निह्यति मे मनः।

८—कारणवाची शब्दों के योग में कार्य में—दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम्।

९—युज् धातु के योग में—त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं तस्मिन् युज्यते।

१०—व्यापृत, संलग्न आदि शब्दों के योग में—गृहकर्मणि व्यापृतः।

११—पटु अर्थवाचक शब्दों के योग में—सः व्यवहारे कुशलः, पटुः।

१२—शठ अर्थवाचक शब्दों के योग में—सः व्यवहारे शठः, धूर्तः।

१३—अप + राध् के योग में—कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा सा।

१४—योग्यता, उपयुक्तता इत्यादि अर्थों का बोध कराने वाले शब्दों के योग में—युक्तरूपमिदं त्वयि।

१५—ग्रहणार्थक तथा प्रहारार्थक धातुओं के योग में—मृगेषु शरान् मुञ्चति।

१६—विश्वास अर्थ वाले धातुओं के योग में—पुंसि विश्वसिति कुत्र कुमारी।

१७—अधिपति, स्वामिन् शब्दों के योग में—मनुष्येषु अधिपतिः।

निम्नलिखित वाक्यों को शुद्ध करो—

१—हरिः वैकुण्ठे आवसति। २—लोकस्य उपर्युपरि शम्भुः अस्ति। ३—धिक् दुर्जनाय। ४—अधोऽधो लोकस्य। ५—आचार्यः शिष्यस्य धर्मं ब्रवीति। ६—भूपतिः सिंहासने अध्यास्ते। ७—मुनिः शिलायाम् अधिशेते। ८—पुत्रस्य

सार्धं पिता विद्यालयं न गच्छति। ९—शिशुः पादस्य खञ्जः अस्ति। १०—रूपेषु राममनुहरति। ११—फलं स्पृहयति। १२—बालकं पुस्तकं ददाति। १३—खलाः सज्जनात् असूयन्ति। १४—अध्ययनं गच्छति। १५—शिक्षकः छात्रं धर्ममुपदिशति १६—कृष्णं राध्यति गर्गः। १७—छात्रात् ईक्षते गुरुः। १८—बालकः कुक्कुरेण बिभेति। १९—पापेन निवारयति। २०—पापैः जुगुप्सते। २१—गोमयेन वृश्चिकः जायते। २२—हिमालयेन गङ्गा प्रभवति। २३—केशाय चमरीं हन्ति। २४—आसनं शोभते शिक्षकः। २५—धर्माय अनुरागं दृष्ट्वा मनः प्रसीदति। २६—असत्यवादिनं कोऽपि न विश्वसिति। २७—कथं माम् अस्मिन् पापकर्मं नियुङ्क्ते भवान्?

१-वैकुण्ठम्। २-लोकम्। ३-दुर्जनम्। ४-लोकम्। ५-शिष्यम्। ६-सिंहासनम्। ७-शिलाम्। ८-पुत्रेण। ९-पादेन। १०-रूपेण। ११-फलाय। १२-बालकाय। १३-सज्जनेभ्यः। १४-अध्ययनाय। १५-छात्राय। १६-कृष्णाय। १७-छात्रेभ्यः। १८-कुक्कुरात्। १९-पापात्। २०-पापात्। २१-गोमयात्। २२-हिमालयात्। २३-केशेषु। २४-आसने। २५-धर्मे। २६-असत्यवादिनि। २७-पापकर्मणि।

द्वितीय सोपान

सर्वनाम-विचार

अस्मद्

	ए०व०	द्वि०	ब०व०
(प्र०)	अहम् (मैं)	आवाम् (हम दो)	वयम् (हम)
(द्वि०)	माम् (मुझको)	आवाम् (हम दो को)	अस्मान् (हमको)
(तृ०)	मया (मैंने)	आवाभ्याम् (हम दोनों ने)	अस्माभिः (हमने)
(च०)	मह्यम् (मेरे लिए)	आवाभ्याम् (हम दोनों के लिए)	अस्मभ्यम् (हमारे लिए)
(पं०)	मत् (मुझसे)	आवाभ्याम् (हम दो से)	अस्मत् (हमसे)
(ष०)	मम (मेरा)	आवयोः (हम दो का)	अस्माकम् (हमारा)
(स०)	मयि (मुझ पर)	आवयोः (हम दो पर)	अस्मासु (हम पर)

युष्मद्

(प्र०)	त्वम् (तू)	युवाम् (तुम दो)	यूयम् (तुम सब)
(द्वि०)	त्वाम् (तुझको)	युवाम् (तुम दो को)	युष्मान् (तुमको)
(तृ०)	त्वया (तूने)	युवाभ्याम् (तुम दोनोंने)	युष्माभिः (तुमने)
(च०)	तुभ्यम् (तेरे लिए)	युवाभ्याम् (तुम दो के लिए)	युष्मभ्यम् (तुम्हारे लिए)
(पं०)	त्वत् (तुझसे)	युवाभ्याम् (तुम दो से)	युष्मत् (तुमसे)
(ष०)	तव (तेरा)	युवयोः (तुम दो का)	युष्माकम् (तुम्हारा)
(स०)	त्वयि (तुमपर)	युवयोः (तुम दो पर)	युष्मासु (तुम पर)

[1]भवत् (आप-प्रथम पुरुष)

पुंल्लिङ्ग

प्र०	भवान्	भवन्तौ	भवन्तः
द्वि०	भवन्तम्	भवन्तौ	भवतः

---

१. नपुंसकलिङ्ग में (प्र० और द्वि० विभक्ति में) भवत्, भवती, भवन्ति और तृतीया से पुं० के तुल्य रूप चलेंगे।

तृ०	भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः
च०	भवते	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
पं०	भवतः	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
ष०	भवतः	भवतोः	भवताम्
स०	भवति	भवतोः	भवत्सु
सं०	हे भवन्	हे भवन्तौ	हे भवन्तः

स्त्रीलिङ्ग

	ए० व०	द्वि व०	ब० व०
प्र०	भवती	भवत्यौ	भवत्यः
द्वि०	भवतीम्	भवत्यौ	भवतीः
तृ०	भवत्या	भवतीभ्याम्	भवतीभिः
च०	भवत्यै	भवतीभ्याम्	भवतीभ्यः
पं०	भवत्याः	भवतीभ्याम्	भवतीभ्यः
ष०	भवत्याः	भवत्योः	भवतीनाम्
स०	भवत्याम्	भवत्योः	भवतीषु
सं०	हे भवति	हे भवत्यौ	हे भवत्यः

तद् (वह) पुँल्लिङ्ग

(प्र०)	सः (वह)	तौ (वे दो)	ते (वे)
(द्वि०)	तम् (उसको)	तौ (उन दो को)	तान् (उनको)
(तृ०)	तेन (उसने)	ताभ्याम् (उन दो ने)	तैः (उन्होंने)
(च०)	तस्मै (उसके लिए)	ताभ्याम् (उन दो के लिए)	तेभ्यः (उनके लिए)
(पं०)	तस्मात् (उससे)	ताभ्याम् (उन दो से)	तेभ्यः (उनसे)
(ष०)	तस्य (उसका)	तयोः (उन दो का)	तेषाम् (उनका)
(स०)	तस्मिन् (उस पर)	तयोः (उन दो पर)	तेषु (उन पर)

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	सा	ते	ताः
द्वि०	ताम्	ते	ताः
तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभिः

च० तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः
पं० तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
ष० तस्याः	तयोः	तासाम्
स० तस्याम्	तयोः	तासु

नपुंसकलिङ्ग

प्र० तत्	ते	तानि
द्वि० तत्	ते	तानि
तृ० तया	ताभ्याम्	ताभिः
च० तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पं० तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
ष० तस्य	तयोः	तेषाम्
स० तस्मिन्	तयोः	तेषु

इदम् (यह)

पुँल्लिङ्ग

ए० व०	द्विव०	ब० व०
प्र० अयम्	इमौ	इमे
द्वि० इमम्	इमौ	इमान्
तृ० अनेन	आभ्याम्	एभिः
च० अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पं० अस्मात्	आभ्या	एभ्यम्ः
ष० अस्य	अनयोः	एषाम्
स० अस्मिन्	अनयोः	एषु

स्त्रीलिङ्ग

ए० व०	द्विव०	ब० व०
प्र० इयम्	इमे	इमाः
द्वि० इमाम्	इमे	इमाः
तृ० अनया	आभ्याम्	आभिः
च० अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः

पं० अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
ष० अस्याः	अनयोः	आसाम्
स० अस्याम्	अनयोः	आसु

नपुंसकलिङ्गः

प्र० इदम्	इमे	इमानि
द्वि इदम्	इमे	इमानि

शेष विभक्तियाँ पुँल्लिङ्ग की भाँति होती हैं।

एतत् (यह)

पुँल्लिङ्ग

ए० व०	द्विव०	ब० व०
प्र० एषः	एतौ	एते
द्वि० एतम्	एतौ	एतान्
तृ० एतेन	एताभ्याम्	एतैः
च० एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पं० एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
ष० एतस्य	एतयोः	एतेषाम्
स० एतस्मिन्	एतयोः	एतेषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र० एषा	एते	एताः
द्वि० एताम्	एते	एताः
तृ० एतया	एताभ्याम्	एताभिः
च० एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः
पं० एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
ष० एतस्याः	एतयोः	एतासाम्
स० एतस्याम्	एतयोः	एतासु

नपुंसकलिङ्ग

प्र० एतत्	एते	एतानि
द्वि० एतत्	एते	एतानि

शेष विभक्तियाँ पुँल्लिङ्ग की भाँति

अदस् (वह)

पुँल्लिङ्ग

प्र० असौ	अमू	अमी
द्वि० अमुम्	अमू	अमून्
तृ० अमुना	अमूभ्याम्	अमीभि
च० अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पं० अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
ष० अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
स० अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र० असौ	अमू	अमूः
द्वि० अमूम्	अमू	अमूः
तृ० अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
च० अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
पं० अमुष्याः	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
ष० अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम्
स० अयुष्याम्	अमुयोः	अमूषु

नपुंसकलिङ्ग

प्र० अदः	अमू	अमूनि
द्वि० अदः	अमू	अमूनि

शेष विभक्तियाँ पुँल्लिङ्ग के समान ।

यत् (जो)

पुँल्लिङ्ग

प्र० यः	यौ	ये
द्वि० यम्	यौ	यान्
तृ० येन	याभ्याम्	यैः
च० यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः

पं० यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः
ष० यस्य	ययोः	येषाम्
स० यस्मिन्	ययोः	येषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र० या	ये	याः
द्वि० याम्	ये	याः
तृ० यया	याभ्याम्	याभिः
च० यस्यै	याभ्याम्	याभ्यः
पं० यस्याः	याभ्याम्	याभ्यः
ष० यस्याः	ययोः	यासाम्
स० यस्याम्	ययोः	यासु

नपुं०

प्र० यत्	ये	यानि
द्वि० यत्	ये	यानि

शेष विभक्तियाँ पुँल्लिङ्ग के समान

किम् (कौन ?)

पुँल्लिङ्ग

प्र० कः	कौ	के
द्वि० कम्	कौ	कान्
तृ० केन	काभ्याम्	कैः
च० कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पं० कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
ष० कस्य	कयोः	केषाम्
स० कस्मिन्	कयोः	केषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र० का	के	काः
द्वि० काम्	के	काः
तृ० कया	काभ्याम्	काभिः

च० कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः
पं० कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः
ष० कस्याः	कयोः	कासाम्
स० कस्याम्	कयोः	कासु

नपुंसकलिङ्ग

प्र० किम्	के	कानि
द्वि० ,,	,,	,,

शेष विभक्तियाँ पुँल्लिङ्ग के समान

सर्वनाम शब्द और उनका प्रयोग

हिन्दी में 'सर्वनाम' शब्द का अर्थ 'किसी संज्ञा के स्थान में आया हुआ शब्द' है और यही अर्थ अँग्रेजी के Pronoun का भी है, किन्तु जब किसी वाक्य या सन्दर्भ में एक ही संज्ञा को बार-बार दुहराने की आवश्यकता पड़ती है, तब भी सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है, कारण एक केवल संज्ञा का प्रयोग हो जाने पर उस सम्पूर्ण संदर्भ या वाक्य में संज्ञाओं के बदले सर्वनाम आकार उनका प्रतिनिधित्व कर लेता है। अतएव रचना या किसी भी भाषा के वाग्व्यवहार के लिए सर्वनाम एक बहुत बड़ा सहायक है।

इदमादि सर्वनामों में इदम् (यह), अदस् (वह), युष्मत् (तू, तुम) अस्मद् (मैं, हम) और भवान् (आप) इन सभी के रूप निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होते हैं—

(१) समीप की वस्तु समझी जाने के लिए 'इदम्' शब्द, अधिक समीपवर्ती वस्तु समझी जाने के लिए 'एतद्' शब्द, दूरवर्ती व्यक्ति या वस्तु का बोध कराने के लिए 'अदस्' शब्द तथा अनुपस्थित किसी व्यक्ति या वस्तु के लिए 'तद्' शब्द का प्रयोग किया जाता है। जैसा कि इस श्लोक में बतलाया गया है—

इदमस्तु सन्निकृष्टं समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टं तदिति परोक्षे विजानीयात्॥

(२) इदम् और एतद् शब्दों के द्वारा यदि किसी वाक्य में किसी संज्ञा का वर्णन करके दूसरे वाक्य में फिर वही संज्ञा प्रयुक्त हो तो ऐसी दशा में इदम् और एतद् शब्द के स्थान में द्वितीया (तीनों वचन), तृतीया एकवचन और षष्ठी तथा सप्तमी के द्विवचन में 'एन' आदेश हो जाता है। यथा—

अनेन व्याकरणम् अधीतम् एनं छन्दोऽध्यापय (इसने व्याकरण पढ़ लिया, अब इसे छन्द पढ़ाओ)।

अनयोः पवित्रं कुलम् एनयोः प्रभूतं बलम् (इन दोनों का पवित्र कुल है, इन दोनों में महान बल है)।

(३) अस्मद् शब्द के वैकल्पिक रूप—

द्वि०—मा नौ नः। च०-मे नौ नः। ष०—मे नौ नः।

इन वैकल्पिक रूपों को सब जगह प्रयुक्त नहीं कर सकते। वाक्य के आरम्भ में, पद्य के चरण के आदि में, तथा च, वा, ह, हा, अह, एव—इन अव्ययों के ठीक पूर्व तथा सम्बोधन शब्द (हे बालक! आदि) के ठीक बाद इनका प्रयोग निषिद्ध है; यथा 'मे गृहम्' कहना संस्कृत व्याकरणानुसार वर्जित है क्योंकि 'मे' वाक्य के प्रारम्भ में है। यही नियम युष्मद् के भी वैकल्पिक रूपों (त्वा, वाम्, वः; ते, वाम्, वः; ते, वाम्, वः) पर ठीक इसी प्रकार लागू है। इनके प्रयोगों को निम्नलिखित दो श्लोकों में देखा जा सकता है।

श्रीशस्त्वावतु मापीह दत्ता ते मेऽपि शर्म सः।
स्वामी ते मेऽपि स हरिः पातु वामपि नौ विभुः॥
सुखं वां नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः।
सोऽव्याद्वो नः शिवं वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र वः स नः॥

(४) संस्कृत के 'भवत्' शब्द का अर्थ 'आप' है। क्रिया आदि का प्रयोग करने के लिए यह अन्यपुरुषवाची है। यथा—भवान् आगच्छतु।

(५) कभी-कभी भवत् के पूर्व 'अत्र' और 'तत्र' शब्द जोड़कर 'अत्रभवत्' और 'तत्रभवत्' शब्द होते हैं। भवत् के तुल्य ही इन शब्दों के रूप चलते हैं, केवल अर्थ में थोड़ा भेद है। निकटवर्ती किसी मान्य पुरुष के सम्बन्ध में 'अत्र-भवत्' प्रयुक्त होता है, दूरवर्ती किसी मान्य पुरुष के सम्बन्ध में 'तत्रभवत्' प्रयुक्त होता है। यथा—अत्रभवान् आचार्यः अस्मान् आज्ञापयति; तत्रभवान् कालिदासः प्रख्यातः कविरासीत्।

(६) सम्बन्धसूचक हिन्दी के 'जो' शब्द के लिए संस्कृत में 'यद्' शब्द है। इसके रूप सभी लिङ्गों में पहले दिए गए हैं। इसके साथ के 'सो' शब्द के लिए 'अदस्' अथवा 'तद्' शब्द के रूप आवश्यकतानुसार प्रयुक्त होते हैं। यथा—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥

(जो मनुष्य आत्महत्या करते हैं वे मरकर ऐसे लोकों में पहुँचते हैं जो असुरों के हैं तथा जिनमें सदा अँधेरा रहता है)।

या षोडशवर्षीया आसीत् सा ब्रह्मचारिणोढा (जो सोलह वर्ष की थी उसके साथ ब्रह्मचारी ने व्याह किया)। इत्यादि।

(७) प्रश्नवाची सर्वनाम 'कौन, क्या' के लिए संस्कृत में 'किम्' शब्द है। इसके रूप तीनों लिङ्गों में भिन्न २ होते हैं जो पहले दिए गये हैं। यह सर्वनाम प्रश्न पूछने में प्रयुक्त होता है। यथा—

कः आगतः (कौन आया है) ?, का आगता (कौन स्त्री आयी है) ? किमस्ति (क्या है) ?

(८) हिन्दी के किसी, कोई, कुछ आदि अनिश्चयवाचक सर्वनामों का बोध कराने के लिए उपर्युक्त शब्दों (न० ७) के रूपों के साथ 'अपि', 'चित्' अथवा 'चन' जोड़ दिया जाता है। यथा—

कोऽपि आगतोऽस्ति, कश्चिदागतोऽस्ति, कश्चनागतोऽस्ति (कोई आया है)।
काऽप्यागताऽस्ति, काचिदागताऽस्ति, काचन आगताऽस्ति (कोई आयी है)।
किमप्यस्ति, किञ्चिदस्ति, किञ्चनास्ति (कुछ है)।

(९) निश्चयवाचक सर्वनाम (यही, वही, उसी ने) का निश्चयात्मक अर्थ बतलाने के लिए, सर्वनाम के रूपों के साथ 'एव' शब्द जोड़कर निश्चय का बोध कराया जाता है। यथा—

कः आगतः ? स एव पुनः आगतः।
केनेदं कृतम ? तेनैव तु कृतम् इत्यादि।

(१०) संस्कृत अनुवाद करने में 'कहीं कहीं' के लिए 'क्वचित् क्वचित्' तथा 'कभी-कभी' के लिए 'कदाचित्-कदाचित्' आते हैं। यथा—

क्वचिद्वीणावाद्यं क्वचिदपि च हाहेति रुदितम् (कहीं तो वीणा बज रही है और कहीं हाय-हाय का विलाप हो रहा है)।

कदाचित् भाण्डं भिनत्ति कदाचिन्नवनीतं चोरयति (कभी भाँड़ फोड़ देता है और कभी मक्खन चुरा लेता है)।

हिन्दी में अनुवाद करो—

१—असुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौं वृषभध्वजेन। २—यत् भवान् अभ्यागतः अतिथिः तद् भक्षयतु इदम् फलम्। ३—कः कोऽत्र द्वारि तिष्ठति? ४—यं कञ्चित् पश्यामि सः काल इव प्रतिभाति। ५—स्वहस्तस्थमपि सुवर्णकङ्कणं यस्मै कस्मैचिद्दातुमिच्छामि। ६—तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः। ७—अवश्यमत्र केनापि कारणेन भवितव्यम्। ८—आदिष्टोऽस्मि तत्रभवता गुरुणा। ९—मां स भवान् नियुङ्क्ते। १०—प्रभो! अस्मान् पाहि सर्वदा। ११—प्रभो! दयालो! नः पाहि। १२—मम माया दुरत्यया। १३—कृपया अत्रभवन्तः आज्ञापयन्तु।

संस्कृत में अनुवाद करो—

(१) यह दोष तेरा ही है। (२) क्या मेरे पिता जी ऐसा कहेंगे? (३) प्रभु सदा हमारी रक्षा करो। (४) श्री पूज्या गौतमी आती हैं। ५—पूज्या कामन्दकी देवी कहाँ हैं? ६—मुझे वह श्रीमान्‌जी नियुक्त कर रहे हैं। ७—रे राक्षस! वहाँ तेरा भीषण वध उचित है। ८—इनका पवित्र वंश है, इनमें महान् बल है। ९—इसने वेदान्त पढ़ लिया, इसे ज्योतिष पढ़ाओ। १०—वह जो आज्ञा देते हैं सो करो। ११—हे भगवान् शङ्कर! मैं जो कुछ कर्म करता हूँ, वह सम्पूर्ण तुम्हारी आराधना है। १२—वह जहाँ कहीं भी जाता है। १३—जिस-जिस को देखते हो, उस उस के आगे दीनवचन मत बोलो। १४—कहीं तो विवाह हो रहा है और कहीं चिता जल रही है। १५—कभी वर्तन तोड़ देता है और कभी मक्खन चुरा लेता है। १६—जो परीक्षा में उत्तीर्ण हुए, वे इनाम पायेंगे। १७—यह तुम्हारा वह पुत्र आगया जिसका देवी जी ने अपने हस्तकमलों से लालन-पालन किया था। १८—जो ही चीज आग में पड़ी वही भस्म हो गई। १९—इस कपड़े को अच्छी तरह धोना, इसे फाड़ मत डालना। २०—यह पच्चीस वर्ष के लगभग हो गया है, इसका अब व्याह कर दो।

हलन्त-शब्दावली

पुँल्लिङ्ग

(१) राजन् (राजा)				(२) महत् (बड़ा)		
ए० व०	द्वि० व०	ब० व०		ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
राजा	राजानौ	राजानः	प्र०	महान्	महान्तौ	महान्तः
राजानम्	,,	राज्ञः	द्वि०	महान्तम्	,,	महतः
राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः	तृ०	महता	महद्भ्याम्	महद्भिः
राज्ञे	,,	राजभ्यः	च०	महते	,,	महद्भ्यः
राज्ञः	,,	,,	पं०	महतः	,,	,,
,,	राज्ञोः	राज्ञाम्	ष०	,,	महतोः	महताम्
राज्ञि, राजनि	,,	राजसु	स०	महति	महतोः	महत्सु
हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः	सं०	हे महत्	हे महान्तौ	हे महान्तः

स्त्रीलिङ्ग में महती, महत्यौ, महत्यः इत्यादि रूप नदी शब्द की तरह चलते हैं। नपुंसकलिङ्ग में प्रथमा और द्वितीया विभक्ति में महत्, महती, महान्ति रूप होते हैं। शेष विभक्तियों के रूप पुँल्लिङ्ग की भाँति चलते हैं।

इसी प्रकार मघवत् (इन्द्र), सरस्वत् (समुद्र), धीमत् (बुद्धिमान्), सानुमत् (पहाड़), भास्वत् (सूर्य) आदि के रूप चलते हैं।

(३) भगवत् (देवता—विष्णु)

प्र०	भगवान्	भगवन्तौ	भगवन्तः
द्वि०	भगवन्तम्	भगवन्तौ	भगवतः
तृ०	भगवता	भगवद्भ्याम्	भगवद्भिः
च०	भगवते	भगवद्भ्याम्	भगवद्भ्यः
पं०	भगवतः	,,	,,
ष०	,,	भगवतोः	भगवताम्
स०	भगवति	भगवतोः	भगवत्सु
सं०	हे भगवन्	हे भगवन्तौ	हे भगवन्तः

(४) आत्मन् (आत्मा)

प्र०	आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः
द्वि०	आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मनः
तृ०	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः
च०	आत्मने	,,	आत्मभ्यः
पं०	आत्मनः	,,	,,
ष०	आत्मनः	आत्मनोः	आत्मनाम्
स०	आत्मनि	आत्मनोः	आत्मसु
सं०	हे आत्मन्	हे आत्मानौ	हे आत्मानः

अध्वन् (मार्ग), अश्मन् (पत्थर), यज्वन् (यज्ञ करने वाला), ब्रह्मन् (ब्रह्मा) आदि के रूप आत्मन् के समान चलते हैं।

(५) पठत् (पढ़ता हुआ)

प्र०	पठन्	पठन्तौ	पठन्तः
द्वि०	पठन्तम्	,,	पठतः
तृ०	पठता	पठद्भ्याम्	पठद्भिः
च०	पठते	,,	पठद्भ्यः
पं०	पठतः	,,	,,
ष०	,,	पठतोः	पठताम्
स०	पठति	,,	पठत्सु
सं०	हे पठन्	हे पठन्तौ	हे पठन्तः

स्त्रीलिङ्ग में पठन्ती, पठन्त्यौ, पठन्त्यः इत्यादि रूप नदी की तरह और नपुं० लि० की प्रथमा एवं द्वितीया में पठत्, पठन्ती, पठन्ति और शेष विभक्तियों के रूप पुँल्लिङ्ग की भाँति होते हैं।

धावत् (दौड़ता हुआ), गच्छत् (जाता हुआ), वदत् (बोलता हुआ), पश्यत् (देखता हुआ), गृह्णत् (लेता हुआ), पतत् (गिरता हुआ), शोचत् (सोचता हुआ), पिबत् (पीता हुआ), भवत् (होता हुआ) इत्यादि सभी शतृ प्रत्ययान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों के रूप पठत् के समान होते हैं।

(६) श्वन् (कुत्ता)				(७) युवन् (जवान)		
श्वा	श्वानौ	श्वानः	प्र०	युवा	युवानौ	युवानः
श्वानम्	,,	शुनः	द्वि०	युवानम्	,,	यूनः
शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः	तृ०	यूना	युवभ्याम्	युवभिः
शुने	,,	श्वभ्यः	च०	यूने	,,	युवभ्यः
शुनः	,,	,,	पं०	यूनः	,,	,,
,,	शुनोः	शुनाम्	ष०	,,	यूनोः	यूनाम्
शुनि	,,	श्वसु	स०	यूनि	,,	युवसु
हे श्वन्	हे श्वानौ	हे श्वानः	सं०	हे युवन्	हे युवानौ	हे युवानः

युवन् के जोड़ का स्त्रीलिङ्ग शब्द युवती है जिसके रूप नदी के समान चलते हैं।

(८) पथिन् (रास्ता)				(९) विद्वस् (विद्वान्)		
पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः	प्र०	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
पन्थानम्	,,	पथः	द्वि०	विद्वांसम्	,,	विदुषः
पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः	तृ०	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
पथे	,,	पथिभ्यः	च०	विदुषे	,,	विद्वद्भ्यः
पथः	,,	,,	पं०	विदुषः	,,	,,
,,	पथोः	पथाम्	ष०	,,	विदुषोः	विदुषाम्
पथि	,,	पथिषु	स०	विदुषि	विदुषोः	विद्वत्सु
हे पन्थाः	हे पन्थानौ	हे पन्थानः	सं०	हे विद्वन्	हे विद्वांसौ	हे विद्वांसः

श्रेयस् (अच्छा), कनीयस् (छोटा), ज्यायस् (बड़ा), प्रेयस् (प्रियतर) आदि शब्दों के रूप 'विद्वस्' की तरह चलते हैं।

(१०) चन्द्रमस् (चन्द्रमा)

प्र०	चन्द्रमाः	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
द्वि०	चन्द्रमसम्	,,	,,
तृ०	चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभिः
च०	चन्द्रमसे	,,	चन्द्रमोभ्यः
पं०	चन्द्रमसः	,,	,,
ष०	,,	चन्द्रमसोः	चन्द्रमसाम्

स० चन्द्रमसि	चन्द्रमसोः	चन्द्रमः सु-स्सु
सं० हे चन्द्रमः	हे चन्द्रमसौ	हे चन्द्रमसः

दिवौकस् (देवता), महौजस् (बड़ा तेज वाला), वेधस् (ब्रह्मा), सुमनस् (अच्छा चित्तवाला), महायशस् (बड़ा यशस्वी), महातेजस् (बड़ी कान्तिवाला), विशालवक्षस् (बड़ी छातीवाला), दुर्वासस् (दुर्वासा = बुरे कपड़ोंवाला), प्रचेतस् इत्यादि सभी सकारान्त पुं० शब्दों के रूप चन्द्रमस् के समान होते हैं।

(११) हस्तिन् (हाथी)			(१२) पुम्स् (पुरुष)		
हस्ती	हस्तिनौ	हस्तिनः	प्र० पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः
हस्तिनम्	,,	,,	द्वि० पुमांसम्	,,	पुंसः
हस्तिना	हस्तिभ्याम्	हस्तिभिः	तृ० पुंसा	पुम्भ्याम्	पुम्भिः
हस्तिने	,,	हस्तिभ्यः	च० पुंसे	,,	पुम्भ्यः
हस्तिनः	,,	,,	पं० पुंसः	,,	,,
,,	हस्तिनोः	हस्तिनाम्	ष० ,,	पुंसोः	पुंसाम्
हस्तिनि	,,	हस्तिषु	स० पुंसि	,,	पुंसु
हे हस्तिन्	हे हस्तिनौ	हे हस्तिनः	सं० हे पुमन्	हे पुमांसौ	हे पुमांसः

स्वामिन् , करिन् (हाथी), गुणिन् (गुणी), मन्त्रिन् (मन्त्री), शशिन् (चन्द्रमा), पक्षिन् (पक्षी), धनिन् , वाजिन् (घोड़ा), तपस्विन् (तपस्वी), एकाकिन् (अकेला), बलिन् (बली), सुखिन् (सुखी), सत्यवादिन् (सत्य बोलनेवाला) इत्यादि इन् में अन्त होने वाले पुं० शब्दों के रूप हस्तिन् के समान होते हैं।

(१३) तादृश् (उसके समान)

प्र० तादृक्	तादृशौ	तादृशः
द्वि० तादृशम्	,,	,,
तृ० तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः
च० तादृशे	,,	तादृग्भ्यः
पं० तादृशः	,,	,,
ष० तादृशः	तादृशोः	तादृशाम्
स० तादृशि	,,	तादृक्षु
सं० हे तादृक्	हे तादृशौ	हे तादृशः

यादृश् (जैसा), मादृश् (मेरे समान), भवादृश् (आपके समान), त्वादृश् (तुम्हारे समान), एतादृश् (इसके समान) इत्यादि के रूप तादृश् के समान होते हैं।

स्त्रीलिङ्ग शब्द

(१) वाच् (वाणी)			(२) सरित् (नदी)		
वाक्	वाचौ	वाचः	प्र० सरित्	सरितौ	सरितः
वाचम्	वाचौ	वाचः	द्वि० सरितम्	,,	,,
वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः	तृ० सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भिः
वाचे	,,	वाग्भ्यः	च० सरिते	,,	सरिद्भ्यः
वाचः	,,	,,	पं० सरितः	,,	,,
वाचः	वाचोः	वाचाम्	ष० सरितः	सरितोः	सरिताम्
वाचि	,,	वाक्षु	स० सरिति	,,	सरित्सु
हे वाक्, हे वाग्	हे वाचौ	हे वाचः	सं० हे सरित्	हे सरितौ	हे सरितः

रुच्, त्वच् (चमड़ा, पेड़ की छाल), शुच् (सोच), ऋच् (ऋग्वेद के मंत्र) इत्यादि सभी चकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप वाच् की तरह होते हैं।

विद्युत् (बिजली), योषित् (स्त्री) आदि के रूप सरित् के समान चलते हैं।

(३) दृषद् (पत्थर, चट्टान)			(४) गिर् (वाणी)		
दृषद्	दृषदौ	दृषदः	प्र० गीः	गिरौ	गिरः
दृषदम्	,,	,,	द्वि० गिरम्	,,	,,
दृषदा	दृषद्भ्याम्	दृषद्भिः	तृ० गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः
दृषदे	,,	दृषद्भ्यः	च० गिरे	,,	गीर्भ्यः
दृषदः	,,	,,	पं० गिरः	,,	,,
,,	दृषदोः	दृषदाम्	ष० गिरः	गिरोः	गिराम्
दृषदि	,,	दृषत्सु	स० गिरि	,,	गीर्षु
हे दृषद्	हे दृषदौ	हे दृषदः	सं० हे गीः	हे गिरौ	हे गिरः

शरद्, आपद्, विपद्, सम्पद् (धन), संसद् (सभा) के रूप दृषद् के समान होते हैं।

(५) दिश् (दिशा)				(६) पुर् (नगर)		
दिक्, दिग्	दिशौ	दिशः	प्र०	पूः	पुरौ	पुरः
दिशम्	"	"	द्वि०	पुरम्	"	"
दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः	तृ०	पुरा	पूर्भ्याम्	पूर्भिः
दिशे	"	दिग्भ्यः	च०	पुरे	"	पूर्भ्यः
दिशः	"	"	पं०	पुरः	"	"
"	दिशोः	दिशाम्	ष०	पुरः	पुरोः	पुराम्
दिशि	"	दिक्षु	स०	पुरि	पुरोः	पूर्षु
हे दिक्, दिग्	हे दिशौ	हे दिशः	सं०	हे पूः	हे पुरौ	हे पुरः

(७) अप् (जल) केवल बहुवचन में

प्र० आपः
द्वि० अपः
तृ० अद्भिः
च० अद्भ्यः
पं० "
ष० अपाम्
स० अप्सु
सं० हे आपः

नपुंसकलिङ्ग

(१) जगत् (संसार)

प्र०	जगत्, जगद्	जगती	जगन्ति
द्वि०	"	"	"
तृ०	जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भिः
च०	जगते	"	जगद्भ्यः
पं०	जगतः	"	"
ष०	"	जगतोः	जगताम्
स०	जगति	"	जगत्सु
सं०	हे जगत्, हे जगद्	हे जगती	हे जगन्ति

श्रीमत् , भवत् (होता हुआ) तथा अन्य भी तकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप जगत् के समान होते हैं ।

(२) नामन् (नाम)

प्र०	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
द्वि०	,,	,, ,,	,,
तृ०	नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः
च०	नाम्ने	,,	नामभ्यः
पं०	नाम्नः	,,	,,
ष०	,,	नाम्नोः	नाम्नाम्
स०	नाम्नि, नामनि	,,	नामसु

धामन् (घर, चमक), व्योमन् (आकाश), सामन् (सामवेद का मन्त्र), प्रेमन् (प्रेम), दामन् (रस्सी के) रूप नामन् के समान होते हैं ।

(३) शर्मन् (कल्याण)

प्र०	शर्म	शर्मणी	शर्माणि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	शर्मणा	शर्मभ्याम्	शर्मभिः
च०	शर्मणे	,,	शर्मभ्यः
पं०	शर्मणः	,,	,,
ष०	,,	शर्मणोः	शर्मणाम्
स०	शर्मणि	,,	शर्मसु
सं०	हे शर्म, हे शर्मन्	हे शर्मणी	हे शर्माणि

(४) ब्रह्मन्

प्र०	ब्रह्म	ब्रह्मणी	ब्रह्माणि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	ब्रह्मणा	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभिः
च०	ब्रह्मणे	,,	ब्रह्मभ्यः
पं०	ब्रह्मणः	,,	,,
ष०	ब्रह्मणः	ब्रह्मणोः	ब्रह्मणाम्
स०	ब्रह्मणि	,,	ब्रह्मसु
सं०	हे ब्रह्म, हे ब्रह्मन्	हे ब्रह्मणी	हे ब्रह्माणि

(५) पयस् (दूध, पानी)

प्र०	पयः	पयसी	पयांसि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः
च०	पयसे	,,	पयोभ्यः
पं०	पयसः	,,	,,
ष०	पयसः	पयसोः	पयसाम्
स०	पयसि	,,	पयस्सु, पयःसु
सं०	हे पयः	हे पयसी	हे पयांसि

अम्भस् (पानी), नभस् (आकाश), आगस् (पाप), उरस् (छाती), वयस् (उम्र), रजस् (धूल); वक्षस् (छाती), तमस् (अँधेरा), अयस् (लोहा), वचस् (वचन, बात), यशस् (यश); सरस् (तालाब), तपस् (तपस्या), शिरस् (शिर) इत्यादि सभी असन्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप पयस् के समान होते हैं।

(६) मनस् (मन)

प्र०	मनः	मनसी	मनांसि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	मनसा	मनोभ्याम्	मनोभिः
च०	मनसे	,,	मनोभ्यः
पं०	मनसः	,,	,,
ष०	,,	मनसोः	मनसाम्
स०	मनसि	,,	मनस्सु
सं०	हे मनः	हे मनसी	हे मनांसि

(७) धनुष् (धनुष)

प्र०	धनुः	धनुषी	धनूंषि
द्वि०	,,	,,	,,
तृ०	धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः
च०	धनुषे	,,	धनुर्भ्यः
पं०	धनुषः	,,	,,
ष०	,,	धनुषोः	धनुषाम्
स०	धनुषि	,,	धनुष्षु
सं०	हे धनुः	हे धनुषी	हे धनूंषि

आयुष्, हविष्, सर्पिष् (घी) आदि के रूप धनुष् की भाँति चलते हैं।

(८) तादृश् (उसके समान)

प्र०	तादृक्	तादृशी	तादृंशि
द्वि०	,,	,,	,,

शेष पुँल्लिङ्ग की तरह

(९) महत् (बड़ा)

प्र०	महत्	महती	महान्ति
द्वि०	,,	,,	,,

शेष पुँल्लिङ्ग की तरह

तृतीय सोपान

विशेषण (निश्चय-संख्यावाचक)

एक (एक) (नित्य एकवचनान्त)

पुंल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	विभक्ति
एकः	एकम्	एका	प्रथमा
एकम्	"	एकाम्	द्वितीया
एकेन	एकेन	एकया	तृतीया
एकस्मै	एकस्मै	एकस्यै	चतुर्थी
एकस्मात्	एकस्मात्	एकस्याः	पञ्चमी
एकस्य	एकस्य	"	षष्ठी
एकस्मिन्	एकस्मिन्	एकस्याम्	सप्तमी

द्वि (दो) (नित्य द्विवचनान्त)

पुंल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	विभक्ति
द्वौ	द्वे	द्वे	प्रथमा
"	"	"	द्वितीया
द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	तृतीया
"	"	"	चतुर्थी
"	"	"	पञ्चमी
द्वयोः	द्वयोः	द्वयोः	षष्ठी
"	"	"	सप्तमी

त्रि (तीन) (नित्य बहुवचनान्त)

पुंल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	विभक्ति
त्रयः	त्रीणि	तिस्रः	प्रथमा
त्रीन्	"	"	द्वितीया
त्रिभिः	त्रिभिः	तिसृभिः	तृतीया

त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः	चतुर्थी
,,	,,	,,	पञ्चमी
त्रयाणाम्	त्रयाणाम्	तिसृणाम्	षष्ठी
त्रिषु	त्रिषु	तिसृषु	सप्तमी

नोट—त्रि (तीन) से लेकर अष्टादश (अठारह) तक सभी संख्यावाचक शब्द केवल बहुवचन में चलते हैं।

चतुर् (चार) (नित्य बहुवचनान्त)

पुंल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	विभक्ति
चत्वारः	चत्वारि	चतस्रः	प्रथमा
चतुरः	,,	,,	द्वितीया
चतुर्भिः	चतुर्भिः	चतसृभिः	तृतीया
चतुर्भ्यः	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः	चतुर्थी
,,	,,	,,	पञ्चमी
चतुर्णाम्	चतुर्णाम्	चतसृणाम्	षष्ठी
चतुर्षु	चतुर्षु	चतसृषु	सप्तमी

पञ्चन् (पाँच)	षष् (छः)	सप्तन् (सात)	अष्टन् (आठ)	विभक्ति
पञ्च	षट्	सप्त	अष्ट, अष्टौ	प्रथमा
,,	,,	,,	,, ,,	द्वितीया
पञ्चभिः	षड्भिः	सप्तभिः	अष्टभिः, अष्टाभिः	तृतीया
पञ्चभ्यः	षड्भ्यः	सप्तभ्यः	अष्टभ्यः, अष्टाभ्यः	चतुर्थी
,,	,,	,,	,, ,,	पञ्चमी
पञ्चानाम्	षण्णाम्	सप्तानाम्	अष्टानाम्, अष्टानाम्	षष्ठी
पञ्चसु	षट्सु	सप्तसु	अष्टसु, अष्टासु	सप्तमी

नोट—पंचन् से लेकर नवदशन् तक के सभी संख्यावाचक शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में समान ही चलते हैं।

नवन् (नौ)	दशन् (दश)	कति (कितने)	विभक्ति
नव	दश	कति	प्रथमा
,,	,,	,,	द्वितीया

नवभिः	दशभिः	कतिभिः	तृतीया
नवभ्यः	दशभ्यः	कतिभ्यः	चतुर्थी
,,	,,	,,	पञ्चमी
नवानाम्	दशानाम्	कतीनाम्	षष्ठी
नवसु	दशसु	कतिषु	सप्तमी

१ से १०० तक संख्यावाचक शब्द

१ एकः, एकम् , एका	२१ एकविंशतिः	४१ एकचत्वारिंशत्
२ द्वौ, द्वे, द्वे	२२ द्वाविंशतिः	४२ द्विचत्वारिंशत्
३ त्रयः, त्रीणि,	२३ त्रयोविंशतिः	द्वाचत्वारिंशत्
तिस्रः	२४ चतुर्विंशतिः	४३ त्रिचत्वारिंशत्
४ चत्वारः, चत्वारि,	२५ पञ्चविंशतिः	त्रयश्चत्वारिंशत्
चतस्रः	२६ षड्विंशतिः	४४ चतुश्चत्वारिंशत्
५ पञ्च	२७ सप्तविंशतिः	४५ पञ्चचत्वारिंशत्
६ षट्	२८ अष्टाविंशतिः	४६ षट्चत्वारिंशत्
७ सप्त	२९ नवविंशतिः, -	४७ सप्तचत्वारिंशत्
८ अष्ट, अष्टौ	एकोनत्रिंशत्	४८ अष्टचत्वारिंशत्
९ नव	३० त्रिंशत्	अष्टाचत्वारिंशत्
१० दश	३१ एकत्रिंशत्	४९ नवचत्वारिंशत्
११ एकादश	३२ द्वात्रिंशत्	एकोनपञ्चाशत्
१२ द्वादश	३३ त्रयस्त्रिंशत्	५० पञ्चाशत्
१३ त्रयोदश	३४ चतुस्त्रिंशत्	५१ एकपञ्चाशत्
१४ चतुर्दश	३५ पञ्चत्रिंशत्	५२ द्विपञ्चाशत्
१५ पञ्चदश	३६ षट्त्रिंशत्	द्वापञ्चाशत्
१६ षोडश	३७ सप्तत्रिंशत्	५३ त्रिपञ्चाशत्
१७ सप्तदश	३८ अष्टात्रिंशत्	त्रयः पञ्चाशत्
१८ अष्टादश	३९ नवत्रिंशत् ,	५४ चतुःपञ्चाशत्
१९ नवदश, एकोनविंशतिः	एकोन चत्वारिंशत्	५५ पञ्चपञ्चाशत्
२० विंशतिः	४० चत्वारिंशत्	५६ षट्पञ्चाशत्

५७ सप्तपञ्चाशत्
५८ अष्टापञ्चाशत्
अष्टपञ्चाशत्
५९ नवपञ्चाशत्
एकोनषष्टिः
६० षष्टिः
६१ एकषष्टिः
६२ द्विषष्टिः, द्वाषष्टिः
६३ त्रिषष्टिः, त्रयःषष्टिः
६४ चतुःषष्टिः
६५ पञ्चषष्टिः
६६ षट्षष्टिः
६७ सप्तषष्टिः
६८ अष्टषष्टिः
अष्टाषष्टि
६९ नवषष्टिः
एकोनसप्ततिः
७० सप्ततिः

७१ एकसप्ततिः
७२ द्विसप्ततिः
द्वासप्ततिः
७३ त्रिसप्ततिः त्रयःसप्ततिः
७४ चतुःसप्ततिः
७५ पञ्चसप्ततिः
७६ षट्सप्ततिः
७७ सप्तसप्ततिः
७८ अष्टसप्ततिः
अष्टासप्ततिः
७९ नवसप्ततिः
८० अशीतिः
८१ एकाशीतिः
८२ द्व्यशीतिः
८३ त्र्यशीतिः
८४ चतुरशीतिः
८५ पञ्चाशीतिः
८६ षडशीतिः

८७ सप्ताशीतिः
८८ अष्टाशीतिः
८९ नवाशीतिः
एकोननवतिः
९० नवतिः
९१ एकनवतिः
९२ द्विनवतिः
९३ त्रिनवतिः त्रयोनवति
९४ चतुर्णवतिः
९५ पञ्चनवतिः
एकोनाशीतिः
९६ षण्णवतिः
९७ सप्तनवतिः
९८ अष्टनवतिः
अष्टानवतिः
९९ नवनवतिः
एकोनशतम्
१०० शतम्

१ हजार—सहस्रम् ।
१० हजार—अयुतम् ।
१ लाख—लक्षम्

नोट— (१) शत से अधिक संख्याओं के लिए 'अधिक' या 'उत्तर' शब्द का प्रयोग किया जाता है। जैसे, १२१ एकविंशत्यधिकशतम्, १८९ अष्टनवत्युत्तरशतम् ।

(२) दो सौ आदि संख्यायों के लिए दो आदि संख्यावाचक शब्द पहले रखकर तदनन्तर 'शती' शब्द का प्रयोग किया जाता है अथवा 'शत' का प्रयोग पहले करके बाद में 'द्वयम्' आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यथा ३००, त्रिशती अथवा शतत्रयम् ।

(३) 'दश' से लेकर, 'नवदश' तक के शब्दों के रूप 'दश' के समान चलते हैं। ये सदा बहुवचनान्त एवं तीनों लिङ्गों में एक समान होते हैं।

(४) इसके आगे 'एकोनविंशति' से लेकर 'नवनवति' पर्यन्त समस्त संख्यावाचक शब्द नित्य एकवचनान्त रहते हैं। ये समस्त शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं।

(५) विंशति, षष्टि, सप्तति, अशीति एवं नवनवति आदि इकारान्त शब्दों के रूप 'मति' की तरह चलते हैं।

(६) त्रिंशत्, चत्वारिंशत् एवं पञ्चाशत् आदि तकारान्त शब्दों के रूप 'सरित्' के तुल्य चलते हैं।

(७) 'कोटि' के अतिरिक्त शतम्, सहस्रम्, अयुतम् एवं लक्षम् आदि के रूप 'गृहम्' की तरह चलते हैं।

(८) स्त्रीलिङ्ग होने के कारण 'कोटि' का रूप 'मति' के समान चलता है।

कुछ उदाहरण

(१) पञ्चत्रिंशदधिकं शतं मनुष्याणामुपस्थितम् (एक सौ पैंतीस आदमी उपस्थित हैं)।

(२) मनुष्याणामेकचत्वारिंशदधिकयोः शतयोः उपरि अर्थदण्डः आदिष्टः, एकोनषष्ट्यधिकानां त्रयाणां शतानामुपरि, कायदण्डः (दो सौ इकतालीस मनुष्यों के ऊपर जुर्माना किया गया और तीन सौ उनसठ को सजा हुई)।

(३) अस्मिन् संघर्षे षट्पञ्चाशत् जनाः मृताः (इस संघर्ष में छप्पन मनुष्य मरे)।

(४) एकोनविंशतिशतोत्तरद्विचत्वारिंशत्तमे खिष्टाब्दे श्री-इन्दिरायाः विवाहः श्री-फीरोजगान्धिना सह वैदिकेन विधिना सम्पन्नोऽभवत् (सन् १९४२ ई० में इन्दिरा जी का विवाह फीरोज गान्धी के साथ वैदिक-रीति से हुआ)।

(५) दिवंगतोऽस्माकं प्रधानमन्त्री श्रीलालबहादुरः शास्त्री एकोनविंशतिशतोत्तरचतुर्थे खिष्टाब्देऽक्टूबरमासस्य द्वितीयायां तिथौ मध्यमवर्गीय-कायस्थपरिवारं स्वजन्मनाऽलमकरोत् (हमारे स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने २ अक्तूबर १९०४ को मध्यवर्गीय कायस्थ-परिवार को अपने जन्म से अलंकृत किया)।

(६) अत्र सहस्रद्वयम् छात्राः शिक्षां लप्स्यन्ते (यहाँ दो हजार छात्र शिक्षा ग्रहण करेंगे)।

(७) मम चत्वारि सहस्राणि स्वर्णमुद्राः सन्ति (मेरे पास चार हजार स्वर्णमुद्राएँ हैं)।

क्रमबोधक संख्यावाचक विशेषण

संख्या	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
१	प्रथमः	प्रथमा	प्रथमम्
२	द्वितीयः	द्वितीया	द्वितीयम्
३	तृतीयः	तृतीया	तृतीयम्
४	चतुर्थः	चतुर्थी	चतुर्थम्
५	पञ्चमः	पञ्चमी	पञ्चमम्
६	षष्ठः	षष्ठी	षष्ठम्
७	सप्तमः	सप्तमी	सप्तमम्
८	अष्टमः	अष्टमी	अष्टमम्
९	नवमः	नवमी	नवमम्
१०	दशमः	दशमी	दशमम्
११	एकादशः	एकादशी	एकादशम्
१२	द्वादशः	द्वादशी	द्वादशम्
१३	त्रयोदशः	त्रयोदशी	त्रयोदशम्
१४	चतुर्दशः	चतुर्दशी	चतुर्दशम्
१५	पञ्चदशः	पञ्चदशी	पञ्चदशम्
१६	षोडशः	षोडशी	षोडशम्
१७	सप्तदशः	सप्तदशी	सप्तदशम्
१८	अष्टादशः	अष्टादशी	अष्टादशम्
१९	नवदशः	नवदशी	नवदशम्
	एकोनविंशः	एकोनविंशी	एकोनविंशम्
	एकोनविंशतितमः	एकोनविंशतितमी	एकोनविंशततमम्

विशेष—'एकोनविंशति' से लेकर आगे की समस्त संख्याओं के आगे पुंल्लिङ्ग में 'तमः', स्त्रीलिङ्ग में 'तमी' और नपुंसकलिङ्ग में 'तमम्' लगाकर रूप बनते हैं।

इन समस्त शब्दों के रूप अपने विशेष्य के लिङ्ग के अनुसार ही चलते हैं।

हिन्दी में अनुवाद करो—

१—भारते संस्कृतस्य यावन्तो विद्वांसः सन्ति तेषु केवलम् अशीतिः वेदपाठिनः सन्ति। २—तेषामपि विंशतिः महाराष्ट्रनिवासिनः सन्ति। ३—श्रीशान्तनुरावलक्ष्मण-किर्लोस्करः एकोनविंशति-शतोत्तरपञ्चषष्टिषट्षष्टितमयोः वर्षयोः कृते भारतीय-वाणिज्यमण्डलस्याऽध्यक्षः सर्वसम्मत्या निर्वाचितो वर्तते। ४—काशीविश्वविद्यालये सप्तति–छात्रेभ्यः पारितोषिकाणि वितीर्णानि। ५—एकोनविंशतिशतोत्तरपञ्चमे खिष्टाब्दे लार्डकर्जनो बंगभङ्गमघोषयत्।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण का आठवें, क्षत्रिय का ग्यारहवें और वैश्य का बारहवें वर्ष यज्ञोपवीत संस्कार हो जाना चाहिए। २. सम्भवतः वह यहाँ सातवें दिन आयेगा। ३—रमेश अपनी कक्षा में प्रथम रहा। ४—सातवीं कक्षा का पाँचवाँ, आठवीं कक्षा का ग्यारहवाँ विद्यार्थी यहाँ आवे। ५—भारत की आजादी के लिए हजारों आदमी जेल गए। ६—दसवीं कक्षा के पैंतीसवें विद्यार्थी को प्रधानाचार्य जी बुला रहे हैं। ७—हमारी कक्षा का पन्द्रहवां विद्यार्थी परीक्षा में प्रथम रहा। ८—एक कापी और दो किताब शीघ्र ही दीजिए।

विशेषण (आवृत्तिवाचक)

'दुगुना', 'तिगुना', 'चौगुना' आदि आवृत्तिसूचक शब्दों के अनुवाद के लिए संस्कृत में सख्या शब्द के आगे 'गुण' अथवा 'गुणित' शब्दों को जोड़ा जाता है, किन्तु आवृत्तिवाचक शब्दों पर 'आवृत्त' अथवा 'आवर्तित भी जोड़ा जाता है। यथा—

१—तपस्विनः त्रिगुणां मौञ्जीं मेखलां धारयन्ति (तपस्वी तिहरी मूँज की तागड़ी बाँधते हैं)।

२—अस्मिन् महाविद्यालये पञ्चचत्वारिंशद्गुणा अधिकाश्छात्राः जाताः (इस महाविद्यालय में पैंतालीस गुने अधिक छात्र हो गए)।

३—रमेशः व्यापारे त्रिगुणं धनं लेभे (रमेश को व्यापार में तिगुना धन मिला)।

४—इयं बाला त्रिरावृत्तं (त्रिरावर्तितं, त्रिगुणं, त्रिगुणितं वा) दाम धारयति (यह लड़की तिहरी माला पहने हुए है)।

५—कृपणः धनं तावत् त्वत्-सहस्रगुणं कोटिगुणं वा अधिकम् अर्जयतु परं न कीर्तिम् (कृपण तुझसे हजारगुना अथवा करोड़गुना धन कमा ले, पर यश नहीं कमा सकता)।

विशेषण (समुदायबोधक)

समुदायवाचक शब्दों (दोनों, चारो, पचासों आदि) के अनुवाद के लिए संस्कृत में संख्यावाचक शब्दों के आगे 'अपि' जोड़ दिया जाता है। यथा—

१—द्वावपि बालकौ गतौ (दोनों बालक गए)।

२—अस्मिन् प्रकोष्ठे एकत्रिंशदपि छात्राः पठनाय शक्नुवन्ति (इस कमरे में इकतीस छात्र पढ़ सकते हैं)।

३—सप्तपञ्चाशदपि योद्धारः युद्धे (सत्तावनों योद्धा युद्ध में मारेगए)।

विशेषण (विभागबोधक)

'हरएक' या 'सब' आदि शब्दों के अनुवाद के लिए संस्कृत में 'सर्व' अथवा 'सकल' शब्द प्रयुक्त होता है। यथा—

(१) सर्वे भवन्तु सुखिनः (सभी सुखी रहें)।

(२) सर्वाणि फलानि मिष्टानि सन्ति (सभी फल मीठे हैं)।

(३) अस्य विद्यालयस्य सर्वे छात्राः पटवः सन्ति (इस विद्यालय के सब छात्र चतुर हैं)।

(४) प्रतिबालकं क्रीडनकं देहि (हर लड़के को खिलौना दो)।

(५) प्रतिदिनं पाठशालामागच्छः (प्रतिदिन पाठशाला आया करो)।

विशेषण (अनिश्चित संख्यावाचक)

एक शब्द द्वारा—एकः नृपः अस्ति। एका बालिका अस्ति। एकस्मिन् वने एकः शृगालः न्यवसत्।

'किम्' के बाद चित्, चन जोड़कर—कश्चित्, कश्चन वा एवं कृतवान्।

'किम्' के बाद स्वित् जोड़कर—कास्विद्विरूपनयना पुरद्वारेऽवतिष्ठते (विरूप-नेत्रवाली कोई स्त्री नगर के प्रवेशद्वार पर खड़ी है)।

अन्य, एक तथा अपर शब्दों द्वारा—हरिजनमन्दिरप्रवेशः शास्त्रविरुद्ध इत्येके वदन्ति, नायं शास्त्रविरुद्ध इत्यपरेऽन्ये वा (हरिजनों का मन्दिर-प्रवेश शास्त्र-विरुद्ध है, यह कोई कोई कहते हैं और यह शास्त्रविरुद्ध नहीं है यह कोई-कोई)।

परस्पर, अन्योन्य शब्दों द्वारा—दुष्टाः परस्परं (अन्योऽन्यम्) कलहायन्ते ।

सर्व, समस्त आदि शब्दों द्वारा—सर्वाणि पुष्पाणि सुन्दराणि सन्ति ।

बहु, अनेक आदि शब्दों द्वारा—अत्र बहूनि फलानि सन्ति ।

कतिपय शब्दों द्वारा—कतिपयाः बालकाः उत्तीर्णाः ।

कतिपयाः स्त्रियः विदुष्यः ।

कतिपयानि पुष्पाणि विकसितानि ।

विशेषण (परिमाणवाचक)

तोल के शब्द

तोलकः—तोला ।

पादः—पाव ।

माषकः—माशा ।

रक्तिका, गुञ्जा—रत्ती ।

षट्टङ्कः—छँटाक ।

मूल्यवाचक शब्द

अष्टाणकी—अठन्नी ।

आण (आणकः)—आना ।

चतुराणी—चवन्नी ।

निष्कः (दीनारः)—सोने की मोहर ।

पणः (पणकः)—पैसा ।

पादिका—पाई ।

वराटकः, वराटिका—कौड़ी ।

माप

अङ्गुलम्—अंगुल ।

पाद—फुट ।

वितस्तिः—बालिश्त ।

हस्तः—हाथ ।

समयबोधक

अहोरात्रः—दिनरात ।

कला—मिनट ।

क्षणः—छिन ।

पक्ष—पाख ।

पलम्—पल ।

प्रहरः—पहर ।

विकला—सेकण्ड ।

मासः—महीना ।

घण्टा—घण्टा ।

वर्षम्—बरस ।

सेर, गज, मील आदि के लिए संस्कृत में शब्द नहीं मिलते, अतएव अनुवाद में इन्हीं का प्रयोग किया जाता है। यथा—

१—औंसम् टिंचर-आयोडीनम्। २—माषकः सुवर्णम्। ३—पञ्चगज-परिमितं वस्त्रं देहि। ४—सेरः तण्डुलः। आदि।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—हमारे घर की ऊँचाई उस मकान से तिगुनी है। २—पहले रुपये का १० सेर चावल मिलता था, अब बारह छटाँक मिलता है। ३—मैं रात को ९ बजकर ३५ मिनट पर सोऊँगा। ४—हिन्दूविश्वविद्यालय यहाँ से तीन मील दूर है। ५—लाखों टन अनाज अमेरिका से भारत आया। ६—बारहवें दर्जे में इस वर्ष कितने छात्र फेल हुए। ७—कुछ लोग स्वभाव से ही आलसी होते हैं। ८—द्वार पर कोई स्त्री खड़ी है। ९—वह दोहरी रस्सी से गाय को बाँधता है। १०—प्रधानाचार्य ने आदेश दिया कि एक-एक कक्षा में पैंतीस से अधिक विद्यार्थी न बैठें। ११—यह तो उसका चौथाई भी नहीं है। १२—मुझे संस्कृत के पर्चे में सौ में से पचहत्तर नम्बर मिले। १३—शाहजहाँ ने ताजमहल के बनाने में करोड़ों रुपये खर्च किये। १४—यह रास्ता उस रास्ते से तिगुना है। १५—इस बोतल में एक लीटर तेल आ सकता है।

विशेषण (गुणवाचक)

जिससे जाति, गुण, क्रिया, व्यक्ति या वस्तु जानी जाती है उसे 'विशेष्य' कहते हैं। जिससे विशेष्य के गुण, विशेषता अथवा अवस्था का ज्ञान हो उसे 'विशेषण' कहते हैं। अधिकतर विशेष्य के अभाव में विशेषण प्रयुक्त नहीं होता किन्तु जहाँ केवल विशेषण ही प्रयुक्त होता है वहाँ विशेष्य या तो छिपा रहता है या विशेषण, विशेष्य का स्थानापन्न हो जाता है। संस्कृत में प्रायः विशेष्य के जो लिङ्ग, विभक्ति और वचन होते हैं विशेषण के भी वे ही लिङ्ग, विभक्ति और वचन होते हैं।

"यल्लिङ्गं यद्वचनं या च विभक्तिर्विशेष्यस्य।
तल्लिङ्गं तद्वचनं सैव विभक्तिर्विशेषणस्यापि॥"

शब्द	अर्थ	पुं०	स्त्री०	नपुं०
अम्ल	(खट्टा)	अम्लः	अम्ला	अम्लम्
उष्ण	(गर्म)	उष्णः	उष्णा	उष्णम्
कृश	(कोमल)	कृशः	कृशा	कृशम्
कृष्ण	(काला)	कृष्णः	कृष्णा	कृष्णम्
पीत	(पीला)	पीतः	पीता	पीतम्
मनोहर	(सुन्दर)	मनोहरः	मनोहरा	मनोहरम्
रक्त	(लाल)	रक्तः	रक्ता	रक्तम्
शीतल	(ठंडा)	शीतलः	शीतला	शीतलम्
शोभा	(सुन्दर)	शोभनः	शोभना	शोभनम्
स्थूल	(मोटा)	स्थूलः	स्थूला	स्थूलम्
हरित	(हरा)	हरितः	हरिता	हरितम्

(प्रथमा गुण में)

पुं० अयं शोभनः बालकः । इमौ शोभनौ बालकौ । इमे शोभनाः बालकाः ।

स्त्री० इयं शोभना बालिका । इमे शोभने बालिके । इमाः शोभनाः बालिकाः ।

नपुं० इदं शोभनं पुस्तकम् । इमे शोभने पुस्तके । इमानि शोभनानि पुस्तकानि ।

(प्रथमा दोष में)

पुं० कश्चिद् दुष्टः जनः । कौचिद् दुष्टौ जनौ । केचित् दुष्टाः जनाः ।

स्त्री० काचिद् दुष्टा कन्या । केचिद् दुष्टे कन्ये । काश्चिद् दुष्टाः कन्याः ।

नपुं० किंचिद् दुष्टम् फलम् । केचिद् दुष्टे फले । कानिचिद् दुष्टानि फलानि ।

द्वितीया

पुं० इमं शोभनं बालकम । इमौ शोभनौ बालकौ । इमान् शोभनान् बालकान् ।

स्त्री० इमां शोभनां बालिकाम् । इमे शोभने बालिके । इमाः शोभनाः बालिकाः ।

नपुं० इदं शोभनं पुस्तकम् । इमे शोभने पुस्तके । इमानि शोभनानि पुस्तकानि ।

तृतीया

पुं० अनेन शोभनेन बालकेन । आभ्यां शोभनाभ्यां बालकाभ्याम् । एभिः शोभनैः बालकैः ।

स्त्री० अनया शोभनया बालिकया । आभ्यां शोभनाभ्यां बालिकाभ्याम् । आभिः शोभनाभिः बालिकाभिः ।

नपुं० अनेन शोभनेन पुस्तकेन । आभ्यां शोभनाभ्यां पुस्तकाभ्याम् । एभिः शोभनैः पुस्तकैः ।

इसी प्रकार शेष विभक्तियाँ समझनी चाहिए ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—राम और लक्ष्मण सुन्दर हैं । २—तेरा हृदय कठोर है । ३—क्या बालक गर्म दूध पीना चाहता है ? ४—श्वेत जल वाली सरयू के किनारे श्रीरामचन्द्र ने विहार किया । ५—लाल कुत्ता काले कुत्ते के आगे दौड़ रहा है । ६—यह सरल बालिका है । ७—सुशीला बुद्धिमती है । ८—गोदावरी नदी के किनारे एक पाकड़ का पेड़ है । ९—तुम्हारा फल मीठा नहीं है । १०—किसी दरिद्र को वस्त्र दो । ११—आकाश नीला है, जल स्वच्छ है । १२—ईश्वर की लीला बड़ी विचित्र है । १३—एक जंगल में एक सिंह रहता था । १४—कमलों के खिल जाने से यह तालाब सुन्दर लगता है । १५—उसके वस्त्र फटे-पुराने हैं ।

(विशेषण) तुलनात्मक

विशेषणों की तुलना के लिए हिन्दी में विशेषण का रूपान्तर नहीं होता, अपितु आवश्यकतानुसार अधिक, कम आदि शब्द विशेषण के साथ जोड़ दिए जाते हैं । जैसे—गोविन्द राम से अधिक सुन्दर है । परन्तु संस्कृत में विशेषणों की तुलना करने के लिए उनमें प्रत्यय जोड़े जाते हैं ।

तुलना द्वारा दो में से एक का अतिशय दिखाने के लिए विशेषण में तरप् (तर) अथवा ईयसुन् और दो से अधिक में से एक का अतिशय दिखाने के लिए तमप् अथवा इष्ठन् प्रत्यय जोड़े जाते हैं । परन्तु ईयसुन् और इष्ठन् गुणवाचक विशेषणों के अनन्तर ही जोड़े जाते हैं । तरप् तथा तमप् इनके अतिरिक्त अन्य विशेषणों में भी जोड़े जाते हैं । तरप् और तमप् के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

साधुः	साधुतरः	साधुतमः
महान्	महत्तरः	महत्तमः
चतुरः	चतुरतरः	चतुरतमः
शुक्लः	शुक्लतरः	शुक्लतमः

लघुः	लघुतरः	लघुतमः
मृदुः	मृदुतरः	मृदुतमः
धीरः	धीरतरः	धीरतमः
गुरुः	गुरुतरः	गुरुतमः
बहुः	बहतरः	बहुतमः
दीर्घः	दीर्घतरः	दीर्घतमः
कृशः	कृशतर‹	कृशतमः
दूरः	दूरतरः	दूरतमः
स्थूलः	स्थूलतरः	स्थूलतमः
पटुः	पटुतरः	पटुतमः

जहाँ तरप् अथवा ईयसुन् एवं तमप् अथवा इष्ठन् दोनों प्रत्ययों के जोड़ने की अनुमति है, वहाँ ईयसुन् और इष्ठन् जोड़ना अपेक्षाकृत अधिक अच्छा समझा जाता है।

	ईयसुन्	इष्ठन्
पटु	पटीयस्	पटिष्ठ
बहु	भूयस्	भूयिष्ठ
धनिन्	धनीयस्	धनिष्ठ
ह्रस्व	ह्रसीयस्	ह्रसिष्ठ
प्रिय	प्रेयस्	प्रेष्ठ
स्थूल	स्थवीयस्	स्थविष्ठ
क्षुद्र	क्षोदीयस्	क्षोदिष्ठ
अल्प	अल्पीयस्, कनीयस्	अल्पिष्ठ, कनिष्ठ
दृढ	द्रढीयस्	द्रढिष्ठ
वृद्ध	ज्यायस्, वर्षीयस्	ज्येष्ठ, वर्षिष्ठ
कृश	क्रशीयस्	क्रशिष्ठ
दीर्घ	द्राघीयस्	द्राघिष्ठ
मृदु	म्रदीयस्	म्रदिष्ठ
स्फिर	स्फेयस्	स्फेष्ठ
बहुल	बंहीयस्	बंहिष्ठ

युवन्	यवीयस्, कनीयस्	यविष्ठ, कनिष्ठ
तृप्र	त्रपीयस्	त्रपिष्ठ
गुरु	गरीयस्	गरिष्ठ
निकट	नेदीयस्	नेदिष्ठ
उरु	वरीयस्	वरिष्ठ

अतिशय के अर्थ में क्रियाओं और अव्ययों में भी 'तर' और 'तम' आम् के साथ (तराम्-तमाम्) जोड़े जाते हैं। यथा—

क्रिया से—रमा हसतितराम् (रमा जोर से हँसती है)।

बालकः हसतितमाम् (बालक अत्यन्त हँसता है)।

अव्यय से—बालिका उच्चैस्तरां हसति (बालिका अधिक हँसती है)।

श्यामः उच्चैस्तमां हसति (श्याम बहुत ऊँचे हँसता है)।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—श्याम सब भाइयों में छोटा है। २—कालिदास संस्कृत साहित्य में सर्वोत्तम कवि हैं। ३—मोहन और सोहन में कौन बड़ा है? ४—सुशीला और रमा में कौन अधिक चतुर है? ५—कृष्ण और गोविन्द में कौन बुद्धिमान् है। ६—वाराणसी से कानपुर इलाहाबाद की अपेक्षा अधिक दूर है। ७—हिमालय पर्वतों में सबसे ऊँचा है। ८—विश्व भर में कौन नदी सबसे बड़ी है? ९—वह बड़ा शिशु सभी भाइयों में अप्रिय है। १०—यदि तुम नित्य अध्ययन करोगे तो परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण हो जाओगे। ११—पार्वती ने अपनी कृशता का विचार न करते हुए तप किया। १२—राम से प्यारा श्याम है। १३—धन से विद्या बड़ी है। १४—जन्मभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है। १५—गदहा से मोटा भैंसा होता है। १६—सब पशुओं में सिंह बलवान् होता है। १७—विद्यार्थियों में दयानन्द सबसे दुर्बल है। १८—लड़कों में हरि सबसे छोटा है। १९—रमेश सुरेश से छोटा है। २०—पिता स्वर्ग से भी ऊँचा है।

अव्यय

अव्यय ऐसे शब्दों को कहते हैं, जिनके रूप में किसी प्रकार का परिवर्तन न हो। जिन शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों, सातों विभक्तियों और तीनों वचनों में समान रहते हैं, उन्हें ही अव्यय कहते हैं। अव्यय के रूप में कोई भी विकार नहीं

उत्पन्न होता है, वे सदैव एक समान रहते हैं। इन शब्दों की समस्त विभक्तियों का लोप हो जाता है। केवल प्रयोग के समय ऐसे अव्यय जिनके अन्त में र् और स् होता है, विसर्ग हो जाता है।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥

अव्यय के निम्न चार भेद हैं :—

(अ) उपसर्ग ।
(ब) क्रियाविशेषण ।
(स) समुच्चयबोधकशब्द (Conjunctions) ।
(द) मनोविकारसूचकशब्द (Interjections) ।

उपसर्ग

जो शब्द धातु अथवा धातुओं से बने हुए विशेषण, संज्ञा आदि शब्दों के पूर्व जोड़े जाते हैं, उनको उपसर्ग की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इनके द्वारा धातु का अर्थ बलपूर्वक दूसरे अर्थ की ओर खींचा जाता है।

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत् ॥

हृ धातु का अर्थ है—चुराना। किन्तु उपसर्गों के ही योग से उपर्युक्त धातु कई अर्थों को प्रकट करने में समर्थ हो जाती है। यथा प्र + हृ = मारना। (परि + हृ = छोड़ देना, सम् + हृ = संहार करना, वि + हृ = विहार करना।) इसी प्रकार 'कृ' धातु का अर्थ है— करना। किन्तु इसके पूर्व उपसर्ग लगाकर अपकार, उपकार, अधिकार आदि कई शब्द बनाये जा सकते हैं।

यहाँ परमोपयोगी तथा प्रतिदिन काम आनेवाले कुछ उपसर्ग दिये जा रहे हैं—

उपसर्ग	अर्थ	उदाहरण
अति	बहुलता	अतिनिद्रा ।
अधि	ऊपर, श्रेष्ठ	अधिकार, अधिपतिः, अधिराजः ।
अनु	पीछे, समान	अनुगमनम् , अनुचरः, अनुकरणम् , अनुरूपम् ।

उपसर्ग	अर्थ	उदाहरण ।
अप	दूर	अपहार, अपकार ।
अपि	निकट	पिधानम् ।
अभि	ओर, ऊपर, ऊँचा, सामने	अभिगमनम् , अभिज्ञानम् , अभिमुखम् ।
अव	दूर, नीचे	अवतार, अवमानः ।
आ	तक, कम	आच्छद् , आकम्प् ।
उत्	ऊपर, ऊँचा	उत्पत्तिः, उत्कर्षः ।
उप	निकट, अमुख्य छोटा	उपासना, उपनाम, उपवनम् ।
दुर्	बुरा	दुराचारः ।
दुस्	कठिन	दुष्करः ।
नि	नीचे, निषेध	निपातः, निवारणम् ।
निर्	बाहर	निर्गम, निर्दोषः ।
निस्	बिना, बाहर	निःसारः, निःशङ्कः ।
परा	पीछे, उल्टा	पराजयः, पराभवः, परागतः ।
परि	चारो ओर	परिखा ।
प्र	अधिक	प्रणामः ।
प्रति	ओर, उल्टा	प्रतिकारः, प्रतिगम ।
वि	विना, अलग	विचलः, वियोगः ।
सम्	अच्छी तरह	संस्कारः, संकल्पः ।

'गति' शब्द

शब्द	उदाहरण ।
असत्	असत्कारः ।
नमः	नमस्कारः ।
साक्षात्	साक्षात्कारः ।
अन्तः	अन्तर्हितः ।
आविः	आविष्कारः ।

प्रादुः	प्रादुर्भूतः ।
तिरः	तिरोभूतः, तिरोहितः ।
पुरः	पुरस्कारः ।
स्वी	स्वीकारः ।

क्रिया विशेषण

क्रि० वि०	अर्थ	प्रयोग
अकस्मात्	एकाएक	अकस्मात् आगतेन सह मैत्री न युक्ता ।
अग्रतः	आगे	चौरः तवाग्रत एव पलायितः ।
अग्रे	आगे	बालकः तवाग्रे एव पलायितः ।
अचिरम्	शीघ्र	अचिरम् एव सः अरोदत् ।
अचिरात्	शीघ्र	सः हरिद्वारम् अचिरादेव गमिष्यति ।
अजस्रम्	निरन्तर	सः अजस्रम् पठति ।
अतः	इसलिए	सः ज्वरेण पीडितः अस्ति, अतः न पठति ।
अतीव	बहुत	सः पुस्तकं पठति अतीव कोलाहलं च करोति ।
अत्र	यहाँ	सः अत्र आगच्छति ।
अथ	अनन्तर	अथ प्रजानाम् अधिपः धेनुं वनाय मुमोच ।
अथकिम्	और क्या	अथकिं सः न केवलं ज्वरितः अस्ति परन्तु सः अतीव दुर्बलः अपि अस्ति ।
अद्य	आज	अद्य अहं पाठशालां न गच्छामि ।
अपि	भी	यदि त्वं वनं गमिष्यसि तर्हि अहमपि आगमिष्यामि ।
अधुना	अब	अधुना त्वं किं करोषि ?
अनिशम्	निरन्तर	सः अनिशम् पठति ।
अन्तरेण	विना	अन्तरेण भक्तिं न मुक्तिः ।
अन्तरा	बीच में	रामं श्यामम् अन्तरा बालिका ।
अन्यच्च	और भी	मूढम् आविशति, न पण्डितम् । अन्यच्च ।
अन्यत्र	दूसरी जगह	सः अत्रैव आगच्छति, अन्यत्र न गच्छति ।

क्रि० वि०	अर्थ	प्रयोग
अभितः	चारो ओर	ग्रामम् अभितः वनमस्ति ।
अलम्	पर्याप्त	अलं श्रमेण ।
आरात्	दूर, समीप	ग्रामात् आरात् वनमस्ति ।
इतस्ततः	इधर-उधर	बालकाः इतस्ततः परिभ्रमन्ति ।
इति	इस प्रकार	रामाभिधानो बालकः इत्युवाच ।
इत्थम्	इस प्रकार	ते इत्थं वदन्ति ।
इदानीम्	इस समय	त्वम् इदानीं पठसि परन्तु अहं न पठामि ।
इह	यहाँ	इह आगच्छ ।
ईषत्	थोड़ा	मह्यम् ईषत् जलं देहि ।
उच्चैः	जोर से	सः सदा उच्चैः वदति ।
उभयतः	दोनों ओर	ग्रामम् उभयतः तरवः सन्ति ।
एकत्र	एक जगह	भवन्तः सर्वे एकत्र उपविशन्तु ।
एकदा	एकबार	एकदा स्वमित्रैः सह अहमयोध्यां गतवान् ।
एतर्हि	अब	एतर्हि सः विद्यालयं न गच्छति ।
एव	ही	त्वमेव पिता असि ।
एवम्	इस प्रकार	तमेवमुक्त्वा भगवांस्तिरोदधे ।
कच्चित्	क्या ?	कच्चित् स धैर्यं हृदये करोति ?
कथम्	कैसे ?	कथं सः कर्दमे पतितः ।
कदा	कब ?	कदा सः नगरं गच्छति ?
कदाचित्	कभी	कदाचित् सः अत्र आगच्छेत् ।
किम्	क्या ?	किं सः गच्छति ?
किमु	और क्या	किमु यत्र चतुष्टयम् ।
कुतः	कहाँ से ?	त्वं कुतः समायासि ?
केवलम्	केवल	सः केवलं मुद्गौदनं भक्षयति ।
क्व	कहाँ ?	ते क्व निवसन्ति ?
खलु	निश्चय ही	नीचैः विघ्नभयेन खलु न प्रारभ्यते ।
झटिति	जल्दी	झटिति आगच्छ ।

क्रि० वि०	अर्थ	प्रयोग
ततः	तदनन्तर	ततो लोभाकृष्टेन केनचित् पान्थेनालोचितम् ।
तत्र	वहाँ	अहं तत्र न गच्छामि ।
तथाहि	जैसे	धर्मशास्त्रेऽपि एतदुक्तम् , तथाहि ।
तस्मात्	इसलिए	पूर्वजन्मकृतं कर्म दैवम् इति कथ्यते, तस्मात् पुरुषकारेण यत्नं कुर्यादतन्द्रितः ।
तावत्	तब तक	त्वम् अग्रे चल, अहं तावत् स्वकार्यं कृत्वा गृहम् आगच्छामि ।
तूष्णीम्	चुपचाप	बालकः तूष्णीं नैव तिष्ठति ।
दिवा	दिन में	सः दिवा नगरं गच्छति ।
दिष्ट्या	सौभाग्य से	दिष्ट्या, स्वप्नायते आर्यपुत्रः ।
दूरम्	दूर	दूरमपसर ।
ध्रुवम्	निश्चय ही	जातस्य ध्रुवं मृत्युः ।
नक्तम्	रात को	किं त्वं नक्तम् हरिद्वारं गमिष्यसि ?
न	नहीं	अहं न गच्छामि ।
ननु	कृपया	ननु मे देहि स्वसन्निधौ शरणम् ।
नाम	नामक	गङ्गाधरः नाम कश्चिद् बालकः अतीव उद्यमशीलः अस्ति ।
निकषा	निकट	ग्रामं निकषा विद्यालयम् अस्ति ।
नीचैः	धीमे	त्वं किं सर्वदा नीचैः एव वदसि ?
नूनम्	निश्चित	अद्य सः नूनमागमिष्यति ।
परितः	चारो ओर	ग्रामं परितः वनमस्ति ।
परश्वः	परसो	तत्राहं परश्वः गमिष्यामि ।
पश्चात्	बाद में	त्वं पूर्वं गृहं गत्वा पश्चात् स्नानं कुरु ।
पुनः	फिर	पुनः जलं पातुमिच्छामि ।
पुरतः	आगे	मम पुरतः सत्वरं निर्गच्छ ।
पुरा	प्राचीनकाल में	पुरा आदिकविः वाल्मीकिः संस्कृतभाषायां रामस्य चरित्रं विस्तरेणालिखत् ।

क्रि० वि०	अर्थ	प्रयोग
पृथक्-पृथक्	अलग-अलग	भक्तः नदीभ्यां गंगायमुनाभ्यां पृथक्-पृथक् जलमानयति ।
प्रतिदिनम्	हर रोज	सः प्रतिदिनं न पठति ।
प्रत्युत	उल्टे	सः सत्यं न वदति, प्रत्युत असत्यमेव वदति ।
प्राक्	पहले	प्राक् मुखं प्रक्षालय ।
प्रातः	सवेरे	अहं सदैव प्रातः उद्यानं गच्छामि ।
प्रायः	अक्सर	प्रायः मूर्खा बहु जल्पन्ति ।
बहिः	बाहर	नगरम् बहिः चौराः वसन्ति ।
भूयः	बार-बार	पुनः भूयोऽपि नमो नमस्ते ।
भृशम्	बहुत	भृशम् परितप्यमानः सोऽवदत् ।
मुहुः	बार-बार	मुहुर्मुहुः विचिन्त्य पण्डितेनोक्तम् ।
मृषा	झूठ	अयं बालकः मृषा वदति ।
यतः	क्योंकि	सः शुल्कं दातुं न शक्तः यतः स निर्धनः अस्ति ।
यत्र	जहाँ	सः तत्र गच्छति, यत्र त्वं गच्छसि ।
यथा	जैसा	यथादिशति भवान् ।
यथा	जैसे-वैसे	यथा गुरुस्तथा शिष्यः ।
यदा	जब	यदा सः ग्रामं गच्छति, अहमपि गच्छामि ।
यावत्	जब तक	यावत् अहं जीवामि, चिन्तां मा कुरु ।
विना	विना	त्वं पुस्तकं विना कथं पठसि ?
वृथा	व्यर्थ में	सः वृथा असत्यं वदति ।
शनैः शनैः	धीरे-धीरे	शनैः शनैः अधः गच्छ ।
श्वः	कल (आने वाला)	कथं तत्र सः श्वः न गमिष्यति ?
सदैव	हमेशा	अहं सदैव पाठशालां गच्छामि ।
सदा	हमेशा	सः सदा सत्यं वदति ।
सर्वदा	सबदिन	सः सर्वदा उद्यानं गच्छति ।
सह	साथ	बालकः मात्रा सह तिष्ठति ।
सकृत्	एकबार	सकृत् कन्या प्रदीयते ।

क्रि० वि०	अर्थ	प्रयोग
सत्वरं	तेजी से	अश्वः सत्वरं धावति ।
सद्यः	तुरन्त	ग्रामे सद्यः नवनीतं मिलति ।
सम्यक्	भलीभाँति	सः सम्यक् विजानाति ।
सर्वतः	चारों ओर	ग्रामं सर्वतः जलमस्ति ।
सर्वत्र	सब जगह	ईश्वरः सर्वत्र अस्ति ।
साम्प्रतम्	अब	सः साम्प्रतम् किं करोति ?
सायम्	शाम को	सः सायमुद्यानं गच्छति ।
स्वस्ति	आशीर्वाद	प्रजाभ्यः स्वस्ति ।
स्वयम्	अपने आप	सः स्वयं पत्रं लिखति ।
सार्धम्	साथ	सः रामेण सार्धं आपणं गच्छति ।
ह्यः	कल (बीता हुआ)	ह्यः सः विद्यालयम् न अगच्छत् ।

समुच्चय बोधक शब्द

अथवा	वा	भोः कोऽत्र द्वारि तिष्ठति ? अथवा अपरेण किं प्रयोजनम् ?
चेत्	यदि	न रोचते चेत् मा कुरु ।
तु	तो	कृष्णः तु विहस्य अब्रवीत् ।
नोचेत्	नहीं तो	शीघ्रमागच्छ नोचेत् विलम्बो भविष्यति ।
यदि-तर्हि	यदि-तो	यदि त्वं श्वः विद्यालयं गमिष्यसि तर्हि अहमपि गमिष्यामि ।
हि	निश्चय	एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जति ।

मनोविकार सूचक शब्द

इन अव्ययों का वाक्य से कोई सम्बन्ध नहीं रहता ।

आः	आः स्वयं मृतोऽसि ।
अहो	अहो देशस्य दुर्भाग्यम् ।
आम्	आं ज्ञातम् ।
अहह	अहह ! महापङ्के पतितोऽसि ।
धिक्	धिक् दुर्जनम् ।
हा	हा प्रिये जानकि !

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—ओह ! कैसा अकाल है ! २—स्मरण हुआ, आप लोग पटना से वर देखने आए हैं। ३—वह समुद्र के समान गम्भीर है। ४—हाँ यह ऐसा ही है। ५—क्षण भर में न मालूम विधाता क्या करेगा ? ६—रास्ते में वस्तुतः तेरे पैर इधर-उधर पड़ रहे हैं। ७—जहाँ चारों हैं वहाँ का और क्या कहा जाय। ८—यह आश्रम तो शान्त है तथापि मेरी भुजा फड़क रही है। ९—वस्तुतः तुम्हारी महिमा वाणी तथा मन से परे है। १०—बाद में लोभाभिभूत किसी पथिक ने सोचा। ११—इसके अतिरिक्त और क्या कहना है ? १२—सुदर्शन नामक राजा थे। १३—तू आगे चल तब तक काम करके घर आता हूँ। १४—अभी जाओ। १५—यह पुत्र की तरह मेरी गोद में बैठता है। १६—केवल अज्ञानी माया से अभिभूत होते हैं। १७—हाय, देवी ! मेरा हृदय फटा जा रहा है। १८—गुणवान् से की गई याचना व्यर्थ भी हो जाय तो भी अच्छी है। १९—उसके मन में क्या है जो बराबर ऐसा अनुचित कार्य करता है। २०—पानी मीठा होता है, परन्तु दूध और भी मीठा होता है। २१—वहाँ से लौटकर यहाँ ठहरूँगा। २२—यदि भगवान् की आराधना नहीं की तो तप से क्या लाभ ?

चतुर्थ सोपान

सन्धि-विचार

तुम धाराप्रवाह बोलते समय ऐसा अनुभव करते होगे कि दो निकटवर्ती वर्णों का बिना रुके उच्चारण करते समय मुख-सुख के कारण उनकी ध्वनि में एक प्रकार का विकार या परिवर्तन अपने-आप आ जाता है। 'चोर ले गया' इस वाक्य को 'चोल्ले गया', 'मार डाला' को माड्डाला बोलते हुए तुम ध्वनि के इस विकार या परिवर्तन का भलीभाँति अनुभव कर सकते हो।

संस्कृत-भाषा में भी इसी प्रकार जब दो वर्ण पास-पास होते हैं तब कभी-कभी उनके उच्चारण में स्वाभाविक परिवर्तन हो जाता है। इति और आदि इन दोनों शब्दों का बिना रुके तुम यदि एक साथ उच्चारण करो तो इनका उच्चारण 'इत्यादि' अपने-आप हो जाता है।

इस प्रकार,

दो वर्णों के पास-पास आने पर उनमें जो विकार (परिवर्तन) उत्पन्न हो जाता है, संस्कृत में उसी विकार को सन्धि कहते हैं।

यह परिवर्तन तीन रूप में मिलता है। (१) कहीं दोनों अक्षरों में परिवर्तन होता है। जैसे वाक् + हरिः = वाग्घरिः। यहाँ पास-पास वर्तमान क् और ह् दोनों अक्षरों का क्रमशः ग् और घ् के रूप में परिवर्तन हो गया है। (२) कहीं एक ही में परिवर्तन देखा जाता है। जैसे इति + आदि = इत्यादि। यहाँ निकटवर्ती 'इ' और 'आ' दो अक्षरों में केवल एक ही अर्थात् 'इ' का परिवर्तन 'य' के रूप में हुआ है। (३) कहीं दोनों वर्णों के स्थान पर एक तीसरा ही अक्षर हो जाता है। यथा—रमा + ईशः = रमेशः। यहाँ 'आ' और 'ई' दोनों के स्थान पर एक तीसरा वर्ण 'ए' हो गया है।

सन्धि के भेद

सन्धि तीन प्रकार की होती है। (१) अच् सन्धि या स्वरसन्धि (२) हल् सन्धि या व्यञ्जन सन्धि (३) विसर्ग सन्धि।

अच् सन्धि या स्वर सन्धि—जब दो स्वरों के पास-पास होने पर विकार होता है तब उसे स्वर सन्धि या अच् सन्धि कहते हैं। यथा—इति + अलम् = इत्यलम्।

हल् सन्धि या व्यञ्जन सन्धि—व्यञ्जन के बाद स्वर या व्यञ्जन के होने पर व्यञ्जन में जो विकार उत्पन्न होता है उसे व्यञ्जन सन्धि या हल् सन्धि कहते हैं। यथा—सन् + आह = सन्नाह। जगत् + नाथः = जगन्नाथः।

विसर्ग सन्धि—जब विसर्ग के बाद कोई स्वर या व्यञ्जन वर्ण आने पर विसर्ग में विकार उत्पन्न होता है तब उस विकार को विसर्ग सन्धि कहते हैं। यथा—रामः + अवदत् = रामोऽवदत्। बालकः + गच्छति = बालको गच्छति।

स्वर (अच्) सन्धि के भाग

१—दीर्घसन्धि—पूर्व स्वर 'अ' (ह्रस्व या दीर्घ) और पर (बाद वाला) स्वर भी 'अ' (ह्रस्व या दीर्घ) हो तो दोनों के स्थान पर दीर्घ आ। इसी प्रकार पूर्व स्वर 'इ' (ह्रस्व या दीर्घ) और पर स्वर भी 'इ' (ह्रस्व या दीर्घ) हो तो दोनों के स्थान पर दीर्घ ई। पूर्व स्वर 'उ' (ह्रस्व या दीर्घ) और पर स्वर भी उ (ह्रस्व या दीर्घ) हो तो दोनों के स्थान पर दीर्घ ऊ। पूर्व स्वर ऋ (ह्रस्व या दीर्घ) और पर स्वर भी ऋ (ह्रस्व या दीर्घ) हो तो दोनों के स्थान पर दीर्घ ॠ हो जाता है। संक्षेप में—

ह्रस्व अथवा दीर्घ अ, इ, उ, ऋ के बाद, क्रमशः ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ आयें तो उन दोनों के स्थान पर क्रमशः आ, ई, ऊ, ॠ हो जाते हैं। (अकः सवर्णे दीर्घः) यथा—

अ + अ = आ	असुर + अरिः = असुरारिः।
अ + आ = आ	औषध + आलयः = औषधालयः
आ + अ = आ	विद्या + अर्थी = विद्यार्थी।
आ + आ = आ	विद्या + आलयः = विद्यालयः।
इ + इ = ई	कवि + इन्द्रः = कवीन्द्रः।
इ + ई = ई	कपि + ईशः = कपीशः।
ई + इ = ई	नदी + इयम् = नदीयम्।
ई + ई = ई	गौरी + ईशः = गौरीशः।

उ + उ = ऊ	भानु + उदयः = भानूदयः ।
उ + ऊ = ऊ	धेनु + ऊधस्यम् = धेनूधस्यम् ।
ऊ + उ = ऊ	वधू + उल्लासः = वधूल्लासः ।
ऊ + ऊ = ऊ	चमू + ऊर्जः = चमूर्जः ।
ऋ + ऋ = ॠ	पितृ + ऋणम् = पितॄणम् ।

२—गुण सन्धि—जब अ अथवा आ के बाद ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ, लृ आयें तो अ + इ मिलकर ए, अ + उ मिलकर ओ, अ + ऋ मिलकर अर् और अ + लृ मिल कर अल् हो जाते हैं। (आद् गुणः) यथा—

अ + इ = ए	नर + इन्द्रः = नरेन्द्रः ।
आ + इ = ए	महा + इन्द्रः = महेन्द्रः ।
अ + ई = ए	नर + ईशः = नरेशः ।
आ + ई = ए	रमा + ईशः = रमेशः ।
अ + उ = ओ	सूर्य + उदयः = सूर्योदयः ।
आ + उ = ओ	गङ्गा + उदकम् = गङ्गोदकम् ।
अ + ऊ = ओ	नव + ऊढा = नवोढा ।
आ + ऊ = ओ	रम्भा + ऊरुः = रम्भोरुः ।
अ + ऋ = अर्	कृष्ण + ऋद्धिः = कृष्णर्द्धिः ।
आ + ऋ = अर्	महा + ऋषिः = महर्षिः ।
अ + लृ = अल्	तव + लृकारः = तवल्कारः ।

३—वृद्धि सन्धि

ह्रस्व अथवा दीर्घ अ के बाद ए अथवा ऐ आये तो दोनों मिलकर ऐ हो जाते हैं। ह्रस्व अथवा दीर्घ अ के बाद ओ अथवा औ आये तो दोनों मिल कर औ हो जाते हैं। (वृद्धिरेचि) यथा—

अ + ए = ऐ	तव + एव = तवैव
आ + ए = ऐ	सदा + एव = सदैव
अ + ऐ = ऐ	देव + ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम् ।
आ + ऐ = ऐ	महा + ऐश्वर्यम् = महैश्वर्यम् ।

अ + ओ = औ	उष्ण + ओदनम् = उष्णौदनम् ।
आ + ओ = औ	गङ्गा + ओघः = गङ्गौघः ।
अ + औ = औ	कृष्ण + औत्कण्ठ्यम् = कृष्णौत्कण्ठ्यम् ।
आ + औ = औ	महा + औषधम् = महौषधम् ।

४—यण् सन्धि

ह्रस्व अथवा दीर्घ इ, उ, ऋ, लृ के बाद कोई भिन्न स्वर आवे तो इ को य्, उ को व्, ऋ को र् और लृ को ल् हो जाता है।

(इको यणचि) यथा—इति + आह = इत्याह ।

पार्वती + आराधनम् = पार्वत्याराधनम् ।

मधु + अरि = मध्वरिः ।

पितृ + आज्ञा = पित्राज्ञा ।

लृ + आकृतिः = लाकृतिः ।

५—अयादिसन्धि

यदि ए, ऐ, ओ, औ के बाद कोई स्वर आये तो ए के स्थान पर अय्, ऐ के स्थान पर आय्, ओ के स्थान पर अव् और औ के स्थान पर आव् हो जाता है। (एचोऽयवायावः) यथा—

ने + अनम् = न् + अय् + अनम् = नयनम् ।

नै + अकः = न् + आय् + अकः = नायकः ।

पो + इत्रः = प् + अव् + इत्रः = पवित्रः ।

पौ + अकः = प् + आव् + अकः = पावकः ।

नोट—यकारादि प्रत्यय परे रहने पर भी ओ को अव्, औ को आव् हो जाता है। यथा—

गो + यम् = ग् + अव् + यम् = गव्यम् ।

नौ + यम् = न् + आव् + यम् = नाव्यम् ।

विशेष—संज्ञा, सर्वनाम आदि शब्दों के रूपों अथवा धातु के रूपों को पद कहा जाता है।

जैसे बालक संज्ञा शब्द है, इसके बालकः, बालकौ, बालकाः आदि सभी रूपों को पद कहेंगे। इसी प्रकार पठ् धातु के पठति, पठतः पठन्ति आदि सभी रूपों को पद कहेंगे।

उपर्युक्त अयादि सन्धि के अवसर पर इस बात का विचार कर लेना चाहिए कि पूर्व स्वर ए, ऐ, ओ, औ किसी पद के अन्त में तो स्थित नहीं है। यथा—लभ् धातु के लभते, लभेते, लभन्ते आदि रूप हैं अतः पद हुए। इन पदों के अन्त में ए है। 'लभै' पद के अन्त में ऐ है।

६—पूर्वरूप सन्धि

यदि ए अथवा ओ पद के अन्त में स्थित हो और उसके बाद स्वर ह्रस्व अ हो तो ऐसी स्थिति में अयादि सन्धि न करके उस ह्रस्व अ का लोप कर दिया जाता है। सन्धि दिखाने के लिए लुप्त अकार के स्थान पर ऽ चिह्न लगा दिया जाता है।

इस चिह्न को अर्द्ध अकार अथवा खण्ड अकार कहते हैं। (एङः पदान्तादति) यथा—

हरे + अव् यहाँ 'हरे' हरि शब्द के सम्बोधन का रूप है अतः पद है और 'ए' उस पद के अन्त में स्थित है। उसके बाद स्वर ह्रस्व अ है, ऐसी स्थिति में ए को अय् नहीं होगा अपितु ह्रस्व अ का लोप हो जायगा और उसके स्थान पर ऽ चिह्न बना दिया जायगा। अर्थात्

हरे = अव् = हरेऽव। लभते + अत्र = लभतेऽत्र। इसीप्रकार

प्रभो + अनुगृहाण = प्रभोऽनुगृहाण।

अब तुम स्वयं जान गये होगे कि ए अथवा ओ पद के अन्त में स्थित हो किन्तु बाद में ह्रस्व अ स्वर न आकर उससे भिन्न कोई स्वर आया हो तो अयादि सन्धि होगी ही। इसी प्रकार पद के अन्त में ऐ अथवा औ स्थित हो और बाद में कोई भी स्वर हो तो अयादि सन्धि होगी ही। किन्तु यहाँ भी एक विशेष कार्य यह होता है कि अय्, आय्, अव्, आव् के अन्तिम य् और व् का लोप कर दिया जाता है और फिर कोई प्राप्त सन्धि नहीं होती। यह स्मरण रहे कि यह लोप कार्य वैकल्पिक है। चाहे किया जाय चाहे न किया जाय।

यथा—हरे + इह = हर् + अय् + इह = हर् + अ + इह = हर इह (य् का लोप करने पर प्राप्त गुण सन्धि नहीं हुई। जब य का लोप नहीं होगा तो 'हरयिह' होगा। इसी प्रकार

विष्णो + इति = विष्णु इति, विष्णविति

स्त्रियै = अयच्छत् = स्त्रिया अयच्छत्, स्त्रियाययच्छत्।

तौ + आहतुः = ता आहतुः, तावाहतुः।

७—पररूप सन्धि

अवर्णान्त उपसर्ग के बाद ए अथवा ओ से प्रारम्भ होने वाली धातु आये तो ऐसी स्थिति में अ + ए = ऐ, अथवा अ + ओ = औ अर्थात् वृद्धि सन्धि नहीं की जायगी, प्रत्युत उपसर्ग के अन्तिम अ का लोप हो जाता है। (एङि पररूपम्) यथा—

प्र + एजते = प्र् + एजते = प्रेजते।

उप + ओषति = उप् + ओषति = उपोषति।

८—प्रकृतिभाव

किसी शब्द के द्विवचन के रूप के अन्त में दीर्घ ई, ऊ अथवा ए हो और उसके बाद कोई स्वर आये तो किसी प्रकार की भी सन्धि नहीं होगी। इसी को प्रकृति भाव कहते हैं। (ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम, प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्) यथा—हरी + इमौ = हरी इमौ।

यहाँ—'हरी, हरि शब्द के प्रथमा द्विवचन का रूप है जिसके अन्त में 'ई' है और बाद में 'इ' स्वर है। ई + इ = ई अर्थात् दीर्घ सन्धि (देखो नियम १) प्राप्त होते हुए भी नहीं हुई। इसी प्रकार कवी + अमू = कवी अमू, यण् सन्धि (देखो नियम ४) प्राप्त होते हुए भी नहीं हुई। इसी प्रकार

भानू + उद्गच्छतः = भानू उद्गच्छतः।

गङ्गे + इमे = गङ्गे इमे।

अभ्यास

सन्धि कीजिए और नियम भी बतलाइए—

तिष्ठति + एषः, दुर्लभा + इति, आभरणस्य + आभरणम् , मा + एवम् , प्रस्थिता + असि, मम् + उत्तरम् , खलु + एषा, शे + अनम् , भो + अनम् , वसन्त + ऋतुः, गृहे + अस्मिन् , कवी + आगच्छतः, शिशू + उत्तिष्ठतः, लभेते + अत्र, लभते + अत्र, देव + ऋषिः, नृप + ऐश्वर्यम् , तव + औदार्यम् , पितृ + आज्ञा, गै + अकः, लौ + अकः, प्र + आषति, कस्मै + इदम् , ते + आगताः, अमू + अश्नीतः ।

नियम बताते हुए सन्धि-विच्छेद कीजिए—

जयः, रोचत एव, शीतर्तुः, लभेऽद्य, गुरोऽत्र, यथैव, स्वागतम् , पवनः, तवर्द्धिः, चयनम् , उपेजते, उपेतः ।

हल् सन्धि अथवा व्यञ्जन सन्धि

(१) श्चुत्वसन्धि

स् या तवर्ग से पहिले या बाद में श् या चवर्ग कोई भी हो तो स् को श् और तवर्ग को चवर्ग हो जाता है। (स्तोः श्चुना श्चुः) यथा—

रामस् + शेते = रामश्शेते । हरिस् + च = हरिश्च । दुस् + चरित्रः = दुश्चरित्रः । तत् + च = तच्च । याच् + ना = याच्ञा । शार्ङ्गिन् + जय = शार्ङ्गिञ्जय ।

अपवाद—श् के बाद तवर्ग हो तो तवर्ग को चवर्ग नहीं होता। यथा—
विश् + नः = विश्नः । प्रश् + नः = प्रश्नः ।

(२) ष्टुत्व सन्धि

स् या तवर्ग से पहिले या पीछे ष् या टवर्ग कोई भी हो तो स् को ष् और तवर्ग को टवर्ग हो जाता है। (ष्टुना ष्टुः) यथा—

रामस् + षष्ठः = रामष्षष्ठः । इष् + तः = इष्टः । तत् + टीका = तट्टीका ।
रामस् + टीकते = रामष्टीकते । उद् = डयनम् + उड्डयनम् ।

अपवाद—(क) टवर्ग पद के अन्त में और उसके बाद नाम्, नवति, नगरी शब्द के अतिरिक्त स् या तवर्ग हो तो यह सन्धि नहीं होती अर्थात् स् को ष् और तवर्ग को टवर्ग नहीं होता। यथा—

षट् + सन्तः = षट्सन्तः। यहाँ टवर्ग पद के अन्त में स्थित है और उसके बाद स् है इसलिए स् को ष् नहीं हुआ। इसी प्रकार षट् + ते = षट्ते।

नाम्, नवति अथवा नगरी शब्द के रहने पर सन्धि होगी ही। जैसे—

षट् + नाम् + षण्णाम्। षट् + नवतिः = षण्णवतिः।

षट् + नगर्यः = षण्णगर्यः।

(ख) तवर्ग के बाद ष् हो तो तवर्ग को टवर्ग नहीं होता। यथा—

सन् + षष्ठः = सन् षष्ठः।

(३) जश्त्व सन्धि

(क) पदान्त जश्त्व सन्धि—पद के अन्त में झल् (वर्ग के १, २, ३, ४ वर्ण और ऊष्म अर्थात् श्, ष्, स्, ह्) स्थित हो तो उसे जश् (अपने वर्ग का तृतीय अक्षर) हो जाता है।

इस नियम का सूत्र—झलां जशोन्ते। यथा—

अच् + अन्तः = अजन्तः। सुप् + अन्तः = सुबन्तः। वाक् + दानम् = वाग्दानम्। जगत् + ईशः + जगदीशः।

(ख) अपदान्त जश्त्व सन्धि—अपदान्त में झल् (वर्ग के १, २, ३, ४ तथा ऊष्म) को जश् (अपने वर्ग का तृतीय अक्षर) हो जाता है यदि बाद में झश् (वर्ग के ३, ४) हो। (झलां जश् झशि)

यथा—लभ् + धः = लब्धः। दुघ् + धम् = दुग्धम्। बुध् + धिः = बुद्धिः।

(४) चर्त्व सन्धि

झल् (वर्ग के १, २, ३, ४ तथा ऊष्म) को चर् (उसी वर्ग का प्रथम अक्षर) हो जाता है, यदि बाद में खर् (वर्ग के १, २, श्, ष्, स्) हो। (खरि च)

नोट—श् को प्रथम अक्षर च्, ष् को प्रथम अक्षर ट्, स् को त् और ह् को क् होगा।

यथा—उद् + पन्नः = उत्पन्नः । तज + छिवः = तच्छिवः । लभ् + स्यते = लप्स्यते । युध् + सु = युत्सु ।

(५) अनुस्वार सन्धि

पदान्त में स्थित म् के बाद कोई भी व्यञ्जन हो तो म् को अनुस्वार हो जाता है । (मोऽनुस्वारः) यथा—

गृहम् + गच्छति = गृहं गच्छति ।

रामम् + नमामि = रामं नमामि ।

त्वम् + पठसि = त्वं पठसि ।

नोट—पदान्त म् के बाद कोई स्वर हो तो 'म्' को अनुस्वार नहीं होता है, बल्कि 'म्' आगे वाले स्वर में मिल जाता है । यथा—

रामम् + अपश्यत् = राममपश्यत् ।

फलम् + आनय = फलमानय ।

(६) छत्व सन्धि

वर्ग के पदान्त प्रथम चार वर्णों के परे यदि श् हो और श् के बाद अट् (स्वर, ह् , य् , व् , र्) हो तो श् को विकल्प से छ् होता है। श् को छ् होने पर पूर्ववर्ती त् को 'स्तोः श्चुना श्चुः' सूत्र से च् हो जाता है । (शश्छोऽटि)

यथा—

तत् + शास्त्रम् = तच्छास्त्रम् । मत् + शरीरम् = मच्छरीरम् ।

तत् + श्रुत्वा = तच्छ्रुत्वा । तत् + शिवः = तच्छितः ।

(७) शत्वादिसन्धि

यदि प्रशान् शब्द के अतिरिक्त पदान्त न् के बाद छव् (च् , छ् , ट् , ठ् , त् और थ्) हो और छव् के बाद अम् (कोई स्वर , ह् , य् , व् , र् , ल् या किसी वर्ग का पाँचवाँ अक्षर) हो तो न् को अनुस्वार हो जाता है और च् , छ् , ट् , ठ् , त् एवं थ् के स्थान पर क्रमशः श्च, श्छ, ष्ट, ष्ठ, स्त एवं स्थ हो जाता है । (नश्छव्यप्रशान्)

यथा—

शार्ङ्गिन् + छिन्धि = शार्ङ्गिंश्छिन्धि । महान् + टङ्कारः = महांष्टङ्कारः । अस्मिन् + तडागे = अस्मिंस्तडागे ।

(८) अनुनासिक सन्धि

पदान्त यर् (ह् को छोड़कर समस्त व्यञ्जन) के बाद वर्ग का पञ्चम अक्षर (ङ् , ञ् , ण् , न् , म्) हों तो यर् को अपने वर्ग का पाँचवाँ अथवा तीसरा वर्ण हो जाता है । (यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा)

यथा—

जगत् + नाथः = जगद्नाथः या जगन्नाथः ।

षट् + मासाः = षण्मासाः या षड्मासाः ।

षट् + मान्याः = षड्मान्याः या षण्मान्याः ।

भगवत् + नमामः = भगवद् नमामः या भगवन्नमामः ।

विशेष—प्रत्यय का अनुनासिक अक्षर परे होने पर नित्य ही अनुनासिक होता है ।

यथा—

तत् + मयम् = तन्मयम् । वाक् + मयम् = वाङ्मयम् ।

चित् + मयम् = चिन्मयम् । अप् + मयम् = अम्मयम् ।

(९) परसवर्ण सन्धि

अपदान्त अनुस्वार के बाद वर्ग का कोई अक्षर अथवा य् , र् , ल् , व् हो तो अनुस्वार को उस अक्षर का सवर्ण अनुनासिक होता है । (अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ।) यथा—

शाम् + तः = शान्तः । कं + ठः = कण्ठः ।

अन् + कितः = अङ्कितः ।

विशेष—पदान्त में यह परसवर्ण (अगले वर्ण का पञ्चम अक्षर) विकल्प से होता है । यथा—

गृहम् + चलति = गृहञ्चलति अथवा गृहं चलति ।

फलम् + चिनोति = फलञ्चिनोति अथवा फलं चिनोति ।

त्वम् + करोषि = त्वङ्करोषि अथवा त्वं करोषि ।

(१०) लत्व सन्धि

यदि तवर्ग (त् , थ् , द् , ध्, न्) के बाद ल् आये तो तवर्ग के स्थान पर ल् हो जाता है । (तोर्लि) यथा—

विद्युत् + लता = विद्युल्लता । तत् + लीनः = तल्लीनः ।
तत् + लयः = तल्लयः ।

विशेष—यदि त् के बाद ल् आता है तो न् के स्थान पर अनुनासिक ल हो जाता है और ल से पूर्व स्वर के ऊपर चन्द्रविन्दु का प्रयोग किया जाता है अर्थात् न + ल = ँल्ल । यथा—

विद्वान् + लिखति = विद्वाँल्लिखति ।
गुणवान् + लुण्ठति = गुणवाँल्लुण्ठति ।

अभ्यास

सन्धि कीजिए और नियम भी बताइये—

दिक् + अम्बरः, जगत् + बन्धुः, महत् + चक्रम् , प्रेष् + तः, महान् + लाभः, युध् + सु, गम् + गा, दिक् + नाथः, रामस् + शेते, शुध् + धिः, गृहम् + चलामि ।

नियम बताते हुए सन्धि-विच्छेद कीजिए—

तच्चं, इष्टः, वाग्दानम् , क्रुद्धः, युयुत्सु, हरिं वन्दे, पल्लवः, जगच्छरण्यः, शङ्का, कस्मिंश्चित् ।

विसर्ग सन्धि

१—(विसर्जनीयस्य सः)

(अ) यदि विसर्ग के बाद क् , ख् , प् , फ् आवें तो विसर्ग के स्थान पर विसर्ग ही रहेगा । यथा—

रामः + करोति = रामः करोति । रामः + पठति = रामः पठति ।
कः + खादति = कः खादति ।

(ब) यदि विसर्ग के बाद च् , छ् आवें तो विसर्ग के स्थान पर श् हो जाता है । यथा—

निः + चलः = निश्चलः ।
निः + छलः = निश्छलः ।

(स) यदि विसर्ग के बाद त् , थ् आवें तो विसर्ग के स्थान पर स् हो जाता है ।

यथा—

नमः + ते = नमस्ते । जनाः + तिष्ठन्ति = जनास्तिष्ठन्ति ।

(द) यदि विसर्ग के बाद ट् , ठ् आवें तो विसर्ग के स्थान पर ष् हो जाता है । यथा—

धनुः + टङ्कारः = धनुष्टङ्कारः ।

वृद्धः + ठगति = वृद्धष्ठगति ।

(य) यदि विसर्ग के बाद श् , ष् , स् आवे तो विसर्ग के स्थान पर विकल्प से श् , ष् , स् अथवा विसर्ग ही होता है । यथा—

रामः + शेते = रामश्शेते अथवा रामः शेते ।

२—उत्व सन्धि

(अ) पदान्त स् और सजुष् शब्द के ष् को रु (ः) होता है । (ससजुषो रुः)

नोट—प्रायः इस रु का साधारणतया विसर्ग (ः) ही शेष रहता है ।

इसी रु को 'अतोरोरुप्लुतादप्लुते', 'हशि च', 'भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि' से उ या य् होता है ।

(ब) ह्रस्व अ के बाद रु (ः या र्) आवे तो रु को उ हो जाता है, यदि बाद में ह्रस्व अ हो तो । (अतो रोरप्लुतादप्लुते)

(**नोट**—इस उ को पूर्ववर्ती अ के साथ आद्गुणः सन्धि करने से ओ हो जाता है एवं उत्तरवर्ती अ को 'एङःपदान्तादति' सूत्र से पूर्वरूप सन्धि होती है ।) यथा—

कः + अपि = कोऽपि ।

उपर्युक्त सन्धि में 'ससजुषो रुः' के अनुसार विसर्ग का रु, 'अतोरोरुप्लुतादप्लुते' के अनुसार 'रु' का 'उ', 'आद्गुणः' के अनुसार पूर्ववर्ती अ और उ के स्थान में ओ तथा 'एङः पदान्तादति' के अनुसार उत्तरवर्ती 'अ' को पूर्वरूप (ऽ) हो जाता है ।

कः + अपि

क रु + अपि (ससजुषो रुः)

क उ + अपि (अतो रोरप्लुतादप्लुते)

को + अपि (आद् गुणः)

कोऽपि (एङः पदान्तादपि)

इसी प्रकार रामः + अत्र = रामोऽत्र ।

सः + अपठत् = सोऽपठत् ।

३—उत्व सन्धि

ह्रस्व अ के बाद र (ः या र्) को उ हो जाता है, यदि बाद में हश् (वर्गों के तीसरे, चौथे तथा पाँचवें वर्ण तथा य, र, ल, व, ह) हों । (हशि च)

नोट—उ करने के बाद 'आद् गुणः' से गुण होकर 'ओ' होगा । यथा—

रामः + गच्छति = रामो गच्छति ।

उपर्युक्त सन्धि में 'ससजुषो रुः' के अनुसार विसर्ग का रु, 'हशि च' के अनुसार रु का उ और फिर 'आद् गुणः' से अ और उ के स्थान पर 'ओ' हो जाता है ।

रामः + गच्छति

राम रु गच्छति (ससजुषो रुः)

राम उ गच्छति (हशि च)

रामो गच्छति (आद् गुणः)

इसी प्रकार बालो नमति आदि ।

४—यत्व सन्धि

भोः, भगोः, अघोः और अ या आ के बाद रु को य् होता है, यदि बाद में अश् (स्वर, वर्गों के तीसरे, चौथे तथा पांचवें वर्ण तथा य, र, ल, व, ह) प्रत्याहार हों । (भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि)

नोट—'भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि' सूत्र के अनुसार 'रु' का य् होने पर बाद में स्वर होने के कारण 'लोपः शाकल्यस्य' के अनुसार तथा बाद में व्यञ्जन होने के कारण 'हलि सर्वेषाम्' के अनुसार य् का लोप हो जाता है । तदनन्तर कोई स्वर सन्धि नहीं होती यथा—

बालाः + आगच्छन्ति = बाला आगच्छन्ति ।

उपर्युक्त सन्धि में 'ससजुषोः रुः' सूत्र से विसर्ग को रु हुआ, तदनन्तर 'भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि' सूत्र से रु को य, फिर 'लोपः शाकल्यस्य' एवं 'हलि सर्वेषाम्' सूत्र से य् का लोप हुआ।

बालाः + आगच्छन्ति
बाला रु + आगच्छन्ति (ससजुषो रुः)
बाला य् + आगच्छन्ति (भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि)
बाला आगच्छन्ति (लोपः शाकल्यस्य)

५—सुलोप सन्धि

सः और एषः के विसर्ग का लोप हो जाता है, यदि बाद में कोई व्यञ्जन हो तो। (एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि)

नोट—सः, एषः के बाद 'अ' आने पर 'अतो रोरप्लुतादप्लुते' सूत्र से 'ओऽ' होगा। यदि अन्य स्वर बाद में होंगे तो 'भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि' सूत्र से विसर्ग का लोप होगा यथा—

सः + पठति = स पठति। सः + अहम् = सोऽहम्।
एषः + गच्छति = एष गच्छति। एषः + अपि = एषोऽपि।

अतिरिक्त विसर्ग सन्धि

(अ) यदि र् के बाद र् हो तो प्रथम र् का लोप हो जाता है। (रो रि)

(ब) यदि ढ् या र् का लोप हुआ हो तो उससे पहले आने वाले अ, इ, उ को दीर्घ हो जाता है (ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः) यथा—

पुनर् + रमते = पुना रमते। पुनर् + रचना = पुना रचना।
निर् + रसः = नीरसः। कविः + रम्यः = कवी रम्यः।
भानुर् + राजते = भानू राजते।

अपवाद

(अ) यदि उपसर्ग आविः, निः, दुः के विसर्ग के बाद क, ख, प, फ हो तो विसर्ग के स्थान पर 'ष्' हो जाता है। जैसे—

आविः + कृतम् = आविष्कृतम्।
निः + फलम् = निष्फलम्।

(व) कतिपय शब्द ऐसे भी हैं जिनमें यदि विसर्ग से पहले अ अथवा आ हो और तदनन्तर 'क' हो तो विसर्ग के स्थान पर 'स्' हो जाता है। जैसे—

पुरः + कारः = पुरस्कारः।

नमः + कारः = नमस्कारः।

भाः + करः = भास्करः।

अभ्यास

सन्धि कीजिए और नियम भी बताइये—

कः + अयम्, मृगः + धावति, एषः + शशः, वधूः + एषा, भोः + देवाः, रामः + शेते, भवतः + थुत्कारः, रामः + गच्छति, सः + एति, भानुः + उदेति, सः + लिखति, शम्भुर् + राजते।

नियम बताते हुए सन्धि-विच्छेद कीजिए—

गुरुः पृच्छति, निस्सारः, निश्छलः, नीरोगः, रामष्टीकते, विष्णुस्त्राता, एष गच्छति, देवा इह, कपिर्गतः, आविष्कारः, गुरूराजते, सोऽपि, गुरुरस्ति, अन्ताराष्ट्रियः।

णत्व-विधान

(अ) (१) यदि 'र' के बाद 'न' आवे तो 'न' को 'ण' हो जाता है। यथा—चतुर्णाम्।

(२) यदि 'ष' के बाद 'न' आवे तो 'न' को 'ण' हो जाता है। यथा—पुष्णाति।

(३) 'र' अथवा 'ष' तथा 'न' के बीच अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, य, र, व, ह, क, ख, ग, घ, ङ, प, फ, ब, भ, म आवें तो 'न' को 'ण' हो जाता है। यथा—गुरुणा, ऋषिणा, रामेण, सर्वेण, कराणाम्, करिणा, गुरुणा, मूर्खेण, गर्वेण आदि।

परन्तु पदान्त दन्त्य नकार को मूर्द्धन्य णकार नहीं होता है। यथा—रामान्।

(४) गिरि एवं नदी आदि शब्दों में 'न' को 'ण' विकल्प से होता है। यथा—गिरि + नदी = गिरिणदी अथवा गिरिनदी।

स्वर + नदी = स्वर्णदी अथवा स्वर्नदी ।

(५) यदि उपसर्ग र् के बाद धातु का 'न' आवे तो 'न' को 'ण' हो जाता है । यथा—प्र + नमति = प्रणमति ।

प्र + मानम् = प्रमाणम् ।

(६) ओषधिवाचक और वृक्षवाचक शब्दों के बाद 'वन' शब्द के 'न' को विकल्प से 'ण' होता है यथा—माषवनं अथवा माषवणं वदरीवनं अथवा वदरीवणं ।

(७) यदि प्र, पूर्व, पर एवं अपर आदि शब्दों के बाद अ ह शब्द आवे तो 'न' को 'ण' हो जाता है । यथा—प्राह्ण, पूर्वाह्ण, पराह्ण, अपराह्ण आदि ।

(८) यदि पर, पार, उत्तर, चान्द्र और नारा शब्द के बाद 'अयन' शब्द आवे तो 'अयन' के 'न' को 'ण' हो जाता है । यथा—परायणम् , पारायणम् , उत्तरायणम् , चान्द्रायणम् , नारायणः ।

(९) यदि 'अग्र' और 'ग्राम' शब्द के बाद 'नी' आवे तो 'नी' के 'न' को 'ण' हो जाता है । यथा—अग्रणीः, ग्रामणीः ।

(१०) यदि 'र्' एवं 'ष्' के बाद 'पान' शब्द 'आवे तो 'पान' शब्द के 'न' को 'ण' विकल्प से होता है । यथा—क्षीरपाणम् अथवा क्षीरपानम् , विषपाणम् अथवा विषपानम् ।

(११) प्र, परा, परि, निर और अन्तर शब्द के बाद नम् , नद्, नश् , नह् , नी, नु, नुद्, अन् और हन् धातु आवे तो 'न्' को 'ण' हो जाता है । यथा—प्रणमति, प्रणुदति आदि ।

परन्तु जब नश् धातु का तालव्य 'श्' मूर्धन्य 'ष्' में बदल जाता है और 'हन्' धातु के 'ह' के स्थान पर 'घ' हो जाता है, तब 'न' को 'ण' नहीं होता है । यथा—प्रनष्टः, प्रघ्नन्ति आदि ।

(१२) यदि गद्, नद्, पत् , पद्, दा, धा, हन् , दाण्, दो, सो, दे, धे, मा, या, द्रा, सा, वप् , शम् , चि, दिह् धातु के पूर्व 'नि' उपसर्ग हो तो 'नि' उपसर्ग के 'न' को 'ण' हो जाता है । यथा—प्रणिधानम् , प्रणिपतति आदि ।

(ब) (१) यदि ऋ, र् , ष् और न के बीच में किसी दूसरे वर्ग के अक्षर आवें तो 'न' को 'ण' नहीं होता है । यथा—अर्च + ना = अर्चना । यहाँ 'र' और

'न' के बीच में चवर्ग आने के कारण 'न' को 'ण' नहीं हुआ। इसी प्रकार अर्चेन, क्रिरीटेन, स्पर्शेन, रसेन आदि शब्द भी हैं।

(२) यदि प्रथम पद में ऋ, ॠ, र् और ष् हो एवं द्वितीय पद में 'न्' हो तो 'ण्' नहीं होता है। यथा—नृयानम्, रघुनन्दनः आदि।

(३) पक्व, युवन्, अहन्, भगिनी, कामिनी, भामिनी एवं यूना आदि शब्दों के 'न' को 'ण' नहीं होता है। यथा—परकामिनी, पितृभगिनी आदि।

(४) पूर्व पद के अन्त में मूर्द्धन्य 'ष' होने से उत्तर पद के 'न' को 'ण' नहीं होता है। यथा—निष्पानम्, दुष्पानम् आदि।

षत्व-विधान

(अ) (१) अ और आ को छोड़कर किसी स्वर के बाद अथवा क् और र् के बाद आने वाले प्रत्यय और विभक्ति के सकार को षकार होता है। यथा—मुनिषु, गुरुषु, भानुषु, गोषु, वधूषु, देवेषु, दिक्षु आदि।

(२) अनुस्वार, विसर्ग, श्, ष्, एवं स् के बीच में आ जाने पर भी स् को ष् हो जाता है। यथा—हवींषि, धनूंषि, आशीःषु, आयुःषु आदि।

(३) अ और आ को छोड़कर किसी दूसरे स्वर से युक्त उपसर्ग के बाद धातु के 'स' को 'ष' होता है। यथा—वि + सन्नः = विषण्णः, अधिष्ठितः आदि।

(४) कुछ समासान्त शब्दों में भी 'स' को 'ष' हो जाता है यदि पूर्व पद में अ और आ को छोड़कर कोई दूसरा शब्द रहता है और उत्तर पद के आदि में स रहता है। यथा—युधिष्ठिरः।

(५) सिध्, सु, स्तु, स्निह्, स्वप्, सिच्, सेव्, सो एवं स्था आदि षोपदेश धातु के द्वित्व करने पर भी 'ष्' हो जाता है, यदि धातु के द्वितीय भाग का स् इ, उ, ए एवं ओ के परे हो। यथा—सिषेध, सिषेच आदि।

(६) परि, नि एवं वि पूर्वक सेव्, सिव् और सह् धातु के 'स्' का 'ष्' हो जाता है। यथा—परिषेवते आदि। परन्तु सह् धातु का 'सोढ' होने से 'ष' नहीं होता है। जैसेः—परिसोढुम्।

(ब) (१) अधीन अर्थ में प्रयुक्त होने वाले सात् प्रत्यय के सकार को षकार नहीं होता है। यथा—अग्निसात्, वायुसात्, पितृसात् आदि।

(२) यदि धातु के बाद सन् प्रत्यय का 'ष्' हो तो उस धातु के 'स्' को 'ष्' नहीं होता है। जैसे:—सिसेविषते, सिसिक्षति इत्यादि।

हिन्दी में अनुवाद करो और विच्छेद करके सन्धि नियम बताओ।

१. न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥

२. यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥

३. वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्र कृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥

४. वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥

५. क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥

६. सुविदितमेतन्मम केवलमिदमेव पृच्छामि यदेतदारब्धं भवता किमिदं गुरुभिरुपदिष्टमुत धर्मशास्त्रेषु पठितमुत मोक्षप्राप्तिरुक्तिरियमाहोस्विदन्यो नियमप्रकारः।

७. प्रथममिति प्रेक्ष्य दुहितृजनस्यैकोऽपराधो भगवता मर्षयितव्यः।

८. सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्मलक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥

९. मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि॥

१०. कानि रत्नानि नोपार्जितानि यान्युपार्जयिष्यसि।

संस्कृत में अनुवाद करो

१. मुझे राजा के साले द्वारा (राजश्यालकेन) आज्ञा मिली है कि हे स्थावरक, गाड़ी लेकर (प्रवहणं गृहीत्वा) बाग में जाओ। २. मैं तो बहुत देर बाद जागा हूँ। ३. क्यों तुमने युवावस्था में आभूषणों को त्याग रखा है? ४. मनुष्य को एक ही वस्तु अभीष्ट होती है, या तो राज्य या आश्रम। ५. जो स्वामी को उचित राय नहीं देता है (शास्ति) वह क्या मित्र है। ६. मेरा बच्चा न केवल जीवित ही है (ध्रियते) बल्कि हाथ जोड़कर गरुड जी उसकी सेवा भी कर रहे हैं। ७. मैं नहीं मानता कि आप का सा (यत् त्वादृशो) व्यक्ति हरि की निन्दा करेगा। ८. महाराज तो उसकी तरफ टकटकी लगाकर (अनिमेषलोचनो) देखने लगे। ९. सम्भवतः (को नाम) राजाओं का कौन प्रिय है। १०. आश्चर्य की बात है कि अन्धा आदमी पर्वत पर चढ़ता है। ११. उसे तुम्हें इस बगीचे में खोजना चाहिए (विचिनोतु)। १२. जब मन्द बुद्धि (अमेधाविनी) शिष्या उपदेश को नष्ट कर देती है (मलिनयति) तो क्या वस्तुतः आचार्य का दोष नहीं?

पञ्चम सोपान

क्रिया-प्रकरण

वर्तमान काल : लट्

भू (होना) परस्मैपद				सेव् (सेवा करना) आत्मनेपद		
भवति	भवतः	भवन्ति	प्र० पु०	सेवते	सेवेते	सेवन्ते
भवसि	भवथः	भवथ	म० पु०	सेवसे	सेवेथे	सेवध्वे
भवामि	भवावः	भवामः	उ० पु०	सेवे	सेवावहे	सेवामहे

इसी प्रकार

परस्मैपद[1]-अर्च् (पूजना) अर्चति, ईर्ष्य् (ईर्ष्या करना) ईर्ष्यति, क्रन्द् (रोना) क्रन्दति, क्रम् (चलना) क्रामति, क्रीड् (खेलना) क्रीडति, खाद् (खाना) खादति, गम् (जाना) गच्छति, गर्ज् (गरजना) गर्जति, घ्रा (सूँघना) जिघ्रति, चर् (चलना) चरति, चल् (चलना) चलति, जप् (जपना) जपति, जि (जीतना) जयति, जीव् (जीना) जीवति, ज्वल् (जलना) ज्वलति, तप् (तपना) तपति, तॄ (तैरना) तरति, त्यज् (छोड़ना) त्यजति, दह् (जलाना) दहति, दृश् (देखना) पश्यति, ध्यै (ध्यान करना) ध्यायति, नम् (झुकना) नमति, निन्द् (निन्दा करना) निन्दति, पच् (पकाना) पचति आदि । आत्मनेपद[2]-अय् (जाना) अयते, ईक्ष् (देखना) ईक्षते, ईह् (चाहना) ईहते, कम्प् (काँपना) कम्पते, कुर्द् (कूदना) कूर्दते, क्लृप् (समर्थ होना) कल्पते, क्षम् (क्षमा करना) क्षमते, क्षुभ् (क्षुब्ध होना) क्षोभते, गाह् (घुसना) गाहते, ग्रस् (खाना) ग्रसते, घट् (लगना) घटते, चेष्ट् (चेष्टा करना) चेष्टते, त्रप् (लजाना) त्रपते, त्रै (बचाना) त्रायते, त्वर् (जल्दी करना) त्वरते, दीक्ष् (दीक्षा देना) दीक्षते, द्युत् (चमकना) द्योतते, ध्वंस् (नष्ट होना) ध्वंसते, प्रथ् (फैलना) प्रथते, भाष् (बोलना) भाषते आदि ।

१—क्रिया का फल दूसरे के लिए हो तो परस्मैपद का प्रयोग होना चाहिए ।

२—क्रिया का फल कर्तृगामी (कर्ता के लिए) हो तो आत्मनेपद का प्रयोग होना चाहिए ।

उभयपदी—क्री (खरीदना) क्रीणाति—क्रीणीते, तन् (फैलाना) तनोति—तनुते, तुद् (दुःख देना) तुदति—तुदते, तृप् (तृप्त करना) तर्प-

यति-तर्पयते, दा (देना) ददाति-दत्ते, नी (ले जाना) नयति-नयते, भक्ष् (खाना) भक्षयति-भक्षयते, मुच् (छोड़ना) मुञ्चति-मुञ्चते, यज् (यज्ञ करना) यजति-यजते, याच् (माँगना) याचति-याचते, रच् (बनाना) रचयति-रचयते, राज् (चमकना) राजति-राजते, वह् (ढोना) वहति-वहते, श्रि (आश्रय लेना) श्रयति-श्रयते आदि ।

वर्तमान काल—"प्रारब्धोऽपरिसमाप्तश्च कालो वर्तमानः कालः" ।

वर्तमान काल का प्रयोग, वर्तमान समय में होने वाले कार्य अथवा वर्तमान समय में अस्तित्व रखने वाली किसी वस्तुस्थिति का बोध कराने के लिए किया जाता है ।

संस्कृत का वर्तमान काल प्रगतिशील वर्तमान अर्थात् उत्तरोत्तर होते चलने वाले वर्तमान अथवा अपूर्ण वर्तमानरूप का बोधक होता है जो किसी प्रारम्भ किए हुए कार्य का जारी होना सूचित करता है । ऐसी क्रिया लट् लकार द्वारा कही जाती है ।

निम्नलिखित वाक्यों को ध्यानपूर्वक पढ़ो—

(१) जगतः पितरौ वन्दे (मैं विश्व के माता-पिता की वन्दना करता हूँ) ।

(२) वहति जलमियं, पिनष्टि गन्धानियम् (यह स्त्री जल लाती है) (ला रही है), यह सुगन्धित द्रव्यों को पीसती है (पीस रही है) ।

(३) एतास्तपस्विकन्यका इत एवाभिवर्तन्ते (ये तापस-कन्याएँ इसी तरफ आती हैं) (आ रही हैं) ।

(४) अस्त्युत्तरस्यां दिशि हिमालयो नाम नगाधिराजः (उत्तर दिशा में पर्वताधिपति हिमालय है) ।

(५) योऽन्नं ददाति स स्वर्गं याति (जो अन्न देता है, वह स्वर्ग जाता है) ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

(१) दक्षिण में विन्ध्य नामक पहाड़ है । (२) सत्य के समान दूसरी तपस्या नहीं है । (३) सूर्य तप रहा है । (४) गुरु प्रश्न पूछता है । (५)

बालक विद्यालय को जाता है। (६) आज अमावस्या का पर्व है। (७) रात्रि में अन्धकार सर्वत्र फैल जाता है। (८) धूल में बालक खेलते हैं। (९) ब्रह्मचारी का ओज, सूर्य का तेज, चन्द्रमा की ज्योति, वीर का तेज (रोचिष्), शोभित हो रहा है। (१०) नाई उस्तरे से मनुष्य के बाल काटता है। (११) मैं पीताम्बर कृष्ण और चतुरानन को सादर प्रणाम करता हूँ। (१२) विद्वान्, मतिमान् और ज्ञानवान् अपने ज्ञान से देश का उपकार करते हैं। (१३) गुणवती और ज्ञानवती स्त्रियाँ अपने बालकों को स्वयं पढ़ाती हैं। (१४) अत्याचारी और दुराचारी सब जगह दुःखित होते हैं। (१५) मूर्ख दीनों का तिरस्कार करता है। (१६) श्याम गोपाल से छोटा है। (१७) वैदिक धर्म सारे धर्मों से प्राचीन है। (१८) दूरदर्शी जन शान्ति पाते हैं। (१९) आकाश तारों से युक्त है। (२०) योधा शस्त्र से शत्रुओं को काटता है। (२१) सुरापान बुद्धि को नष्ट करता है। (२२) कवि काव्य को बनाता है। (२३) महादेव काले साँप को धारण करते हैं। (२४) सज्जन सब पर प्रेम करता है। (२५) विद्यार्थी योगी और त्यागी की पूजा करता है।

भूतकाल : लुङ्, लङ्, लिट्

भू (लुङ्) परस्मैपद				सेव् (लुङ्) आत्मनेपद		
अभूत्	अभूताम्	अभूवन्	प्र० पु०	असेविष्ट	असेविषाताम्	असेविषत
अभूः	अभूतम्	अभूत	म० पु०	असेविष्ठाः	असेविषाथाम्	असेविध्वम्
अभूवम्	अभूव	अभूम	उ० पु०	असेविषि	असेविष्वहि	असेविष्महि

भू (लङ्) परस्मैपद				सेव् (लङ्) आत्मनेपद		
अभवत्	अभवताम्	अभवन्	प्र० पु०	असेवत	असेवेताम्	असेवन्त
अभवः	अभवतम्	अभवत	म० पु०	असेवथाः	असेवेथाम्	असेवध्वम्
अभवम्	अभवाव	अभवाम	उ० पु०	असेवे	असेवावहि	असेवामहि

भू (लिट्) परस्मैपद				सेव् (लिट्) आत्मनेपद		
बभूव	बभूवतुः	बभूवुः	प्र० पु०	सिषेवे	सिषेवाते	सिषेविरे
बभूविथ	बभूवथुः	बभूव	म० पु०	सिषेविषे	सिषेवाथे	सिषेविध्वे
बभूव	बभूविव	बभूविम	उ० पु०	सिषेवे	सिषेविवहे	सिषेविमहे

	लट्	लुङ्	लङ्	लिट्
हस् (हँसना)	हसति	अहसीत्	अहसत्	जहास
पठ् (पढ़ना)	पठति	अपठीत्	अपठत्	पपाठ
रक्ष् (रक्षा करना)	रक्षति	अरक्षीत्	अरक्षत्	ररक्ष
वद् (बोलना)	वदति	अवादीत्	अवदत्	उवाद
पच् (पकाना)	पचति	अपासीत्	अपचत्	पपाच
नम् (झुकना, प्रणाम०)	नमति	अनंसीत्	अनमत्	ननाम
गम् (जाना)	गच्छति	अगमत्	अगच्छत्	जगाम
दृश् (देखना)	पश्यति	अद्राक्षीत्	अपश्यत्	ददर्श
सद् (बैठना)	सीदति	असदत्	असीदत्	ससाद
स्था (रुकना)	तिष्ठति	अस्थात्	अतिष्ठत्	तस्थौ
पा (पीना)	पिवति	अपात्	अपिवत्	पपौ
घ्रा (सूँघना)	जिघ्रति	अघ्रात्	अजिघ्रत्	जघ्रौ
स्मृ (स्मरण करना)	स्मरति	अस्मार्षीत्	अस्मरत्	सस्मार
वस् (रहना)	वसति	अवात्सीत्	अवसत्	उवास
दिव् (चमकना)	दीव्यति	अदेवीत्	अदीव्यत्	दिदेव
नृत् (नाचना)	नृत्यति	अनर्तीत्	अनृत्यत्	ननर्त
लभ् (पाना)	लभते	अलब्ध	अलभत	लेभे
वृध् (बढ़ना)	वर्धते	अवर्धिष्ट	अवर्धत	ववृधे
मुद् (प्रसन्न होना)	मोदते	अमोदिष्ट	अमोदत	मुमुदे
सह् (सहन करना)	सहते	असहिष्ट	असहत	सेहे
याच् (मांगना)	याचते	अयाचिष्ट	अयाचत	ययाचे
युध् (लड़ना)	युध्यते	अयुद्ध	अयुध्यत	युयुधे
जन् (उत्पन्न होना)	जायते	अजनि,अजनिष्ट	अजायत	जज्ञे
मुच् (छोड़ना)	मुञ्चते	अमुक्त	अमुञ्चत	मुमुचे
धा (धारण करना)	धत्ते	अधित	अधत्त	दधे
तन् (फैलाना)	तनुते	अतत,अतनिष्ट	अतनुत	तेने
कृ (करना)	कुरुते	अकृत	अकुरुत	चक्रे
क्री (मोल लेना)	क्रीणाति	अक्रैषीत्	अक्रीणात्	चिक्राय
ज्ञा (जानना)	जानीते	अज्ञास्त	अजानीत	जज्ञे

भूतकाल (लुङ्, लङ्, लिट्)—अतीत काल का बोध कराने के लिए संस्कृत में तीन लकार हैं—लुङ्, लङ्, लिट्।

पाणिनि के अनुसार आज से पूर्व हुए कार्य का बोध कराने के लिए लङ् लकार, आज से पहले हुए या किए हुए ऐसे कार्य का बोध कराने के लिए जिसे वक्ता ने न देखा हो लिट् लकार, साधारणतया सभी प्रकार के भूतकालों का बोध कराने के लिए लुङ् लकार प्रयुक्त होता है।

आज से पूर्व किया हुआ कार्य परोक्षभूत (लिट्) अथवा अनद्यतनभूत (लङ्) द्वारा बताया जाता है। सामान्यभूत (लुङ्) से साधारणतया किसी कार्य का किसी भी अतीतकाल में अथवा अत्यन्त ही हाल में (वर्तमान ही दिन के किसी समय में) होना पाया जाता है। अनद्यतनभूत (लङ्) तथा परोक्षभूत (लिट्) का प्रयोग प्रायः सुदूरवर्ती भूतकाल की घटनाओं का वर्णन करने में किया जाता है। अत्यन्त हाल ही के भूतकालिक कार्यों में आये हुए संलापों में सामान्यभूत (लुङ्) का प्रयोग किया जाता है, किन्तु निश्चयपूर्वक उल्लिखित भूतकाल का बोध कराने के लिए अथवा घटनाओं का वर्णन करने के लिए इसका प्रयोग कभी भी नहीं करना चाहिए।

कभी-कभी जब हाल ही से सम्बन्धित प्रश्न करना होता है तो अनद्यतनभूत (लङ्) का प्रयोग किया जाता है। जैसे अगच्छत् किं बालकः विद्यालयम् (क्या बालक विद्यालय चला गया)? परन्तु सुदूरवर्ती भूतकाल को दिखाने के लिए परोक्षभूत (लिट्) का ही प्रयोग करना चाहिए। यथा—

कंसं जघान किम् (क्या उसने कंस को मार डाला)?

उत्तम पुरुष में परोक्षभूत कर्ता के मस्तिष्क की अचेतनावस्था अथवा उन्माद का बोध कराने के लिए परोक्षभूत (लिट्) का प्रयोग किया जाता है। इसलिए इस अर्थ को छोड़कर अन्य किसी भी अर्थ में परोक्षभूत का प्रयोग उत्तम पुरुष में नहीं करना चाहिए। यथा—

बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहम् (उन्मत्त होने के कारण उसके सामने बहुत बड़बड़ाया)।

किसी के विरुद्ध जो कहा जाता हो अथवा कहा गया हो उसके विपरीत उससे कहकर जब उसी व्यक्ति से सच्ची वस्तुस्थिति छिपानी हो तब परोक्षभूत (लिट्)

उत्तम पुरुष का प्रयोग करना चाहिए। यथा—नाहं कलिंगान् जगाम—मैं कलिंग देश नहीं गया था। कलिंगेष्ववात्सीः किम्—क्या तुम कलिंग देश में रहे थे।

सामान्यभूत नैरन्तर्य (Continuousness) का बोध कराने के लिए सामान्यभूत (लुङ्) प्रयुक्त किया जाता है। इस अर्थ में अनद्यतनभूत का प्रयोग कभी भी नहीं करना चाहिए। यथा—ब्राह्मणेभ्यो यावज्जीवमन्नमदात् (न कि अददात)—उसने जीवन भर ब्राह्मणों को भोजन दिया अर्थात् भोजन देना जीवन भर जारी रक्खा।

'स्म' से असंयुक्त 'पुरा' के साथ अनद्यतनभूत, परोक्षभूत अथवा वर्तमान कोई भी प्रयोग में आ सकता है। यथा—वसंतीहपुरा छात्रा अवात्सुः, अवसन्, ऊषुः वा (यहाँ पहले विद्यार्थी रहते थे)। परन्तु पुरास्म के साथ केवल वर्तमान आता है। यथा—वसतिस्म पुरा—वह प्राचीन काल में रहता था।

या अथवा मास्म के बाद सामान्यभूत (लुङ्) का अ लुप्त हो जाता है। जब सामान्यभूत मध्यमपुरुष अपने अ का लोप कर स्म के साथ आता है तो आज्ञा का अर्थ देता है। यथा—वयस्य मा कातरो भूः (मित्र डरो मत)।

संस्कृत में अनुवाद करो—

(लुङ् में) १—दुःख मत करो। २—मत डरो। ३—शोक न करो। ४—दुष्कर्म मत करो। ५—स्वार्थपरायण मत हो। ६—अपना उत्साह मत छोड़ो। ७—मैं सुख से सोया। ८—उसने कहा कि बहुत दिन मेरी यहाँ रहने की इच्छा है। ९—वह बोली-मैं तुम्हारे कहने में हूँ। १०—वह तपस्या के लिए वन में गया। ११—विद्यालय से निकल पड़ा। १२—उसने आँसू भरी दृष्टि से माँ से कहा। १३—वह साधारण स्त्री के तुल्य बहुत देर तक रोई।

संकेत :—१—विषादं मा गाः। २—मा भैषीः। ३—शुचो वशं मा गमः। ४—मत करो—मा कार्षीः। ५—मत हो—मा भूः। ६—उत्साहभङ्गं मा कृथाः। ७—सुखमस्वाप्सम्। ८—कहा-अवादीत्। ९—अवोचत्, एषास्मि ते वचसिस्थिता। १०—वन में गया—वनमगात्। ११—निकल पड़ा—निरगात्। १२—बाष्पायमाणदृष्टिर्मातरम् अभ्यधात्। १३—सा प्राकृतप्रमदेवातिचिरम् अरोदीत्।

(लिट् में) १—सभासद् अपने घर को गए। २—कहानी खत्म हुई। ३—मोहन के सारे प्रयत्न विफल हुए और सोहन के सफल। ४—उस कन्या का

नाम उमा पड़ा। ५—दशरथ का बड़ा पुत्र राम नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ। ६—मेनका की पुत्री हिमालय की चोटी पर गई। ७—उसने अपने रूप की निन्दा की। ८—कामदेव के भस्म हो जाने से पार्वती शिव को न जीत सकती थी। ९—वह मन की बात न कह सकी। १०—पर्वत की कन्या न चल सकी, न रुक सकी। ११—उसने बल्कल बाँधा। (लङ् में) १—मोहन प्रातः काल उठा, उसने माता-पिता के चरणों को छुआ, पाठ याद किया, पत्र लिखा, भोजन किया और विद्यालय को गया। २—मेरा छोटा भाई सीढ़ी से गिर गया। ३—पिताजी उसे चिकित्सालय ले गये। ४—न इधर का रहा न उधर का रहा। ५—उसने विद्वानों को निमन्त्रण दिया। ६—ईश्वर ने संसार बनाया। ७—बच्चा बिलख-बिलखकर रोया। ८—सूर्य ने किरणों से संसार को तपाया। ९—आग ने नगर को जलाया। १०—तपस्वी ने वहां तप किया। ११—राजा और सेनापति ने नगर की रक्षा की। १२—मुनियों ने सूर्य को नमस्कार किया। १३—पिता के साथ बालक यहाँ आया। १४—बालक गेंद से खेला। १५—वह कवि के साथ घूमा।

१—जग्मुः। २—विच्छेदमाप कथा प्रबन्धः। ३—उमा पड़ा—उमाख्यां जगाम। ४—संसार में प्रसिद्ध हुआ—भुवि पप्रथे। ५—चोटी पर गई—शिखरं जगाम। ६—निन्दा की—निनिन्द। ७—न जीत सकती थी—न जेतुं शशाक। ८—मनोगतं सा न शशाक शंसितुम्। ९—शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ। १०—बाँधा-बबन्ध। इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः। ११—निमन्त्रण दिया—न्यमन्त्रयत।

भविष्यत् काल-लुट्, लृट्

भू (लुट्) परस्मैपद				सेव् (लुट्) आत्मनेपद		
भविता	भवितारौ	भवितारः	प्र० पु०	सेविता	सेवितारौ	सेवितारः
भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ	म० पु०	सेवितासे	सेवितासाथे	सेविताध्वे
भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः	उ० पु०	सेविताहे	सेवितास्वहे	सेवितास्महे

भू (लृट्) परस्मैपद				सेव् (लृट्) आत्मने पद		
भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति	प्र० पु०	सेविष्यते	सेविष्येते	सेविष्यन्ते
भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ	म० पु०	सेविष्यसे	सेविष्येथे	सेविष्यध्वे
भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः	उ० पु०	सेविष्ये	सेविष्यावहे	सेविष्यामहे

परस्मैपद	लुट्	लृट्
हस्	हसिता	हसिष्यति
पठ्	पठिता	पठिष्यति
रक्ष्	रक्षिता	रक्षिष्यति
वद्	वदिता	वदिष्यति
पच्	पक्ता	पक्ष्यति
नम्	नन्ता	नंस्यति
गम्	गन्ता	गमिष्यति
दृश्	द्रष्टा	द्रक्ष्यति
सद्	सत्ता	सत्स्यति
स्था	स्थाता	स्थास्यति
पा	पाता	पास्यति
घ्रा	घ्राता	घ्रास्यति
स्मृ	स्मर्ता	स्मरिष्यति
आत्मनेपद	**लुट्**	**लृट्**
लभ्	लब्धा	लप्स्यते
वृध्	वर्धिता	वर्धिष्यते
मुद्	मोदिता	मोदिष्यते
सह्	सहिता, सोढा	सहिष्यते
याच्	याचिता	याचिष्यते
नी	नेता	नेष्यते
हृ	हर्ता	हरिष्यते
ब्रू	वक्ता	वक्ष्यते
दुह्	दोग्धा	धोक्ष्यते
आस्	आसिता	आसिष्यते
शी	शयिता	शयिष्यते
दा	दाता	दास्यते
धा	धाता	धास्यते

भविष्यत्काल (लुट्, लृट्)—भविष्यकालिक क्रिया का बोध कराने के लिए संस्कृत में लुट् और लृट् लकार हैं । लुट् लकार ऐसी क्रिया का बोध कराता है जो आज न होगी और लृट् लकार प्रायः सभी प्रकार की भविष्य क्रियाओं का—हाल में भी होने वाली भविष्य क्रियाओं का बोध कराता है ।

कहने का सारांश है कि लुट् लकार आज न होने वाली किसी दूरवर्ती भविष्यकालिक क्रिया का बोध कराता है ।

आज का भविष्यकाल, हाल का भविष्यकाल और निरन्तर भविष्यकाल—का बोध कराने में लृट् लकार प्रयुक्त होता है । यथा—पंचषैरहोभिर्वयमेव तत्र गन्तारः (हमलोग स्वयं ही पांच छः दिनों में जायेंगे)। सेविष्यन्ते नयन-सुभगं खे भवन्तं बलाकाः (आकाश में, नेत्रों को सुन्दर लगने वाले तुझ को बकुले सेएँगे)। यास्यत्यद्य शकुन्तला (शकुन्तला आज विदा हो जायगी)। एते उन्मूलितारः कपिकेतनेन (कपिध्वज अर्जुन के द्वारा वे लोग नष्ट कर दिए जायेंगे)।

संस्कृत में अनुवाद करो—

(लुट् में) १—मैं कल प्रातःकाल जैसी स्थिति होगी वैसा बताऊँगा । २—जब तुम्हारी बुद्धि मोह के दलदल को पार कर लेगी, तब तुम्हें वैराग्य प्राप्त होगा । ३—मैं परसों वाराणसी जाऊँगा । ४—मैं कल प्रयाग से प्रस्थान करूँगा । ५—मैं परसों आगरा पहुँचूंगा । ६—मैं एक महीने बाद पटना चला जाऊँगा । ७—तुम्हारा पुत्र शत्रुओं के यश को हर लेगा ।

(लृट् में) १—तुम थोड़ी देर में अपने घर पहुँच लोगे । २—कल मेरे यहाँ शाम को पाँच बजे सत्यनारायण की कथा होगी । ३—प्रसाद बँट जाने पर हम सब मिलकर खेलेंगे । ४—जितना गुड़ डालोगे उतना ही मीठा होगा । ५—जो सत्कर्म में चेष्टा करेगा, वह न नष्ट होगा और न दुःखी होगा । ६—वह माता-पिता की वन्दना करेगा । ७—वह वेद को सीखेगा, सबका हित चाहेगा, ज्ञानोपार्जन में स्पर्धा करेगा । ८—यदि तुम गहरे तालाब में उतरोगे तो डूब जाओगे । ९—मैं तुम्हारी चित्तवृत्ति का अनुसरण करूँगा । १०—इस समाचार को सुनकर गुरुजी न जाने क्या विचारेंगे ।

संकेत :—१—जैसी स्थिति होगी वैसा बताऊँगा—यथावस्थितम् आवेदयितास्मि। २—मोह······लेगी—मोहकलिलम् व्यतितरिष्यति। वैराग्य प्राप्त होगा—निर्वेदं गन्तासि। ३—जाऊँगा-गन्तास्मि। ४—प्रस्थान करूँगा—प्रस्थाताहे। ५—आसादयितास्मि। ६—पटना चला जाऊँगा—पाटलिपुत्रं यातास्मि।

१—त्वं क्षणात् स्वगृहे वर्तिष्यसे। ४—अधिकस्याधिकं फलम्। ५—सत्कर्म में चेष्टा करेगा—सत्कर्मणि चेष्टिष्यते। न नष्ट होगा—न ध्वंसिष्यते। न दुःखी होगा—न व्यथिष्यते। ६—बन्दना करेगा—वन्दिष्यते। ७—सीखेगा—शिक्षिष्यते। चाहेगा—ईहिष्यते। स्पर्धा करेगा—स्पर्धिष्यते। ८—उतरोगे—अवगाहिष्यसे। डूब जाओगे—निमङ्क्ष्यसि। ९—चित्तवृत्ति का अनुसरण करूँगा—वृत्तिमनुवर्तिष्ये। १०—न जाने क्या विचारेंगे—न जाने किं प्रतिपत्स्यते।

सम्भाव्यभविष्यत् और प्रवर्तना (लोट्, विधिलिङ् और आशीर्लिङ्)

भू (लोट्) परस्मैपद — सेव् (लोट्) आत्मनेपद

भवतु	भवताम्	भवन्तु	प्र० पु०	सेवताम्	सेवेताम्	सेवन्ताम्
भव	भवतम्	भवत	म० पु०	सेवस्व	सेवेथाम्	सेवध्वम्
भवानि	भवाव	भवाम	उ० पु०	सेवै	सेवावहै	सेवामहै

भू (विधिलिङ्) परस्मैपद — सेव् (विधिलिङ्) आत्मनेपद

भवेत्	भवेताम्	भवेयुः	प्र० पु०	सेवेत	सेवेयाताम्	सेवेरन्
भवेः	भवेतम्	भवेत	म० पु०	सेवेथाः	सेवेयाथाम्	सेवेध्वम्
भवेयम्	भवेव	भवेम	उ० पु०	सेवेय	सेवेवहि	सेवेमहि

भू (आशीर्लिङ्) — सेव् (आशीर्लिङ्) आत्मनेपद

भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः	प्र० पु०	सेविषीष्ट	सेविषीयास्ताम्	सेविषीरन्
भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त	म० पु०	सेविषीष्ठाः	सेविषीयास्थाम्	सेविषीध्वम्
भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म	उ० पु०	सेविषीय	सेविषीवहि	सेविषीमहि

परस्मैपद	लोट	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्
हस्	हसतु	हसेत्	हस्यात्
पठ्	पठतु	पठेत्	पठ्यात्
रक्ष्	रक्षतु	रक्षेत्	रक्ष्यात्
वद्	वदतु	वदेत्	उद्यात्
पच्	पचतु	पचेत्	पच्यात्
नम्	नमतु	नमेत्	नम्यात्
गम्	गच्छतु	गच्छेत्	गम्यात्
दृश्	पश्यतु	पश्येत्	दृश्यात्
सद्	सीदतु	सीदेत्	सद्यात्
स्था	तिष्ठतु	तिष्ठेत्	स्थेयात्
पा	पिबतु	पिबेत्	पेयात्
घ्रा	जिघ्रतु	जिघ्रेत्	घ्रेयात्, घ्रायात्
स्मृ	स्मरतु	स्मरेत्	स्मर्यात्
जि	जयतु	जयेत्	जीयात्

आत्मनेपद	लोट्	विधिलिङ्	आशीर्लिङ्
लभ्	लभताम्	लभेत	लप्सीष्ट
वृध्	वर्धताम्	वर्धेत	वर्धिषीष्ट
मुद्	मोदताम्	मोदेत	मोदिषीष्ट
सह्	सहताम्	सहेत	सहिषीष्ट
याच्	याचताम्	याचेत	याचिषीष्ट
नी	नयताम्	नयेत	नेषीष्ट
हृ	हरताम्	हरेत	हृषीष्ट
ब्रू	ब्रूताम्	ब्रुवीत	वक्षीष्ट
दुह्	दुग्धाम्	दुहीत	धुक्षीष्ट
आस्	आस्ताम्	आसीत	आसिषीष्ट
शी	शेताम्	शयीत	शयिषीष्ट

दा	दत्ताम्	ददीत	दासीष्ट
धा	धत्ताम्	दधीत	धासीष्ट
युध्	युध्यताम्	युध्येत	युत्सीष्ट

सम्भाव्यभविष्यत् एवं प्रवर्तना (लोट्, विधिलिङ्, आशीर्लिङ्)—

निम्नलिखित अर्थों में लोट् और विधिलिङ् प्रयुक्त होता है—

(१) **विधि**—सदा धर्ममाचरतु आचरेत् वा (सदा धर्म करो, करना चाहिए)।

(२) **निमन्त्रण**—इह भुङ्क्ताम् भुञ्जीत वा (यहां भोजन करें)।

(३) **आमन्त्रण**—अत्र आगच्छतु, आगच्छेद् वा (यहां आप आ सकते हैं)।

(४) **विनय**—पुत्रमध्यापयेत्, अध्यापयतु वा भवान् (कृपया मेरे लड़के को पढ़ा दिया करें)।

(५) **संप्रश्न**—किं भोः काशीं गच्छानि गच्छेयं वा उत काश्मीरम् (क्या महाशय ! मैं काशी जाऊँ अथवा काश्मीर)।

(६) **प्रार्थना**—किं भोजनं लभेय लभै वा (क्या मुझे भोजन मिलेगा)।

निम्नलिखित अर्थों में लोट् लकार प्रयुक्त होता है—

(१) **सामर्थ्य**—अहं पर्वतमपि उत्पाटयानि (मैं पर्वत भी उखाड़ डालूंगा)।

(२) **आशीर्वाद**—भगवांस्त्वां सदाऽवतु (भगवान् सदा तुम्हारी रक्षा करें)।

(३) **आज्ञा**—सः पठतु (वह पढ़े)।

(४) **आदर**—एतदासनमास्यताम् (कृपया इस आसन पर विराजिये)।

निम्नलिखित अर्थों में विधिलिङ् प्रयुक्त होता है—

(१) अनुमति देने में, पथप्रदर्शन के लिए उपदेश तथा नियमों के विधान करने में, धर्म दिखलाने में। यथा—

सत्यं ब्रूयात् (सत्य बोलना चाहिये)।

पुत्रम् पञ्च वर्षाणि लालयेत् (पाँच वर्ष की उम्र तक पुत्र को प्यार करना चाहिए)।

धनानि जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् (बुद्धिमान को परोपकार में धन और जीवन का उत्सर्ग कर देना चाहिए)।

सहसा किमपि न कुर्यात् (एकाएक कुछ नहीं कर बैठना चाहिए)।

(२) **योग्यता**—त्वं तस्य जाड्यं हरेः (तू उसकी जडता दूर करने के योग्य है)।

(३) **सामर्थ्य**—त्वं धर्ममुद्धरेः (तु धर्म का उद्धार कर सकता है)।

(४) **सम्भावना**—स परीक्षामुत्तरेत् (सम्भव है वह परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाय)।

(५) जातु, यत् , यदा, यदि शब्दों के योग में—यदि, जातु, यत् , यदा त्वादृशः धर्मात्प्रमाद्येत् का कथान्येऽषाम् (यदि तुम्हारे जैसे धर्म से प्रमाद करें तो औरों की क्या बात)।

(६) 'यद्' शब्द का प्रयोग रहने पर काल, समय, वेला शब्द के योग में—कालः समयो वेला वा यद् भवान् स्नायात् (आपके स्नान करने का समय है)।

आशीर्लिङ्, सदैव आशीर्वाद देने में आता है और उत्तम पुरुष में वक्ता की इच्छा प्रकट करता है। यथा—

तत्किमन्यदाशास्महे, केवलं वीरप्रसवा भूयाः (तो हमलोग और क्या आशा करें ? ईश्वर करे तुम वीर पुत्र पैदा करो)।

कृतार्था भूयासम् (ईश्वर से इच्छा करता हूँ कि सफल होऊँ)।

संस्कृत में अनुवाद करो—

(लोट् में) १—ऐ पुरवासियो, सुनते जाओ। २—हे मित्र, बचाओ, बचाओ। ३—हाय मेरी प्यारी, कहाँ हो। उत्तर दो। ४—लालच छोड़ो, क्षमा धारण करो, घमण्ड त्यागो। ५—इन आठ प्रत्यक्ष रूपों से युक्त शंकर भगवान् तुम्हारी रक्षा करें। ६—भगवान् करे, समय पर मेघ बरसें। ७—लोगों के मन को अच्छी लगने वाली हवाएँ बहें। ८—भगवान् करे, तुम इन गुणों से युक्त चक्रवर्ती पुत्र पाओ। ९—भगवान् करे, तुम अपने ही अनुरूप

पुत्र पाओ। १०—भूना हुआ दाना चबाता हुआ, जौ खाता हुआ वह भोजन करता है।

संकेतः—४—तृष्णां छिन्द्धि, भज क्षमां, जहि मदम्। ५—प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः। ६—पर्जन्यः कालवर्षी भवतु। ७—जन-मनोनन्दिनो वान्तु वाताः। ८—पाओआप्नुहि। १०—सक्तून् पिब, धानाः खादे-त्यभ्यवहरति।

(विधिलिङ्) १—परिश्रमपूर्वक पेरता हुआ पुरुष, सम्भव है, बालू में से भी तेल पा जाय। २—दो वर्ष से कम उम्र वाले बच्चे को गाड़ देना चाहिए। ३—विपत्ति के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए। ४—पिनाकपाणि महादेवजी का भी धैर्य छुड़ा दूं। ५—आश्चर्य है अन्धा आदमी कृष्ण को देख ले। ६—यह मेरी आशा है कि आप खायेंगे। ७—चाहता हूँ कि श्रीमान् जो सोम पिएँ। ८—मैं कार्तिकेय के जीतने वाले को जीत लूँ।

१—लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्। २—गाड़ देना चाहिए—निखनेत्। ४—कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिम्। ६—कामो मे भुंजीत भवान्। ७—इच्छामि सोमं पिवेत् भवान्। ८—जेतारं कार्तिकेयस्य विजयेय।

(आशीर्लिङ्) १—देवता लोग अन्त को रमणीक बनावें। २—ईश्वर करे तुम वीर पुत्र पैदा करो। ३—हे बालक, तुम युग-युग जीओ। ४—ईश्वर से इच्छा करता हूँ कि सफल होऊँ। ५—तुम सावित्री के तुल्य हो। ६—तुम्हारा मार्ग शुभ हो।

१—विधेयासुर्देवाः परमरमणीयां परिणतिम्। ५—सावित्री समाभूयाः। ६—शुभ हो—शिवो भूयात्।

हेतु-हेतुमद्भाव (क्रियातिपत्ति) लृङ्

भू (लृङ्) परस्मैपद

प्र० पु० अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
म० पु० अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
उ० पु० अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

सेव (लृङ्) आत्मनेपद

प्र० पु०	असेविष्यत	असेविष्येताम्	असेविष्यन्त
म० पु०	असेविष्यथाः	असेविष्येथाम्	असेविष्यध्वम्
उ० पु०	असेविष्ये	असेविष्यावहि	असेविष्यामहि

इसी प्रकार

परस्मैपद (हस्) अहसिष्यत् (पठ्) अपठिष्यत् (रक्ष्) अरक्षिष्यत् (वद्) अवदिष्यत् (पच्) अपक्ष्यत् (नम्) अनंस्यत् (गम्) अगमिष्यत् (दृश्) अद्रक्ष्यत् (सद्) असत्स्यत् (स्था) अस्थास्यत् (पा) अपास्यत् (घ्रा) अघ्रास्यत् (स्मृ) अस्मरिष्यत् (जि) अजेष्यत् (वस्) अवत्स्यत् ।

आत्मनेपद (लभ्) अलप्स्यत (वृध्) अवर्धिष्यत (मुद्) अमोदिष्यत (सह्) असहिष्यत (याच्) अयाचिष्यत (नी) अनेष्यत (हृ) अहरिष्यत (ब्रू) अवक्ष्यत (दुह्) अधोक्ष्यत (आस्) आसिष्यत (शी) अशयिष्यत (दा) अदास्यत (धा) अधास्यत ।

हेतु-हेतुमद्भाव—जहाँ क्रिया का न होना या किया जाना दरशाना होता है वहाँ क्रियातिपत्ति (लृङ्) का प्रयोग किया जाता है। अथवा जहाँ पर पूर्वगामी उपवाक्य की असत्यता दिखाई जाती है, वहाँ भी क्रियातिपत्ति का प्रयोग होता है।

पूर्वगामी उपवाक्य (Antecedent) और अनुगामी उपवाक्य (Consequent) दोनों में क्रियातिपत्ति का रूप लाया जाता है। यथा—

यदि सुरभिमवाप्स्यस्तन्मुखाच्छ्वासगन्धम् , तव रतिरभविष्यत् पुण्डरीके किमस्मिन् (यदि तुमने उसके साँस की सुगन्धि पाई होती तो क्या तुम्हारे मन में इस कमल के प्रति जरा भी रुचि हुई होती)।

सुवृष्टिश्चेदभविष्यत् सुभिक्षमभविष्यत् (यदि अच्छी वर्षा होती तो सुभिक्ष अवश्य होता)।

किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता, तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् (क्या अरुण अन्धकार को दूर कर सकता था, यदि उसे सूर्य अपनी धुरा में न बैठाता) ?

निशाश्चेत्तमस्विन्योनाभविष्यन् को नाम चन्द्रमसोर्गुणं व्यज्ञास्यत् (यदि रातें अँधेरी न होतीं तो चन्द्रमा का गुण कौन जानता) ?

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—यदि परमात्मा इस जोड़े को परस्पर न मिलाता तो उसका रूपनिर्माण का यत्न विफल होता। २—यदि राजा अपराधियों को दण्ड न देता तो वे लोगों को अवश्य पीड़ित करते। ३—यदि तुम और मोहन यहाँ होते तो तुम उस भयंकर दृश्य का देखना सहन न कर सकते। ४—यदि मोहन का उचित उपचार होता तो वह नहीं मरता। ५—यदि पहरेदार जागते रहते तो चोरी न होती। ६—यदि वह परिश्रम करता तो परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण होता। ७—यदि कृष्ण की सहायता प्राप्त न होती तो पाण्डव कौरवों को जीत न सकते। ८—यदि वह अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखता तो रोगी न होता। ९—यदि वह आता तो मैं उसके साथ जाता। १०—यदि गोरे शासक भारतीयों के जन्म-सिद्ध अधिकारों को दे देते तो दोनों जातियों के आपस का सम्बन्ध बहुत अच्छा हो जाता। ११—यदि वह मेरे घर आता तो उसे मिष्ठान्न खिलाता।

संकेत :—१—जोड़े को—द्वन्द्वम्। न मिलाता—न अयोजयिष्यत्। विफल होता—विफलोऽभविष्यत्। २—दण्ड न देता—दण्डं नाधारयिष्यत्। पीड़ित करते—उपापीडयिष्यन्। ५—पहरेदार (यामिकाः)। ७—यदि······ होती—न चेत्कृष्णः साहाय्यं व्यतरिष्यत्। ८—शरीरे चेदवाधास्यान्नासौ रुग्णोऽभविष्यत्। ९—यदि सः आगमिष्यत्तर्हि अहं नूनं तेन सह अगमिष्यम्। १०—यदि गौराङ्गाः शासका आजन्मसिद्धानधिकारान् भारतीयेभ्योऽदास्यन् तदा द्वयोर्जात्योः शोभनो मिथः सम्बन्धोऽभविष्यत्। ११—खिलाता—अभोजयिष्यम्।

षष्ठ सोपान

प्रेरणार्थक (णिजन्त) क्रियाएँ

किसी धातु में प्रेरणा का अर्थ लाने के लिये णिच् प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा—पकाना से पकवाना, पढ़ना से पढ़ाना आदि प्रेरणा के रूप हैं। णिच् प्रत्यय करने से कभी-कभी अकर्मक धातुएँ भी सकर्मक हो जाती हैं और कभी-कभी उनके अर्थ में भी परिवर्तन हो जाता है।

क्रिया की अणिजन्त अवस्था का जो कर्ता होता है, वही णिजन्त अवस्था में प्रयोज्य कर्ता होता है और उसमें तृतीया विभक्ति लायी जाती है। यथा—राम भात पकाता है—इस वाक्य में अणिजन्त अवस्था में राम कर्ता है, किन्तु गुरु राम से भोजन पकवाता है, इसमें राम कर्ता न होकर प्रयोज्य कर्ता है, अतएव 'राम' में तृतीया विभक्ति होगी। दोनों वाक्य इस प्रकार होंगे—रामः ओदनं पचति—गुरुः रामेण ओदनं पाचयति।

किन्तु निम्नलिखित धातुओं के योग में प्रयोज्यकर्ता में तृतीया विभक्ति न होकर द्वितीया विभक्ति होती है :—

बुद्धि—भोजन—शब्दार्थ–गत्यर्थाऽकर्मधातुषु ।
अण्यन्ते येषु यः कर्ता भवेण्ण्यन्तेषु कर्म तत् ॥

गमनार्थक, आहारार्थक, बोधार्थक, शब्दार्थक (शब्दकर्मक) और अकर्मक धातुओं के योग में प्रयोज्यकर्ता अर्थात् अणिजन्त अवस्था के कर्ता में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—

अणिजन्त

गमनार्थक—प्रभुः ग्रामं गच्छति (प्रभु गाँव जाता है)।
आहारार्थक—शिशुरन्नं भुङ्क्ते (लड़का अन्न खाता है)।
बोधार्थक—शिष्यो धर्मं बुध्यते (शिष्य धर्म समझता है)।
शब्दार्थक—छात्रः वेदमधीते (विद्यार्थी वेद पढ़ता है)।
अकर्मक—शिशुः शेते (लड़का सोता है)।

णिजन्त

रामः प्रभुं ग्रामं गमयति (राम प्रभु को गाँव पर भेज रहा है)।

माता शिशुमन्नं भोजयति (माता बच्चे को अन्न खिलाती है)।

गुरुः शिष्यं धर्मं बोधयति (गुरु शिष्य को धर्म समझाता है)।

आचार्यः छात्रं वेदमध्यापयति (आचार्य विद्यार्थी को वेद पढ़ाता है)।

राधा शिशुं शाययति (राधा बच्चे को सुलाती है)।

नी और वह् धातु के गमनार्थ होने पर भी प्रयोज्य कर्ता में द्वितीया न हो कर तृतीया होती है। यथा—

भृत्यो भारं नयति वहति वा (नौकर बोझा ले जाता है)।

भृत्येन भारं नाययति वाहयति वा (मालिक नौकर से बोझा लिवा ले जाता है)।

यदि वह् धातु का कर्ता सारथि हो तो तृतीया नहीं होती, अपितु द्वितीया होती है। यथा—

अश्वा रथं वहन्ति (घोड़े रथ खींचते हैं)।

सारथिः अश्वान् रथं वाहयति (सारथि घोड़ों से रथ खिंचवाता है)।

आहारार्थक होने पर भी अद् और खाद् धातु के प्रयोज्य कर्ता में द्वितीया न होकर तृतीया होती है। यथा—

ब्राह्मणः मिष्टान्नं खादति अत्ति वा (ब्राह्मण मिठाई खाता है)।

यजमानः ब्राह्मणेन मिष्टान्नं खादयति आदयति वा (यजमान ब्राह्मण को मिठाई खिलाता है)।

भस् धातु से हिंसा का बोध न होने पर प्रयोज्य कर्ता में तृतीया होती है। यथा—

रामः अन्नं भक्षयति (राम अन्न खाता है)।

पिता रामेण अन्नं भक्षयति (पिता राम को अन्न खिलाता है)।

शब्दकर्मक न होने पर भी जल्प्, भाष्, वि-लप्, आ-लप् आदि धातुओं के प्रयोज्य कर्ता में द्वितीया होती है। यथा—

शिष्यः धर्मं जल्पयति, भाषते, आलपति वा (शिष्य धर्म कहता है)।

गुरुः शिष्यं धर्मं जल्पति, भाषयति, आलापयति वा (गुरु शिष्य से धर्म कह- लाता है)।

स्मृ (स्मरण करना) और घ्रा (सूँघना) आदि धातुओं के प्रयोज्य कर्ता में द्वितीया विभक्ति नहीं होती। यथा—

श्यामः हरिणा मातरं स्मारयति, सौरभं घ्रापयति वा (श्याम हरि को माता का स्मरण कराता है, सुगंधि सुँघाता है)।

णिजन्त दृश् धातु के प्रयोज्य कर्ता में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—

भक्ताः हरिं पश्यन्ति (भक्त हरि को देखते हैं)।

गुरुः भक्तान् हरिं दर्शयति (गुरु भक्तों को भगवान् दिखाते हैं)।

प्रेरणार्थक धातु में शुद्ध धातु के अन्त में णिच् (अय्) जोड़ दिया जाता है। णिजन्त धातुओं के रूप चुरादिगणीय धातुओं के समान चलते हैं; धातु और तिङ् प्रत्ययों के बीच में अय् जोड़ दिया जाता है।

व्यवहारोपयोगी कतिपय णिजन्त धातु

अस् (होना) भावयति,	अस् (फेंकना) आसयति
या (जाना) यापयति,	बुध् (जानना) बोधयति
गम् (जाना) गमयति,	कृ (करना) कारयति
चि (चुनना) चापयति,	ब्रू (बोलना) वाचयति
जि (जीतना) जापयति,	स्था (ठहरना) स्थापयति
भू (होना) भावयति,	पू (पवित्र करना) पावयति
ह्वे (बुलाना) ह्वाययति,	हा (छोड़ना) हापयति
प्लु (डूबना) प्लावयति,	स्मृ (स्मरण करना) स्मारयति
पा (पीना) पाययति,	हृ (ले जाना) हारयति
दा (देना) दापयति,	हन् (मारना) घातयति
जन् (पैदा होना) जनयति,	ह्री (लजाना) ह्रेपयति
ग्रह् (लेना) ग्राहयति,	युज् (जोड़ना) योजयति
स्ना (नहाना) स्नापयति, स्नपयति,	रम् (खेलना) रमयति
अधि + इ (पढ़ना) अध्यापयति,	शम् (शान्ति करना) शमयति

गै (गाना) गापयति, प्रति + इ (समझना) प्रत्याययति
दृश् (देखना) दर्शयति, प्री (प्रसन्न करना) प्रीणयति, प्रायति
श्रु (सुनना) श्रावयति, इ (जाना) गमयति
भुज् (खाना) भोजयति, मुह् (मूर्च्छित होना) मोहयति
ज्ञा (जानना) ज्ञापयति, विश् (बैठना) वेशयति
जागृ (जागना) जागरयति, भी (डरना) भाययति, भापयति, भीषयते

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—आचार्य शिष्य को वेद पढ़ाता है। २—माता पुत्र को दूध पिलाती है। ३—पिता पुत्र को अध्ययन के लिए विद्यालय भेजता है। ४—गुरु शिष्य को वन भेजता है। ५—आचार्य शिष्य को धर्म समझा रहा है। ६—तुम मेरे लिए कब भोजन पकवाओगे? ७—पिता बेटे को अन्न खिला रहा है। ८—वह घोड़ों से रथ खिंचवा रहा है। ९—यजमान ब्राह्मण को भोजन खिलाता है। १०—वह नौकर से चटाई बनवाता है। ११—उसने लड़के को उसकी इच्छा के प्रतिकूल खिलाया। १२—हम लोगों ने उसे उसका धर्म समझाया और घर भेज दिया। १३—उसने नौकरों से एक मण्डप बनवाया। १४—आप उन नौकरानियों से मालाएँ तैयार करा लें। १५—भक्त ग्रामवासियों को सत्य-नारायण की कथा सुनाता है।

सन्नन्त धातुएँ

इच्छा के अर्थ में धातु के अनन्तर सन् प्रत्यय प्रयुक्त होता है। जैसे वह पढ़ना चाहता है। यहाँ 'वह' पढ़ने की इच्छा करता है, अतएव 'पढ़ने' का बोध कराने वाली धातु के अनन्तर सन् प्रत्यय जोड़कर 'पढ़ना चाहता है' यह अर्थ निकाला जायगा। अब उपर्युक्त वाक्य का अनुवाद होगा—सः पिपठिषति। जो कर्ता पढ़ने की क्रिया का होगा, वही इच्छा करने वाला भी होना चाहिए। यदि दूसरा कर्ता होगा तो सन् प्रत्यय नहीं लगेगा। यथा 'पिता पुत्रस्य पठनमिच्छति' में 'पिपठिषति' नहीं होगा क्योंकि 'पढ़ने वाला' और 'चाहने वाला' एक ही कर्ता नहीं है, भिन्न भिन्न कर्ता हैं।

सन् प्रत्यय का प्रयोग करना या न करना अपनी इच्छा पर है। सन्नन्त धातु के लट्, लोट् आदि परस्मैपद लकारों में 'भवति' की तरह और आत्मने-पद में 'सेवते' की तरह रूप होता है।

अब कुछ धातुओं के सन्नन्त रूप दिये जा रहे हैं—

पठ् + सन् = पिपठिष् (पिपठिषति) पढ़ने की इच्छा करता है।

ग्रह् + सन् = जिघृक्ष् (जिघ्रक्षति) ग्रहण करने की इच्छा करता है।

प्रच्छ् + सन् = पिपृच्छिष् (पिपृच्छिषति) पूँछने की इच्छा करता है।

कॄ + सन् = चिकरिष् (चिकरिषति) बिखेरने की इच्छा करता है।

गॄ + सन् = जिगरिष्, जिगलिष् (जिगरिषति, जिगलिषति) निगलने की इच्छा करता है।

हन् + सन् = जिघांस् (जिघांसति) मारने की इच्छा करता है।

गम् + सन् = जिगमिष् (जिगमिषति) जाने की इच्छा करता है।

इण् + सन् = जिगमिष् (जिगमिषति) जाने की इच्छा करता है।

ज्ञा + सन् = जिज्ञास् (जिज्ञासते) जानने की इच्छा करता है।

श्रु + सन् = शुश्रूष् (शुश्रूषते) सुनने की इच्छा करता है।

दृश् + सन् = दिदृक्ष् (दिदृक्षते) देखने की इच्छा करता है।

पा + सन् = पिपास् (पिपासते) पीने की इच्छा करता है।

आप् + सन् = ईप्स् (ईप्सति) पाने की इच्छा करता है।

अद् + सन् = जिघत्स् (जिघत्सति) खाने की इच्छा करता है।

इसी प्रकार अन्य सन्नन्त धातुओं का रूप होता है

दा	देना	दित्सति	(देने की इच्छा करता है)
लभ्	पाना	लिप्सते	(पाने ,, ,,)
ब्रू	बोलना	विवक्षति	(बोलने ,, ,,)
रुद्	रोना	रुरुदिषति	(रोने ,, ,,)
पच्	पकाना	पिपक्षति	(पकाने ,, ,,)
कृ	करना	चिकीर्षति	(करने ,, ,,)
लिख्	लिखना	लिलेखिषति	(लिखने ,, ,,)
अधि + इ	अध्ययन करना	अधिजिगांसते	(अध्ययन ,, ,,)
स्था	ठहरना	तिष्ठासति	(ठहरने ,, ,,)
मृ	मरना	मुमूर्षति	(मरने ,, ,,)

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—वह वेद पढ़ने की इच्छा करता है। २—मैं दान लेने की इच्छा नहीं करता हूँ। ३—शिष्य गुरु से प्रश्न पूछने की इच्छा करता है। ४—राजा शत्रुओं को मारने की इच्छा करता है। ५—तुम घर जाने की इच्छा करते हो। ६—वह धर्म जानने की इच्छा करता है। ७—वह नगर देखने की इच्छा करता है। ८—मैं जल पीने की इच्छा करता हूँ। ९—तुम कुछ पूछना चाहते हो (पिपृच्छिषसि)। १०—बालक रोने की इच्छा करता है। ११—कौन मनुष्य मरने की इच्छा करता है? १२—मैं पत्र लिखने की इच्छा करता हूँ। १३—तुम दोनों दान देने की इच्छा करते हो। १४—वह कालानल को इच्छा से चूमना चाहता है (कालानलं परिचुचुम्बिषति प्रकामम्)। १५—मनुष्य कर्म करता हुआ सौ वर्ष जीने की इच्छा करे (कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः)। १६—यदि वह बोलना चाहता है (विवक्षति) तो मैं उसे समय दूंगा।

यङन्त धातुएँ

क्रिया को बार-बार करने अथवा क्रिया को खूब करने का बोध कराने के लिए व्यञ्जन से आरम्भ होने वाली किसी भी एकाच् धातु के बाद यङ् प्रत्यय जोड़ा जाता है। यह प्रत्यय केवल प्रथम नौ गण की धातुओं के बाद ही जुड़ सकता है। यथा—नेनीयते (बार-बार ले जाता है); देदीयते (खूब देता है)।

यङ् प्रत्यय धातु में दो प्रकार से लगाया जाता है। एक को जोड़ने से परस्मैपद में रूप चलते हैं और दूसरे को जोड़ने से आत्मनेपद में। परस्मैपद वाला रूप प्रायः वैदिक संस्कृत में ही मिलता है। अब आत्मनेपद के यङन्त रूपों का दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

धातु में सर्वप्रथम यङ् का य् जोड़ा जाता है। यथा—नी + यङ् = नीय। इसी प्रकार भूय, नन्द्य आदि। इस प्रकार बनी हुई धातु के आत्मनेपद में दसों लकारों में रूप चलते हैं। जैसे—कुछ धातु के यङन्तरूप प्रथम पु० ए० व० में दिए जाते हैं—

लकार	कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
लट्	बोबुध्यते	बोबुध्यते
लोट्	बोबुध्यताम्	बोबुध्यताम्

विधि	बोबुध्येत	बोबुध्येत
लङ्	अबोबुध्यत	अबोबुध्यत
लिट्	बोधाञ्चक्रे	बोधाञ्चक्रे
लुङ्	अबोबुधिष्ट	अबोबुधि
लुट्	बोबुधिता	बोबुधिता
लृट्	बोबुधिष्यते	बोबुधिष्यते
आशी०	बोबुधिषीष्ट	बोबुधिषीष्ट
लृङ्	अबोबुधिष्यत	अबोबुधिष्यत

(गम्) जङ्गम्यते—टेढ़ा-मेढ़ा चलता है।
(गै) जेगीयते—बार-बार गाता है।
(रुद्) रोरुद्यते—बार-बार रोता है।
(स्मृ) सास्मर्यते—बार-बार याद करता है।
(नृत्) नरीनृत्यते—बार-बार नाचता है।
(जप्) जञ्जप्यते—बार-बार जपता है।
(नी) नेनीयते—बार-बार ले जाता है।
(दश्) दन्दश्यते—अत्यन्त डसता है।
(जि) जेजीयते—बार-बार जीतता है।
(चल्) चञ्चल्यते—इधर-उधर चलता है।
(पच्) पापच्यते—बार-बार पकाता है।
(दृश्) दरीदृश्यते—बार-बार देखता है।
(दा) देदीयते—खूब देता है।
(कृष्) चरीकृष्यते—बार-बार खेती करता है।
(शी) शाशय्यते—बार-बार सोता है।
(सिच्) सेसिच्यते—बार-बार सींचता है।
(वृध्) वरीवृध्यते—बार-बार बढ़ता है।
(हन्) जङ्घन्यते—बार-बार मारता है।
(दह्) दन्दह्यते—खूब जलाता है।
(तप्) तातप्यते—खूब तपता है।
(घ्रा) जेघ्रीयते—बार-बार सूँघता है।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—उसने शत्रु को बार-बार जीता और क्षमा कर दिया। २—वह वेश्या खूब नाचती है। ३—यह शोकाग्नि मुझे बार-बार जलाती है। ४—शिशु माता की याद बार-बार करता है। ५—वन-गमन के समय सीता बार-बार रोती थीं। ६—ग्रीष्म ऋतु में सूर्य खूब तपता है। ७—वह मार्ग पर नहीं चलता है, अपितु इधर-उधर चलता है। ८—भक्त बार-बार भगवान् का गाना गाता है और साधू बार-बार माला जपता है। ९—किसान अपने खेतों को बार-बार जोतता है और खूब अन्न पैदा करता है जिससे हम सुखी रहते हैं। १०—रसोइया भोजन बार-बार पकाता है। ११—चन्द्रमा बार-बार बढ़ता है।

नाम-धातुएँ

जब किसी सुबन्त (संज्ञा आदि) के बाद कोई प्रत्यय जोड़कर उसे धातु बना लिया जाता है, तो उसे नामधातु कहते हैं। नाम धातुओं के विशेष-विशेष अर्थ होते हैं। यथा—

पुत्रीयति (पुत्र + क्यच्)—पुत्र की इच्छा करता है।

कृष्णाति (कृष्ण + क्विप्)—कृष्ण के समान आचरण करता है।

लोहितायते (लोहित + क्यच्)—लाल हो जाता है।

मुण्डयति (मुण्ड + णिच्)—मूँडता है।

नाम धातुओं के रूप समस्त लकारों में चल सकते हैं, परन्तु प्रायः इनका प्रयोग वर्तमान काल में ही होता है।

क्यच्—जिस वस्तु की इच्छा करे, उस वस्तु के सूचक शब्द के बाद क्यच् जोड़ा जाता है। यथा—

पुत्रम् आत्मनः इच्छति = पुत्रीयति (पुत्र + क्यच्)—अपने लिए पुत्र की इच्छा करता है। गङ्गाम् आत्मनः इच्छति = गङ्गीयति (गङ्गा + क्यच्)—अपने लिए गङ्गा की इच्छा करता है।

इसी प्रकार—

कवीयति (कवि + क्यच्)। विष्णूयति (विष्णु + क्यच्)। नदीयति (नदी + क्यच्)। वधूयति (वधू + क्यच्)। कर्त्रीयति (कर्तृ + क्यच्)।

गव्यति (गो + क्यच्)। नाव्यति (नौ + क्यच्)। राजीयति (राजन् + क्यच्)। इत्यादि।

क्यङ्—किसी सुबन्त के बाद 'जैसा वह करता है, वैसा ही यह करता है' इस अर्थ का बोध कराने के लिए क्यङ् (य) प्रत्यय जोड़कर नाम-धातु बनाते हैं। यथा—

कृष्ण इवाचरति = कृष्णायते = कृष्ण के समान आचरण करता है।

इसी प्रकार।

ओजायते—ओजस्वी के समान आचरण करता है।

गर्दभी अप्सरायते—गदही अप्सरा के समान आचरण करती है।

यशायते, यशस्यते—यशस्वी के समान आचरण करता है।

विद्वायते, विद्वस्यते—विद्वान् के समान आचरण करता है।

कुमारायते—कुमारीव आचरति।

युवायते—युवतीव आचरति।

पाचिकायते—पाचिकेव आचरति।

रोमन्थायते—रोमन्थं वर्तयति।

फेनायते—फेनमुद्वमतीति।

शब्दायते—शब्दं करोति।

सुखायते—सुखं वेदयते।

सप्तम सोपान

कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य एवं भाववाच्य

धातुओं के सकर्मक, अकर्मक भेद के कारण संस्कृत में मुख्यतः तीन वाच्य होते हैं :—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य।

कर्तृवाच्य में कर्ता के पुरुष एवं वचन के अनुसार ही क्रिया का पुरुष और वचन होता है। जैसे—रामः गच्छति। 'राम' प्रथम पुरुष एकवचन है और क्रिया 'गच्छति' भी प्रथम पुरुष एकवचन है। कर्तृवाच्य में कर्ता में प्रथमा और कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है, जैसा कि पीछे बताया गया है।

जहाँ सकर्मक धातुओं से कर्म में प्रत्यय होता है अर्थात् क्रिया के पुरुष और वचन कर्म के पुरुष और वचन के अनुकूल होते हैं, वहाँ कर्मवाच्य होता है। कर्मवाच्य में कर्ता में तृतीया, कर्म में प्रथमा और क्रिया कर्म के अनुसार होती है। यथा—

त्वं ग्रन्थं पठसि (कर्तृवाच्य)

त्वया ग्रन्थः पठ्यते (कर्मवाच्य)

'तू ग्रन्थ पढ़ता है' या 'तुझसे ग्रन्थ पढ़ा जाता है'—यहाँ 'कर्तृवाच्य' के कर्ता 'त्वम्' के स्थान पर 'त्वया' हो गया और 'ग्रन्थम्' द्वितीया एकवचन के स्थान पर ग्रन्थः प्रथमा एकवचन हो गया एवं तदनुकूल क्रिया 'पठ्यते' भी प्रथम पु० एकवचन में हो गई। इस वाच्य में क्रिया आत्मनेपद में ही होती है।

जहाँ क्रिया के अर्थ में प्रत्यय होता है, उसे भाववाच्य कहते हैं। अकर्मक धातुओं से भाववाच्य होता है। भाववाच्य में भी कर्मवाच्य की तरह क्रिया सदा आत्मनेपद में ही होती है। भाववाच्य के कर्ताकारक में तृतीया विभक्ति होती है, कर्म का अभाव रहता है एवं क्रिया सदा प्रथम पुरुष एकवचन में होती है। यथा—

त्वं भवसि (कर्तृवाच्य)

त्वया भूयते (भाववाच्य)

विशेष—कृत् प्रत्ययान्त भाववाचकों में क्रिया सदा नपुं० एकवचन होती है। यथा—अस्माभिः शयितव्यम् (हम सोवें या हमें सोना चाहिए)। पुनश्च जब सकर्मक धातु में कर्म का प्रयोग नहीं रहता, ऐसी अवस्था में वह भी होता है। यथा—

अहं गच्छामि (कर्तृवाच्य)।

मया (गम्यते) भाववाच्य)।

कर्मवाच्य तथा भाववाच्य बनाने के नियम :—

(१) कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में क्रिया सदा आत्मनेपद में ही होती है।

(२) कर्मवाच्य तथा भाववाच्य बनाने के लिए लट् आदि चारों लकारों में धातु में 'य' जोड़कर आत्मनेपद में रूप चलाया जाता है।

(३) यदि धातुओं के आदि में य, व, र आते हैं तो कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में य का इ, व का उ, र का ऋ हो जाता है। जैसे यज्ञ से इज्यते, वस् से उष्यते, स्रज् से सृज्यते। आदि

(४) यदि धातु के अन्त में 'आ' होता है तो कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में 'आ' का 'ई' हो जाता है। यथा पा से पीयते।

(५) जिन धातुओं के अन्त में ह्रस्व 'इ' या 'उ' होते हैं, कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में उनके ह्रस्व 'इ' और 'उ' का दीर्घ 'ई' और 'ऊ' हो जाता है। यथा 'जि' से जीयते, 'स्तु' से 'स्तूयते'। आदि

कर्मवाच्य 'गम्'

लट्				लोट्		
गम्यते	गम्येते	गम्यन्ते	प्र० पु०	गम्यताम्	गम्येताम्	गम्यन्ताम्
गम्यसे	गम्येथे	गम्यध्वे	म० पु०	गम्यस्व	गम्येथाम्	गम्यध्वम्
गम्ये	गम्यावहे	गम्यामहे	उ० पु०	गम्यै	गम्यावहै	गम्यामहै

लृट्				लङ्		
गंस्यते	गंस्येते	गंस्यन्ते	प्र० पु०	अगम्यत	अगम्येताम्	अगम्यन्त
गंस्यसे	गंस्येथे	गंस्यध्वे	म० पु०	अगम्यथाः	अगम्येथाम्	अगम्यध्वम्
गंस्ये	गंस्यावहे	गंस्यामहे	उ० पु०	अगम्ये	अगम्यावहि	अगम्यामहि

क्रिया दो प्रकार की होती है—अकर्मक और सकर्मक। जिस क्रिया के व्यापार और फल पृथक्-पृथक् रहें, वह सकर्मक और जिस क्रिया के व्यापार और फल दोनों एक में रहें, वह अकर्मक है। जैसे—'बालकः पुस्तकं पठति' इस वाक्य में 'पठति' क्रिया का व्यापार 'बालकः' में है और पढ़ने का फल (पढ़ा जाना) पुस्तक में है, अतएव 'पठ्' धातु सकर्मक हुई। 'शिशुः शेते' इस वाक्य में शयन की क्रिया और शयन रूपी फल दोनों लड़के ही में हैं, अत एव शीङ् धातु अकर्मक हुई।

कर्मवाच्य की कुछ क्रियाएं—	भाववाच्य की कुछ क्रियाएं—
आप् (प्राप्त करना)—आप्यते	आस् (बैठना)—आस्यते
कृ (करना)—क्रियते	जन् (पैदा होना)—जन्यते
क्री (खरीदना)—क्रीयते	नृत् (नाचना)—नृत्यते
खाद् (खाना)—खाद्यते	भू (होना)—भूयते
गम् (जाना)—गम्यते	मृ (मरना)—म्रियते
गै (गाना)—गीयते	युध् (युद्ध करना)—युध्यते
ज्ञा (जानना)—ज्ञायते	वस् (रहना)—उष्यतें
दृश् (देखना)—दृश्यते	शक् (सकना)—शक्यते
पच् (पकाना)—पच्यते	शी (सोना)—शय्यते
पा (पीना)—पीयते	स्था (ठहरना)—स्थीयते
भिद् (भेदना)—भिद्यते	स्वप् (सोना)—सुप्यते
मुच् (छोड़ना)—मुच्यते	भी (डरना)—भीयते

संस्कृत में अनुवाद करो

१—मैं तुझे देखता हूँ—तू मुझसे देखा जाता है। २—वह मुझे देखता है—मैं उससे देखा जाता हूँ। ३—हम उन्हें देखते हैं—वे मुझसे देखे जाते हैं। ४—तू उससे देखा गया। ५—विद्वान् सबसे आदर पाते हैं। ६—अच्छे लड़के अपने से बड़ों की सेवा करते हैं। ७—क्या उषा सो गई? ८—आप क्यों नहीं पढ़ते हैं? ९—क्या कुमारी सुशीला से यह पुस्तक नहीं पढ़ी जाती? १०—बालक क्यों रोता है? ११—ऐसा कहा जाता है, ऐसा सुना जाता है। १२—अब तो मुझसे नहीं ठहरा जाता। १३—तुमसे काम किया जाता है।

१४—काम से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से संमोह होता है। १५—मुझसे दूध नहीं पिया जाता है।

वाच्य-परिवर्तन

कर्तृवाच्य के वाक्य को कर्मवाच्य अथवा भाववाच्य तथा कर्मवाच्य अथवा भाववाच्य के वाक्य को कर्तृवाच्य में कर देना ही वाच्य परिवर्तन है। यथा—

बालकः व्याघ्रं पश्यति (कर्तृवाच्य)।

बालकेन व्याघ्रः दृश्यते (कर्मवाच्य)।

अश्वः धावति (कर्तृवाच्य)।

अश्वेन धाव्यते (भाववाच्य)।

यह कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य और भाववाच्य में परिवर्तन हुआ। इन्हीं वाक्यों को परिवर्तित कर देने से कर्मवाच्य और भाववाच्य के वाक्य कर्तृवाच्य हो जायेंगे।

वाच्य-परिवर्तन में समापिका क्रिया, उसका कर्ता, कर्ता के विशेषण, कर्म और कर्म के विशेषण ये ही सब परिवर्तित होते हैं। यथा—

चञ्चलः बालकः सुन्दरं चन्द्रं पश्यति (कर्तृवाच्य)।

चञ्चलेन बालकेन सुन्दरः चन्द्रः दृश्यते (कर्मवाच्य)।

वाच्य-परिवर्तन करते समय निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए—

(१) कर्ता और कर्म के विशेषण में वही विभक्ति और वचन होंगे जो कर्ता और कर्म में होंगे यथा—

सुशीलः बालकः स्वकीयं पाठं पठति (कर्तृवाच्य)।

सुशीलेन छात्रेण स्वकीयः पाठः पठ्यते (कर्मवाच्य)।

(२) सदा नपुं० एकवचन में रहने वाले शब्द किसी भी वाच्य में एकवचन ही रहते हैं, केवल वाच्य के अनुसार उनकी विभक्ति परिवर्तित हो जाती है। यथा—

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु (कर्तृवाच्य)—गुणियों में गुण पूजा के स्थान होते हैं।

गुणैः पूजास्थानेन (भूयते) गुणिषु (भाववाच्य)।

(३) वाक्य की क्रिया के काल और लकार में कोई परिवर्तन नहीं होता है। यथा—

सः पश्यति (कर्तृवाच्य, लट्)

तेन दृश्यते (कर्मवाच्य, लट्)

सः अपश्यत् (कर्तृवाच्य, लङ्)

तेन अदृश्यत (कर्मवाच्य, लङ्)

सः द्रक्ष्यति (कर्तृवाच्य, लृट्)

तेन द्रक्ष्यते (कर्मवाच्य लृट्)

(४) वाक्य में समापिका और असमापिका दोनों प्रकार की क्रियाओं का एक ही कर्म होने पर, कर्मवाच्य के द्वारा अनुवाद करने में समापिका क्रिया के ही साथ कर्म का सम्बन्ध होगा। यथा—

सः ग्रन्थं दृष्ट्वा पठति (कर्तृवाच्य)

तेन ग्रन्थः दृष्ट्वा पठ्यते (कर्मवाच्य)

विशेष—कृत् प्रत्ययान्त क्रियापद विशेषण की ही तरह व्यवहृत होते हैं, अत एव उनके द्वारा किसी वाक्य का अनुवाद करने में वाच्य के अनुसार कर्ता और कर्म में जो लिङ्ग, वचन और कारक हों, उन्हें ही उनमें रखना चाहिए। यथा—

सा कथितवती। तेन चन्द्रो दृष्टः। मया ग्रन्थः पठितव्यः। आदि।

द्विकर्मक धातु का वाच्यान्तर

द्विकर्मक धातुओं का कर्मवाच्य बनाने में दुह् से लेकर मुष् तक की प्रथम बारह धातुओं के गौण कर्म और अन्तिम चार नी, हृ, कृष्, वह् के प्रधान कर्म प्रथमा में रक्खे जाते हैं। दुह् से लेकर मुष् तक के प्रधान कर्म और नी, हृ, कृष्, वह् के गौण कर्म द्वितीया में रक्खे जाते हैं। यथा—

कर्तृवाच्य—	कर्मवाच्य—
स धेनुं पयो दोग्धि	तेन धेनुः पयः दुह्यते।
देवाः समुद्रं सुधां ममन्थुः	देवैः समुद्रः सुधां ममन्थे।
सोऽजां ग्रामं नयति, हरति, कर्षति, वहति वा	तेन अजा ग्रामं नीयते, ह्रियते, कृष्यते, उह्यते वा।

णिजन्त द्विकर्मक धातु का वाच्यान्तर :—

(बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मकाणां निजेच्छया) बुद्ध्यर्थक, भक्षार्थक और शब्द-कर्मक धातुओं के दोनों कर्मों में से किसी भी कर्म में प्रथमा किया जा सकता है।

यथा—

गुरुः छात्रं धर्मं बोधयति (कर्तृ०)

गुरुणा छात्रः धर्मं बोध्यते (कर्म०)

अथवा

गुरुणा छात्रं धर्मः बोध्यते (कर्म०)

अन्य णिजन्त द्विकर्मक धातुओं के कर्मवाच्य बनाने में प्रयोज्य कर्म में प्रथमा विभक्ति प्रयुक्त होती है। यथा—

रामः भृत्यं ग्रामं गमयति (कर्तृ०)

रामेण भृत्यः ग्रामं गम्यते (कर्म०)

कर्तृवाच्य में जिन धातुओं के प्रयोज्य कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है, कर्मवाच्य में उनके अणिजन्त अवस्था के कर्म में प्रथमा होती है। यथा—

श्रीकृष्णः पार्थेन जयद्रथं घातयति (कर्तृ०)

श्रीकृष्णेन पार्थेन जयद्रथः घात्यते (कर्म०)

हिन्दी में अनुवाद और वाच्यपरिवर्तन करो—

१—अर्थोष्मणा विरहितः पुरुष स एव। त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्॥ २—ततो मया पाटलिपुत्रं गत्वा श्रावितोऽमात्यसंदेशं वैतालिकः स्तनकलसः। ३—न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य। ४—परिक्षीणो यवानां प्रसृतये स्पृहयति। ५—निर्गुणेष्वपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः। ६—न हि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनि। ७—वयांसि किं न कुर्वन्ति चंच्वा स्वोदरपूरणम्। ८—किं करोमि क्व गच्छामि। ९—आत्मानं बहुमन्यामहे वयम्। १०—साहसकारिण्यस्ताः कुमार्यो याः स्वयं संदिशन्ति समुपसर्पति वा। ११—एष पृच्छामि। अहमप्येष कथयामि। १२—स मित्राय द्रोग्धुमिच्छति। १३—एतास्तपस्विकन्यका इत एवाभिवर्तन्ते। १४—जगतः पितरौ वन्दे। १५—किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम्।

अष्टम सोपान

'सोपसर्ग धातुएँ

जो अव्यय धातु अथवा धातु से बने हुए विशेषण, संज्ञा आदि शब्दों के पूर्व जोड़े जाते हैं, उनको उपसर्ग कहते हैं। उपसर्ग धातुओं के पूर्व ही जोड़े जाते हैं। उपसर्ग सहित धातुओं के प्रयोग से वाक्य में एक विशेष चमत्कार आ जाता है और भाषा परिष्कृत लगती है। पुनश्च उपसर्गों के द्वारा धातु का अर्थ कुछ परिवर्तित हो जाता है। यथा कृ धातु का अर्थ है 'करना' किन्तु इसके पूर्व उपसर्ग लगाकर अधिकार, अपकार, उपकार आदि शब्द बनते हैं। सिद्धान्त-कौमुदीकार के अनुसार धातुओं पर उपसर्गों का प्रभाव तीन प्रकार का होता है। (१) क्रिया का अर्थ बिल्कुल बदल जाता है, यथा—विजयः-पराजयः, अपकारः-उपकारः, आहारः—प्रहारः। (२) क्रिया के अर्थ में विशिष्टता आती है, यथा—गमनम्-अनुगमनम् आदि। (३) क्रिया के ही अर्थ का अनुवर्तन हो जाता है, यथा—वसति—अधिवसति।

धात्वर्थं बाधते कश्चित् कश्चित् तमनुवर्तते।
विशिनष्टि तमेवार्थमुपसर्गगतिस्त्रिधा ॥ १ ॥
उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहार—संहार—विहार-परिहारवत् ॥ २ ॥

उपसर्गों के जोड़ने से धातुओं के अर्थों में एक अन्य विलक्षणता यह आ जाती है कि कहीं-कहीं अकर्मक धातुएँ भी सकर्मक हो जाती हैं। यथा अकर्मक

---

१. प्रादि उपसर्ग और उनके मुख्य अर्थ—प्र (अधिक), परा (उल्टा, पीछे) अप (दूर), सम् (अच्छी तरह), अनु (पीछे), अव (नीचे, दूर), निस् (बिना, बाहर), निर् (बाहर), दुस् (कठिन), दुर् (बुरा), वि (बिना, अलग), आङ् (तक, कम), नि (नीचे), अधि (ऊपर), अपि (निकट), अति (बहुत), सु (सुंदर), उद् (ऊपर), अभि (ओर), प्रति (ओर, उल्टा), परि (चारों ओर), उप (निकट)।

'भू' का अर्थ 'होना' है किन्तु 'अनु' उपसर्ग के जुड़ने से इसका अर्थ 'अनुभव करना' सकर्मक हो जाता है। यथा—सः दुःखमनुभवति।

अर्थ् (माँगना) अभि + अर्थ् (इच्छा करना) यदि सा तापसकन्यका अभ्यर्थनीया।

अभि + अर्थ् (प्रार्थना करना) माम् अनभ्यर्थनीयमभ्यर्थयते।

प्र + अर्थ् (प्रार्थना करना) स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।

अस् (फेंकना)—अभि + अस् (अभ्यास करना) शिशुः पाठमभ्यस्यति।

निर् + अस् (हटाना) सः दुष्टं निरस्यति।

आप् (पाना)—

वि + आप् (फैलना) ईश्वरः त्रिलोकं व्याप्नोति।

सम् + आप् (पूरा होना) छात्रः कार्यं समाप्नोति।

आस् (बैठना)—

उप + आस् (पूजा करना) सः शिवमुपासते।

अधि + आस् (बैठना) भूपतिः सिंहासनमध्यास्ते।

अनु + आस् (सेवा करना) सखीभ्यामन्वास्यते।

इ (जाना)—

अव + इ (जानना) अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्तेः।

प्रति + इ (विश्वास करना) सः मयि प्रत्येति।

उत् + इ (उदय होना) सूर्यः उदेति।

आ + इ (आना) विपश्चित् एति।

अप + इ (दूर होना) शत्रुः अपैति।

उप + इ (प्राप्त होना) उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।

अभि + इ (सामने आना) भृत्यः स्वामिनमभ्येति।

अनु + इ (पीछे जाना) सेवकः स्वामिनमन्वेति।

अभि + उप—इ (प्राप्त होना) व्यतीतकालस्त्वहमभ्युपेतस्त्वामर्थिभावादिति मे विषादः।

ईक्ष् (देखना)—

अप + ईक्ष् (ख्याल करना) किमपेक्ष्य फलं पयोधरान्ध्वनतः प्रार्थयते मृगाधिपः।

उप + ईक्ष् (ख्याल न करना) सः कर्तव्यमुपेक्षते ।

परि + ईक्ष् (परीक्षा लेना) अग्नौ परीक्ष्यते स्वर्णम् ।

प्रति + ईक्ष् (प्रतीक्षा करना) क्षणं प्रतीक्षस्व ।

निः + ईक्ष् (देखना) माता साग्रहं शिशुं निरैक्षत ।

अव + ईक्ष् (आदर करना, ख्याल करना) त्रिदिवोत्सुकयाप्यवेक्ष्य माम् ।

अव + ईक्ष् (देख भाल करना) स कदाचिदवेक्षित प्रजः ।

कृ (करना)—

अनु + कृ (नकल करना) शिष्यः गुरुम् अनुकरोति ।

अधि + कृ (अधिकार करना) नृपः राज्यम् अधिकरोति ।

अप + कृ (बुराई करना) दुर्जनः सज्जनस्य अपकरोति ।

प्र + कृ (कथा करना) भक्तः रामायणं प्रकुरुते ।

उत् + आ + कृ (डराना) श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते ।

तिरस् + कृ (अनादर करना) नृपः चोरं तिरस्करोति ।

नमस् + कृ (नमस्कार करना) शिष्यः मुनित्रयं नमस्करोति ।

प्रति + कृ (उपाय करना) गुरुः शिष्यस्य उपाकरोत् ।

उप + कृ (सेवा करना) भक्तः कृष्णमुपकुरुते ।

उप + कृ (उपकार करना) गुरुः शिष्यस्य उपाकरोत् ।

वि + कृ (विकार पैदा करना) विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः ।

परि + (ष्) + कृ (सजाना) रथो हेमपरिष्कृतः ।

अलम् + कृ (शोभा बढ़ाना) कन्या शरीरम् अलंकरोति ।

आविः + कृ (प्रकट करना, खोज करना) प्राज्ञः धूम्रयानम् आविष्करोति ।

निर् + आ + कृ (हटाना) सज्जनः निराकरोति दोषान् ।

च्वि प्रत्ययान्त कृ—

१—अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ।

२—विरहकथा आकुलीकरोति मे हृदयम् ।

३—सफलीकृतं भवता मम जीवनं शुभागमनेन ।

४—कदा रामभद्रो वनमिदं सनाथी करिष्यति ।

५—स्थिरीकरोमि ते वासस्थानम् ।

गम् (जाना)—

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।

अनु + गम् (पीछा करना) पुत्रः मामनुगच्छति ।

अव + गम् (जाना) नावगच्छामि ते मतिम् ।

अधि + गम् (प्राप्त करना) अधिगच्छति महिमानं चन्द्रोऽपि निशापरिगृहीतः ।

अभि + उप + गम् (स्वीकार करना) अपीमं प्रस्तावमभ्युपगच्छसि ?

आ + गम् (आना) गुरुः आगच्छति ।

प्रति + गम् (लौटना) कदा माता प्रतिगमिष्यति ?

प्रति + आ + गम् (लौटना) आचार्यः गृहं प्रत्यागच्छति ।

निर् + गम् (बाहर जाना) स विद्यालयान्निर्गतः ।

सम् + गम् (मिलना) प्रयागे यमुना गङ्गां संगच्छति ।

ग्रह् (लेना)—

सम् + ग्रह् (संग्रह करना) धनिकः धनं संगृह्णाति ।

अनु + ग्रह् (अनुग्रह करना) धनिकः पुत्रम् अनुगृह्णाति ।

नि + ग्रह् (दण्ड देना) शीघ्रमयं निगृह्यताम् ।

वि + ग्रह् (लड़ाई करना) विगृह्यचक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः ।

प्रति + ग्रह् (स्वीकार करना)—

तथेति प्रति जग्राह प्रीतिमान्सपरिग्रहः ।
आदेशं देशकालज्ञः शिष्यः शासितुरानतः ॥

चर् (चलना)—

अति + चर् (विरुद्ध आचरण करना) पुत्राः पितॄनत्यचरन् ।

आ + चर् (व्यवहार करना) प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ।

अनु + चर् (पीछा करना) अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा ।

उत् + चर् (कहना) धर्ममुच्चरते ।

परि + चर् (सेवा करना) सेवकाः स्वामिनं परिचरन्ति ।

सम् + चर् (आना-जाना) सः रथेन संचरते ।

प्र + चर् (प्रचार होना)—

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ।
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥

उप + चर् (सेवा करना) यत्नादुपचर्यतां रुग्णः ।

चि (चुनना)—

उप + चि (बढ़ाना) अधोऽधः पश्यतः कस्य महिमा नोपचीयते ।

सम + चि (इकट्ठा करना) अयमपि तपः प्रत्यहं संचिनोति ।

प्र + चि (पुष्ट होना) तस्य गात्राणि प्रचीयन्ते ।

उप + चि (बढ़ाना) मांसाशिनो मांसमेवोपचिन्वन्ति ।

विनिस् + चि (निश्चय करना) विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःख-मिति वा ।

अप + चि (घटना) राजहंस तव सैव शुभ्रता चीयते न च न चापचीयते ।

ज्ञा (जानना)—

अनु + ज्ञा (आज्ञा देना) पिता पुत्रम् अनुजानाति ।

प्रति + ज्ञा (प्रतिज्ञा करना) स प्रतिजानीते यत्सदा सत्यं वक्ष्यति ।

अव + ज्ञा (अनादर करना) राजा चोरम् अवजानाति ।

अप + ज्ञा (अस्वीकार करना) शतमपजानीते ।

सम् + ज्ञा (आज्ञा करना) सहस्रं सञ्जानीते ।

तॄ (तैरना)—

अव + तॄ (उतरना) सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति ।

उत् + तॄ (पार करना) सः परीक्षामुदतरत् ।

वि + तॄ (देना) वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे ।

सम् + तॄ (तैरना) सः नद्यां सन्तरेत् ।

दिश् (देना, निर्देश करना आदि)—

निर् + दिश् (बताना) अभिलषितं स्थानं निर्दिशेत् ।

उप + दिश् (उपदेश देना) उपदिशति धर्मशास्त्रम् ।

आ + दिश् (आज्ञा देना) अध्यापकः छात्रान् आदिशति ।

सम् + दिश् (संदेश देना) सः किं संदिशति ?

दा (देना)—

आ + दा (लेना) सः विद्याम् आददाति ।

प्र + दा (देना) सः धनं प्रददाति ।

धा (धारण करना)—

अभि + धा (कहना) सः वाचम् अभिदधाति ।

अपि + धा (बन्द करना) सः कर्णौ अपिदधाति ।

नि + धा (नीचे रखना, नीचे करना, समाप्त करना) सलिलैर्निहितं रजः क्षितौ ।

नि + धा (विश्वास रखना) निदधे विजयाशंसां चापे सीतां च लक्ष्मणे ।

वि + धा (करना) सहसा विदधीत न क्रियाम् ।

परि + धा (पहनना) बालकः नवं वस्त्रं परिदधाति ।

अव + धा (ध्यान देना) श्यामः पठने नावधत्ते ।

नी (ले जाना)—

उप + नी (लाना) उपनयति मुनिकुमारकेभ्यः फलानि ।

उप + नी (समर्पण करना) स न्यस्तशस्त्रो हरये स्वदेहमुपानयत्पिण्डमिवा-मिषस्य ।

अभि + नी (अभिनय करना) सः कृष्णम् अभिनयति ।

आ + नी (लाना) मुनिः पूजार्थम् जलमानयति ।

अनु + नी (मनाना) सः कुपितं मित्रम् अनुनयति ।

परि + नी (व्याह करना) नलो दमयन्तीं परिणिनाय ।

अप + नी (हटाना) नृपः शत्रून् अपनयति ।

वि + अप + नी (दूर करना) सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीशः ।

पत् (गिरना)—

उत् + पत् (उड़ना, उठना) प्रायः कन्दुकपातेनोत्पतत्यार्यः पतन्नपि ।

आ + पत् (आ पड़ना) अहो, महद् व्यसनमापतितम् ।

प्र + नी + पत् (प्रणाम करना) सः पितरं प्रणिपतति ।

नि + पत् (गिरना, पड़ना) सिंहः शिशुरपि निपतति गजेषु ।

अनु + पत् (पीछा करना) मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः ।

वि + नि + पत् (पतित होना) विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ।

पद् (जाना)—

प्र + पद् (प्राप्त होना, आश्रय लेना, समीप आना) ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

उप + पद् (योग्य होना) नैतत् त्वय्युपपद्यते ।

प्रति + पद् (पालन करना) आचारं प्रतिपद्यस्व ।

उत् + पद् (उत्पन्न होना) दुग्धात् नवनीतम् उत्पद्यते ।

भू (होना)—

अनु + भू (अनुभव करना) अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णम् ।

प्र + भू (समर्थ होना) कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति ।

प्र + भू (उत्पन्न होना) हिमवतो गङ्गा प्रभवति ।

सम् + भू (पैदा होना) सम्भवामि युगे युगे ।

सम् + भू (मिलना) सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा ।

आविः + भू (प्रकट होना) आविर्भूते शशिनि तमो विलीयते ।

विश् (प्रवेश करना)—

उप + विश् (बैठना) बालकः आसनम् उपविशति ।

प्र + विश् (प्रवेश करना) मुनिः वनान्तरं प्रविशति ।

अभिनि + विश् (सम्मिलित होना, अध्ययन करना) छात्रः पाठम् अभिनिविशते ।

मन् (सोचना)—

अव + मन् (अनादर करना) अवमन्येत दुष्टम् ।

सम् + मन् (आदर करना) कच्चिदविनमिवानाय्यं काले संमन्यसेऽतिथिम् ।

अनु + मन् (आज्ञा देना, सलाह देना) राजन्यान्स्वपुरनिवृत्तयेऽनुमेने ।

मन्त्र् (सलाह करना)—

आ + मन्त्र् (विदा होना) चक्रवाकवधुके, आमन्त्रयस्व सहचरम् ।

आ + मन्त्र् (बुलाना) आमन्त्रयध्वं राष्ट्रेषु ब्राह्मणान् ।

नि + मन्त्र् (निमंत्रण देना) नृपान् निमन्त्रयस्व ।

रम् (क्रीडा करना)—

वि + रम् (हटना) सः पापात् विरमति ।

उप + रम् (लगाना) यत्रोपरमते चित्तम् ।

वद् (कहना)—

प्रति + वद् (उत्तर देना) तान् प्रत्यवादीदथ राघवोऽपि ।

अप् + वद् (निन्दा करना) दुष्टः सज्जनमपवदति ।

वि + वद् (झगड़ा करना) दुर्जनाः विवदन्ते ।

लप् (बोलना)—

वि + लप् (रोना) विललाप स वाष्पगद्गदम् ।

सम् + लप् (बातचीत करना) संलापितानां मधुरैः वचोभिः ।

प्र + लप् (बकवाद करना) खलाः सदा प्रलपन्ति ।

आ + लप् (बातचीत करना) गुरुः शिष्येण सह आलपति ।

वह् (ले जाना)—

आ + वह् (लाना, पैदा करना) एतावान् विभवो न मे सुखमावहति ।

अति + वह् (बिताना) कथमपि दिनान्यतिवाहयति ।

आ + वह् (धारण करना) धृतिमावह ।

उद् + वह् (व्याह करना) रामः जानकीमुदवहत् ।

निः + वह् (कार्य चलाना, पूरा करना) श्यामः कार्यमेतत् निर्वहति ।

वृत् (होना)—

अनु + वृत् (अनुसरण करना) प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते ।

आ + वृत् (वापस आना) अनिंद्या नन्दिनी नाम धेनुराववृते वनात् ।

परि + वृत् (घूमना) चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ।

नि + वृत् (विरत होना, रुकना आदि) प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ।

नि + वृत् (लौटना) न च निम्नादिव सलिलं निवर्तते मे ततो हृदयम् ।

प्र + वृत् (प्रवृत्त होना) प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः ।

वस् (रहना)—

नि + वस् (रहना) त्वं कुत्र निवससि ?

प्र + वस् (परदेश में रहना) विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः ।

उप + वस् (समीप रहना) वैश्यः नगरम् उपवसति ।

अधि + वस् (रहना) हरिः वैकुण्ठम् अधिवसति ।

सद् (जाना)—

प्र + सद् (प्रसन्न होना) क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति।

वि + सद् (दुःखी होना) मा विषीदत।

नि + सद् (बैठना) यल्लघु तदुत्प्लवते, यद् गुरु तन्निषीदति।

उप + सद् (सेवा में जाना) उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिं चिरं ततो व्याकरण-मधिजग्मिवान्।

आ + सद् (पाना) कूपमेकमाससाद।

प्रति + आ + सद् (अति समीप आना) प्रत्यासीदति गृहगमनकालः।

सृ (जाना)—

प्र + सृ (फैलना) यशस्तव प्रसरति।

अभि + सृ (प्रेमी के साथ जाना) इयं नायिका अभिसरति।

अनु + सृ (अनुसरण करना) ग्रामं यावदनुसरति।

अप + सृ (हटना) दूरमपसर।

स्था (ठहरना)—

उप + स्था (पूजा करना) आदित्यमुपतिष्ठते।

उप + स्था (जाना, समीप जाना, उपस्थित होना) गङ्गामुपतिष्ठते।

उप + स्था (मिलना) भोजनकाले उपतिष्ठते, कार्यकाले तु न लभ्यते।

उत् + स्था (उठना) उत्तिष्ठ गोविन्द।

अनु + स्था (करना) सः किमनुतिष्ठति।

आ + स्था (किसी सिद्धान्त की स्थापना) शब्दं नित्यमातिष्ठन्ते।

अधि + स्था (स्थित रहना) साधवः साधुतामधितिष्ठन्ति।

प्र + स्था (रवाना होना) हरिर्हरिप्रस्थमथ प्रतस्थे।

अव + स्था (ठहरना) अहं न अत्र अवस्थास्ये।

हृ (चुरा ले जाना)—

अनु + हृ (सदृश गुणों को धारण करना) स्वरेण मातरमनुहरन्ति।

अप + हृ (चुराना) चौरः धनम् अपहरति।

अप + हृ (दूर करना) अपहिये खलु परिश्रमजनितया निद्रया।

आ + हृ (लाना) वित्तस्य विद्यापरिसंख्यया मे कोटीश्चतस्रो दश चाहरेति।

उत् + हृ (उद्धार करना) उद्धरेदात्मनात्मानम् ।

उत् + आ + हृ (बोलना) सः वचनम् उदाहरति ।

अभ्यव + हृ (खाना) भक्तमभ्यवहरति ।

सं + हृ (रोकना) क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद् गिरः खे मरुतरां चरन्ति ।

सम् + हृ (हटाना) न हि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः ।

वि + हृ (क्रीड़ा करना, विहार करना) विहरति हरिरिह सरस वसन्ते ।

परि + हृ (छोड़ना) स्त्रीसन्निकर्षं परिहर्तुमिच्छन्नन्तर्दधे भूतपतिः सभूतः ।

क्रम् (चलना)—

अप + क्रम् (दूर हटना) नगरादपक्रान्तः ।

अति + क्रम् (गुजरना) यथा यथा यौवनमतिचक्राम ।

अति + क्रम् (उल्लंघन करना) कथमतिक्रान्तमगस्त्याश्रमपदम् ।

सम् + क्रम् (संक्रमण करना) कालो ह्ययं संक्रमितुं द्वितीयं सर्वोपकारक्षममाश्रमं ते ।

वि + क्रम् (चलना, कदम रखना, आगे बढ़ना आदि) विष्णुस्त्रेधा विचक्रमे ।

उप + क्रम् (आरम्भ करना) राज्ञस्तस्याज्ञया देवी वसिष्ठमुपचक्रमे ।

आ + क्रम् (नक्षत्र का उदित होना) आक्रमते सूर्यः ।

आ + क्रम् (आक्रमण करना) पौरस्त्यानेवमाक्रामंस्तांस्तांञ्जनपदाञ्जयी ।

निस्—क्रम् (बाहर जाना, निकलना , इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।

द्रु (पिघलना)—

द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ।

वि + द्रु (भागना) जलसङ्घात इवासि विद्रुतः ।

उप + द्रु (आक्रमण करना) प्राग्ज्योतिषमुपाद्रवत् ।

क्षिप् (फेंकना)—

किं कूर्मस्य भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येष यत् ।

उत् + क्षिप् (ऊपर फेंकना) बलिमाकाश उत्क्षिपेत् ।

आ + क्षिप् (अपमान करना) अरे रे राधागर्भभारभूत ! किमेवमाक्षिपसि ?

अव + क्षिप् (निन्दा करना) मदलेखामवक्षिप्य ।

बन्ध् (बाँधना)—

न हि चूडामणिः पादे प्रभवामीति बध्यते।

सम् + बन्ध् (मेल होना) सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुः।

निर् + बन्ध् (आग्रह करना, हठ करना, जोरदार माँग करना) निर्बन्ध-पृष्टः स जगाद सर्वम्।

उत् + बन्ध् (बाँधना) पादपे आत्मानमुद्बध्य व्यापादयामि।

रुध् (टाँकना)—

वि + रुध् (विरोध करना) विपरीतार्थधीर्यस्मात् विरुद्धमतिकृन्मतम्।

अनु + रुध् (आज्ञा मानना) अनुरुध्यस्व भगवती वसिष्ठस्यादेशम्।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—भरत सिंह के बच्चे को तिरस्कृत कर रहा है (परिभू)। २—बालक पलंग पर बैठा है (अध्यास्)। ३—गोविन्द सन्मार्ग पर चलता है (अभि-निविश्)। ४—राम पंचवटी में बहुत दिन रहे (अधिवस्)। ५—वह आदमी जैसा करता है, लोग उसका ही अनुसरण करते हैं (अनुवृत्)। ६—वह खाने के समय आ जाता है (उपस्था)। ७—पक्षी आकाश में उड़ते हैं (उत्पत्)। ८—पुत्र पिता को प्रणाम करता है (प्रणिपत्) ९—धैर्य धारण करो (आवह्)। १०—राम ने सीता से विवाह किया (परि + नी)। ११—उसने गुरु को मनाया (अनु + नी)। १२—घोड़े पिता की चाल से चलते हैं और गाय माँ की चाल से (अनु + हृ)। १३—निर्धन का तिरस्कार न करे (तिरस्कृ)। १४—इन्द्र का वज्र दैत्य-सेना का संहार करता है (संहृ)। १५—वह कानों को बन्द करता है (अपिधा)।

नवम सोपान

समास-प्रकरण

समास शब्द 'सम्' (भली प्रकार) उपसर्ग लगाकर 'अस्' धातु से बना है। इसका अर्थ है—संक्षेप या घटाना अर्थात् दो या दो से अधिक शब्दों को इस प्रकार साथ रख देना कि उनके आकार में कुछ कमी भी हो जाय और अर्थ भी पूरा-पूरा निकल जाय। जैसे नराणां पतिः नरपतिः। यहाँ नरपतिः का वही अर्थ है जो नराणां पतिः का, किन्तु दोनों को साथ कर देने से 'नराणाम्' शब्द के विभक्तिसूचक प्रत्यय (—आणाम्) का लोप हो गया और इस कारण शब्द नरपतिः, 'नराणां पतिः' से छोटा हो गया।

समास के लिए संस्कृत के वैयाकरणों ने सूक्ष्म से भी सूक्ष्म नियम नियत कर रखे हैं। ऐसी बात नहीं है कि जिस शब्द को चाहा, दूसरे शब्द के साथ जोड़ दिया।

समास के छः भेद हैं[1]।

(१) अव्ययीभाव (२) तत्पुरुष (३) कर्मधारय (तत्पुरुष का भेद) (४) द्विगु (तत्पुरुष का भेद) (५) बहुव्रीहि (६) द्वन्द्व।

अव्ययीभाव समास

अव्ययीभाव समास में प्रायः दो पद रहते हैं—पहला शब्द प्रायः अव्यय रहता है और दूसरा शब्द संज्ञा। दोनों मिलकर अव्यय हो जाते हैं। इस समास में समास का प्रथम शब्द प्रायः प्रधान रहता है। अव्ययीभाव शब्द के रूप नहीं चलते। इस समास में समस्त पद नपुंसक लिङ्ग में होते हैं।

अव्ययीभाव समास प्रायः निम्न अर्थों में होता है।

(१) किसी विभक्ति का अर्थ यथा—अधि हरि (हरौ इति) = अधि हरि (हरि के विषय में)

---

१. द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं गेहे मे नित्यमव्ययीभावः।
तत्पुरुषकर्मधारय येनाहं स्याम्बहुव्रीहिः॥

(२) समीप का अर्थ यथा—गङ्गायाः समीपमिति उपगङ्गम् (गंगा के समीप)।

(३) व्यृद्धि (नाश, दरिद्रता) का अर्थ यथा—यवनानां व्यृद्धिः इति दुर्यवनम्।

(४) समृद्धि का अर्थ यथा—मद्राणां समृद्धिः इति सुमद्रम् (मद्रास की समृद्धि)।

(५) अभाव का अर्थ यथा—मशकानाम् अभावः इति निर्मशकम् (मच्छरों से विमुक्ति अर्थात् एकान्त।

(६) अत्यय (नाश) का अर्थ यथा—हिमस्य अत्ययः इति अतिहिमम् (जाड़े की समाप्ति)।

(७) असम्प्रति (अनौचित्य) का अर्थ यथा—निद्रा सम्प्रति न युज्यते इति अतिनिद्रम् (निद्रा के अनुपयुक्त काल में)।

(८) शब्द-प्रादुर्भाव (शब्द का प्रकाश) का अर्थ यथा—हरिशब्दस्य प्रकाशः इति इतिहरि (हरिशब्द का उच्चारण)।

(९) पश्चात् का अर्थ यथा—विष्णोः पश्चात् इति अनुविष्णु (विष्णु के पीछे)।

(१०) यथा का भाव (योग्यता) यथा—रूपस्य योग्यम् इति अनुरूपम् (योग्य या उचित)।

यथा का भाव (अनतिक्रम) यथा—शक्तिमनतिक्रम्य इति यथाशक्ति (शक्ति के अनुसार)।

यथा का भाव (सादृश्य) यथा—हरेः सादृश्यम् इति सहरि (हरि के सदृश)।

(११) आनुपूर्व्य (क्रम) का अर्थ यथा—ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येण इति अनुज्येष्ठम् (ज्येष्ठ के अनुसार)।

(१२) यौगपद्य (एक साथ होना) का अर्थ यथा—चक्रेण युगपत् इति सचक्रम् (चक्र के साथ ही)।

(१३) सम्पत्ति का अर्थ यथा—क्षत्राणां सम्पत्तिः इति सक्षत्रम् (क्षत्रिय)।

(१४) साकल्य (सब को सम्मिलित कर लेना) का अर्थ यथा—तृणमपि अपरित्यज्य इति सतृणम् (सब कुछ)।

(१५) अन्त का अर्थ यथा—अग्नि ग्रन्थ पर्यन्तम् इति साग्नि (अग्नि-काण्डपर्यन्त)

अभ्यास

(अ) समस्त पद लिखो :—मक्षिकाणामभावः, चर्म्मणः समीपम्, देवता-मनतिक्रम्य, पीडानामभावः, भवस्य अत्ययः, पण्डितानां पश्चात्, रामस्य समीपम्, मक्षिकाम् अपरित्यज्य, गङ्गायाः अनु, रथस्य पश्चात्।

(ब) विग्रह बताओ :—यथाशक्ति, निर्विघ्नम्, सहरि, उपगिरम्, उपगङ्गम्, सचक्रम्, अनुरूपम्, प्रत्येकम्।

तत्पुरुष समास

(उत्तरपद प्रधानः तत्पुरुषः) तत्पुरुष समास में अन्तिम पद प्रधान होता है तथा समासान्त पद का लिङ्ग और वचन अन्तिम पद के अनुसार होता है। यथा—राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः।

इसमें पुरुष पद प्रधान है। अतएव इसी के अनुसार वाक्य में विशेषण, क्रिया आदि 'पुरुष' के ही अनुसार होंगे। तत्पुरुष समास के छः भेद हैं।

(१) द्वितीया तत्पुरुष—यह समास थोड़े ही शब्दों में होता है। इनमें मुख्य शब्द निम्नलिखित हैं :—

श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त एवं आपन्न शब्दों के योग में द्वितीया तत्पुरुष समास होता है। यथा—

कृष्णं श्रितः = कृष्णश्रितः (कृष्ण पर आश्रित)
दुःखमतीतः = दुःखातीतः (दुःख के पार गया हुआ)
अग्निं पतितः = अग्नि पतितः (अग्नि में गिरा हुआ)
प्रलयं गतः = प्रलयगतः (विनाश को प्राप्त)
मेघम् अत्यस्तः = मेघात्यस्तः (मेघ के पार पहुँचा हुआ)
जीवनं प्राप्तः = जीवन प्राप्तः (जीवन पाया हुआ)
कष्टम् आपन्नः = कष्टापन्नः (कष्ट पाया हुआ)

(२) तृतीया तत्पुरुष—इसमें पहला पद तृतीयान्त होता है। यह समास प्रायः निम्न दशाओं में होता है :—

(अ) जब तृतीयान्त कर्ता या करण कारक हो एवं साथ में कृदन्त शब्द भी हो। यथा—

हरिणा त्रातः = हरित्रातः। इस उदाहरण में "हरिणा" तृतीयान्त है एवं कर्ता भी है, और "त्रातः" कृदन्त है जो 'क्त' प्रत्यय से बना है।

नखैर्भिन्नः = नखभिन्नः। इस उदाहरण में "नखैः" तृतीयान्त एवं करण है, साथ ही "भिन्नः" कृदन्त है जो 'भिद्' धातु से "क्त" प्रत्यय जोड़कर बना है।

(ब) जब तृतीयान्त शब्द के साथ पूर्व, सदृश एवं सम शब्दों में से कोई आवे अथवा ऊन (कम), कलह, निपुण, श्लक्ष्ण (चिकना) शब्दों में से अथवा इसके समान अर्थ रखने वाले शब्दों में से कोई आवे, तब तृतीया तत्पुरुष समास होता है। यथा—

सुखेन युक्तः = सुखयुक्तः, मासेन पूर्वः = मासपूर्वः
मात्रा सदृशः = मातृसदृशः, पित्रा समः = पितृसमः
धान्येन विकलम् = धान्यविकलम् , वाचाकलहः = वाक्कलहः
आचारेण निपुणः = आचारनिपुणः आचारेण कुशलः = आचारकुशलः
कुहनेन श्लक्ष्णम् = कुहनश्लक्ष्णम्।

(३) चतुर्थी तत्पुरुष—इसमें पहला पद चतुर्थी विभक्ति में होता है। यथा—

ज्ञानाय अध्ययनम् = ज्ञानाध्ययनम्।
धनाय लोभः = धनलोभः।
कुण्डलाय हिरण्यम् = कुण्डलहिरण्यम्।
यूपाय दारु = यूपदारु।
भूतायबलिः = भूतबलिः।
कुम्भायमृत्तिका = कुम्भमृत्तिका।

(४) पञ्चमी तत्पुरुष—इसमें पूर्वपद पञ्चम्यन्त होता है। यथा—
चौरात् भयम् = चौरभयम्।
स्तेनाद्भीतः = स्तेनभीतः।
वृकाद्भीतिः = वृकभीतिः।
व्याघ्रात् भीतः = व्याघ्रभीतः।

(५) षष्ठी तत्पुरुषः—इसमें पूर्वपद षष्ठयन्त होता है। यथा—

राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः।

देवस्यपूजा = देवपूजा।

सुखस्य भोगः = सुखभोगः।

वृक्षाणां शाखा = वृक्षशाखा।

(६) सप्तमी तत्पुरुष—पूर्वपद में सप्तमी विभक्ति होने से सप्तमी तत्पुरुष होता है। यथा—

यह समास भी विशेष अवस्थाओं में होता है।

(अ) जब सप्तम्यन्त शब्द शौण्ड (चतुर), धूर्त, कितव (शठ), प्रवीण, संवीत (भूषित), अन्तर, अधि, पटु, पण्डित, कुशल, चपल, निपुण, सिद्ध, शुष्क और बन्ध इन शब्दों में से किसी के साथ आवे, तो सप्तमी तत्पुरुष समास होता है। यथा—

अक्षेषु शौण्डः = अक्षशौण्डः, प्रेम्णिधूर्तः = प्रेमधूर्तः,

द्यूते कितवः = द्यूतकितवः, सभायां पण्डितः = सभापण्डितः,

आतपे शुष्कः = आतपशुष्कः, चक्रे बन्धः = चक्रबन्धः।

(ब) जब ध्वाङ्क्ष (कौवा) शब्द अथवा इसके समान अर्थ रखने वाले शब्दों के साथ निन्दा करने के लिए सप्तमी आवे, तो सप्तमी तत्पुरुष समास होता है। यथा—

तीर्थेध्वाङ्क्षः = तीर्थध्वाङ्क्षः (तीर्थ का कौआ अर्थात् लोलुप)

उक्त भेदों के अतिरिक्त तत्पुरुष समास के तीन प्रकार के अन्य भेद हैं :—

उपपद तत्पुरुष, नञ् तत्पुरुष, अलुक् तत्पुरुष।

उपपद तत्पुरुष—जब तत्पुरुष समास में उत्तर पद किसी क्रिया का होता है, तब उपपद तत्पुरुष समास होता है। यथा—

कुम्भं करोति = कुम्भकारः।

धनं ददाति = धनदः।

धर्मं जानाति = धर्मज्ञः।

नञ् तत्पुरुष—जिस समास के आदि में निषेध वाचक 'न' का कोई रूप (अं अथवा अन्) होता है, उसे नञ् तत्पुरुष कहते हैं। यथा—

न ब्राह्मणः = अब्राह्मणः, न गजः = अगजः

न अब्जम् = अनब्जम् , न सत्यम् = असत्यम्

जिन शब्दों के आदि में कोई स्वर होता है, उनमें 'अन्' और अन्यों में 'अ' जुड़ता है।

अलुक् तत्पुरुष—जिनमें विभक्ति के प्रत्यय का लोप नहीं होता है, उनको 'अलुक्' समास की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। 'अलुक् तत्पुरुष' भी इसी का दूसरा नाम है।

अलुक् समास के कुछ उदाहरण निम्न हैं—

देवानां प्रियः, पश्यतोहरः (देखते-देखते चुराने वाला अर्थात् डाकू, सुनार आदि),

युधिष्ठिर (युद्ध में डटा रहने वाला), अन्तेवासी (शिष्य) आदि।

मध्यमपदलोपी तत्पुरुष समास—ऐसे तत्पुरुष समास, जिनमें से कोई ऐसा शब्द लुप्त हो गया हो जिसे साधारण दशा में रखना चाहिए था, 'मध्यमपद-लोपी' समास के नाम से कहे जाते हैं। यथा—

शाकप्रियः पार्थिवः = शाकपार्थिवः। आदि

प्रादि तत्पुरुष समास—जब तत्पुरुष समास में प्रथम शब्द प्र आदि उपसर्गों में से कोई हो, तब उसे प्रादि तत्पुरुष कहते हैं। यथा—

प्रगतः (बहुत विद्वान) आचार्यः = प्राचार्यः आदि।

अभ्यास

(अ) समस्त पद लिखो :—दुःखं श्रितः, विस्मयम् आपन्नः, शिवम् आश्रितः, शरणं प्राप्तः, सुखेन युक्तः, वृक्षात् पतितः, रजतस्य पत्रम् , जले मग्नः, कार्ये दक्षः, वाचि पटुः, तव आश्रितः, हवनाय सामग्री, धर्मात् भ्रष्टः, न्याये निपुणः, नरके पतितः, न अब्जम् , न ब्राह्मणः, ग्रामं गतः, मम सदृशः, आत्मनः दोषः, सुराणां पतिः, पाठायशाला, धनेन हीनः, लोभेन जितः।

(ब) विग्रह बताओ :—

गदायुद्धम् , विद्यारहितः, रक्षापुरुषः, तपोवनम् , सर्पभयम् , प्राचार्यः, असत्यम् , मनोविकारः, देवमन्दिरम् , मदशून्यः, कुङ्कमश्लक्ष्णम् , कष्टापन्नः,

मासपूर्वः, मेघात्यस्तः, अग्निपतितः, कुम्भकारः, कुम्भमृत्तिका, प्रेमधूर्तः, शाकपार्थिवः ।

कर्मधारय समास

विशेषण और विशेष्य का जो समास होता है, उसे कर्मधारय समास कहते हैं । नीचे कई प्रकार के कर्मधारय समास दिये जा रहे हैं ।

(अ) विशेषणपूर्वपद कर्मधारय—समास का जब प्रथम शब्द विशेषण हो एवं दूसरा विशेष्य हो, तब उस समास को 'विशेषणपूर्वपद कर्मधारय' की संज्ञा प्रदान की जाती है ।

यथा—कृष्णः सर्पः = कृष्णसर्पः ।

नीलम् उत्पलम् = नीलोत्पलम् ।

कुत्सितः पुरुषः = कुपुरुषः ।

कुत्सितम् अन्नम् = कदन्नम् ।

(ब) उपमानपूर्वपद कर्मधारय—इस समास में उपमान पहले आता है, अत एव इसको 'उपमानपूर्वपद कर्मधारय कहते हैं । यथा—

घनः इव श्यामः = घनश्यामः ।

(स) उपमानोत्तरपदकर्मधारय—यहाँ उपमान प्रथम शब्द न होकर द्वितीय शब्द होता है । यथा—मुखं कमलमिव = मुखकमलम् ।

पुरुषः व्याघ्रः इव = पुरुष व्याघ्रः ।

(द) विशेषणोभयपद कर्मधारय—दो समानाधिकरण विशेषणों के समास को विशेषणोभयपदकर्मधारय' कहते हैं । जैसे—कृष्णश्च श्वेतश्च कृष्णश्वेतः (अश्वः)

अभ्यास

(अ) समस्त पद लिखो :—नीलं कमलम् , पीतम् अम्बरम् , पुरुषो व्याघ्र इव, महान् चासौ देवः, नवनीतमिव कोमलम् , चन्द्रसदृशं मुखम् , मुखं पद्ममिव, चरणं कमलमिव, कुत्सितः छात्रः, स्नातश्च अनुलिप्तश्च ।

(ब) विग्रह बताओ :—

नरशार्दूलः, अधरपल्लवः, भूषितबालकः, महाफलम् , नीलगगनम् , चन्द्रमुखम् , चन्द्राह्लादकः, कापुरुषः, कुशिष्यः, कुपुत्रः, कमलमुखम् ।

द्विगु समास

यदि कर्मधारय समास के पूर्व कोई संख्यावाचक शब्द हो तो उसे द्विगु समास कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है :—

(अ) समाहार द्विगु (ब) तद्धितार्थ द्विगु (स) उत्तरपद द्विगु।

समाहार द्विगु—जब द्विगु समास का अर्थ समूहवाचक होता है और सम्पूर्ण पद नपुंसकलिङ्ग होता है अथवा स्त्रीलिङ्ग एकवचन होता है, तब द्विगु समास होता है। यथा—पञ्चानां पात्राणां समाहारः (पञ्चपात्रम्)

त्रयाणां लोकानां समाहारः (त्रिलोकी)

सप्तानां शतानां समाहारः (सप्तशती) आदि

तद्धितार्थ द्विगु—जब द्विगु समास तद्धितार्थ से युक्त रहता है, तब तद्धितार्थ द्विगु होता है। यथा—

पञ्चभिः गोभिः क्रीतः (पञ्चगुः)

पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः (पञ्चकपालः (पुरोडाशः))

उत्तरपद द्विगु—जब द्विगु समास में कोई उत्तरपद रहता है, तब उत्तर द्विगु होता है। यथा—त्रयाणां मासानां जातः (त्रिमास जातः) आदि।

अभ्यास

(अ) समस्त पद लिखोः—पञ्चानां गवानां समाहारः, त्रयाणां भुवनानां समाहारः, द्वाभ्यां मासाभ्यां जातः; पञ्चानां वटानां समाहारः, त्रयाणां फलानां समाहारः।

(ब) विग्रह बताओ :—

षट्पदी, पञ्चपात्रम् , चतुर्युगम् , पञ्चकपालः, पञ्चहस्तप्रमाणः, शताब्दी, त्रिफला।

बहुव्रीहि समास

जिस समास में अनेक प्रथमान्त पद गौण होकर किसी अन्य पद के विशेषण हो जाते हैं, उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं। इसका विग्रह करने पर 'यत्' शब्द के रूप (यस्य, येन, यस्मिन् आदि) लगते हैं। यथा—

पीतानि अम्बराणि यस्य सः (पीताम्बरः)—(पुरुष, जिसका वस्त्र पीला है) इस समास के निम्न भेद हैं :—

(१) समानाधिकरण बहुव्रीहि (२) व्यधिकरण बहुव्रीहि (३) तुल्य योग बहुव्रीहि (४) व्यतिहार बहुव्रीहि ।

समानाधिकरण बहुव्रीहि—इसके ६ भेद हैं ।

(१) द्वितीया समानाधिकरण बहुव्रीहि—प्राप्तं धनं यं स प्राप्त धनः (प्राप्त हो गया है धन जिसको, ऐसा पुरुष)

(२) तृतीया समानाधिकरण बहुव्रीहि—जितानि इन्द्रियाणि येन सः जितेन्द्रियः (जिसने इन्द्रियों को वश में कर रखा है)

(३) चतुर्थी समानाधिकरण बहुव्रीहि—उपहृतः पशुः यस्मै सः उपहृत पशुः (जिसके लिए पशु लाया गया है)

(४) पञ्चमी समानाधिकरण बहुव्रीहि—गृहीतं जलं यस्याः सा गृहीतजला (नदी) (गृहीत किया गया है जल जिससे, ऐसी नदी)

(५) षष्ठी समानाधिकरण बहुव्रीहि—यशः एव धनं यस्य सः यशोधनः (यश ही है धन जिसका, ऐसा राजा)

(६) सप्तमी समानाधिकरण बहुव्रीहि—वीराः पुरुषाः यस्मिन् सः वीर-पुरुषः (ग्रामः) (ऐसा गाँव जिसमें वीर पुरुष हों)

व्यधिकरण बहुव्रीहि—जिस बहुव्रीहि समास में दोनों पद अलग अलग विभक्ति में हों, उसे व्यधिकरण बहुव्रीहि कहते हैं । यथा—

चन्द्रः शेखरे यस्य सः चन्द्र शेखरः (चन्द्र है शिखर पर जिसके, वह)

तुल्य योग बहुव्रीहि—जब बहुव्रीहि समास में 'साथ' अर्थ वाले 'सह' का समास होता है, तब तुल्य बहुव्रीहि समास होता है । 'सह' का विकल्प से 'स' हो जाता है । यथा—पुत्रेण सह इति सपुत्रः (पुत्र के साथ है जो)

भार्यया सह इति सभार्यः (भार्या के साथ है जो)

व्यतिहार बहुव्रीहि—परस्पर युद्ध बोध होने से व्यतिहार (समान रूप) तृतीयान्त और सप्तम्यन्त पद में जो समास होता है, उसे व्यतिहार 'बहुव्रीहि' कहते हैं । यथा—केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तं केशाकेशि (बालों को पकड़कर आरम्भ हुआ युद्ध)

उपमा द्योतक 'इव' आदि के रहने पर भी बहुव्रीहि समास होता है। यथा—मृगस्य नयने इव नयने यस्याः सा मृगनयनी।

बहुव्रीहि समास में अन्य पद प्रधान रहता है।

अभ्यास

(अ) समस्त पद लिखो:—चक्रं पाणौ यस्य सः, न विद्यमानः पुत्रः यस्य सः, विमलम् उदकं यस्मिन् तद्, प्राप्तम् उदकं यं सः, उपहृतः पशुः यस्मै सः, कुशो हस्ने यस्य सः, दीर्घे अक्षिणी यस्य सः, धृता माला येन सः, निर्गतं भयं यस्मात् सः, शशी शेखरे यस्य सः, भग्नः मनोरथः यस्याः सा, स्थिरा मतिः यस्य तम्, दत्तं धनं यस्मै सः, पराजिताः रिपवो येन सः, महान् आशयो यस्य सः, बान्धवैः सहितः, अनुजेन सहितः, विनयेन सह विद्यमानम्, पुण्ये मतिः यस्य सः, धनुः पाणौ यस्य सः, कुम्भात् जन्म यस्य सः, दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तम्, चन्द्रस्य कान्तिः इव कान्तिः यस्य सः।

(ब) विग्रह बताओ:—धृतमालः, निर्मलजला, सबन्धुः, सपक्षः, दण्डादण्डि, चन्द्रप्रभा, स पुत्रः, वृकोदरः, दत्तचित्तः, दत्तधनः, निर्धनः, निर्बलः, महाबाहुः, लम्बकर्णः, चन्द्रकान्तिः, घटजन्मा।

(स) बहुव्रीहि समास के कितने भेद हैं? सोदाहरण लक्षण लिखो।

द्वन्द्व समास

जब दो या अधिक संज्ञाएँ इस प्रकार जुड़ी हों कि उनके बीच में 'च' (और) छिपा रहे, तो उनमें 'द्वन्द्व' समास होता है। द्वन्द्व समास के तीन भेद हैं—इतरेतर द्वन्द्व, समाहार द्वन्द्व, एकशेष द्वन्द्व।

इतरेतर द्वन्द्व—जब समास में आई हुई दोनों संज्ञाएँ अपना प्रधानत्व रखती हैं, तब इतरेतर द्वन्द्व समास होता है। यथा—रामश्च कृष्णश्च = रामकृष्णौ।

यदि दोनों मिलकर दो हों तो समास द्विवचन में रखा जाता है, यदि दो से अधिक हों तो बहुवचन में। यथा—

रामश्च लक्ष्मणश्च = रामलक्ष्मणौ।

रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च = रामलक्ष्मण भरताः।

द्वन्द्व समास का जो अन्तिम शब्द होता है, उसी के अनुसार पूरे समास का लिङ्ग होता है। यथा—मयूरी च कुक्कुटश्च = मयूरी कुक्कुटौ।

कुक्कुटश्च मयूरी च = कुक्कुट मयूर्यौ।

समाहार द्वन्द्व—(अ) जहाँ अनेक पदों का समाहार हो, वहाँ समाहार द्वन्द्व होता है। इस समास को सदा नपुंसकलिङ्ग एक वचन में रखते हैं। यथा—

आहारश्च निद्रा च भयञ्च = आहारनिद्राभयम्।

अहश्च दिवा च = अहर्दिवम्।

(ब) प्राणी के अङ्गवाचक शब्दों में समाहार द्वन्द्व ही होता है। यथा—

पाणी च पादौ च = पाणिपादम्। (हाथ और पैर)

(स) वाद्य के अङ्ग वाचक शब्दों में समाहार द्वन्द्व होता है। यथा—

मार्दङ्गिकाश्च पाणविकाश्च = मार्दङ्गिकपाणविकम् (मृदङ्ग और पणव बजाने वाले)

इसी प्रकार भेरी च पटहश्च = भेरीपटहम्।

(द) सेना के अङ्ग वाचक शब्दों में समाहार द्वन्द्व होता है। यथा—

अश्वारोहाश्च पदातयश्च = अश्वारोहपदाति (घुड़सवार और पैदल)।

इसी प्रकार हस्तिनश्च अश्वाश्च = हस्त्यश्वम्।

(य) अचेतन पदार्थवाचक शब्दों में समाहार द्वन्द्व होता है। यथा—

गोधूमश्च चणकश्च = गोधूमचणकम्।

(फ) जब नदियों के भिन्न लिङ्ग वाले नाम हों, तब समाहार द्वन्द्व होता है। यथा—

गङ्गा च शोणश्च = गङ्गाशोणम्।

(च) जब देशों के भिन्न लिङ्ग वाले नाम हों, तब समाहार द्वन्द्व होता है। यथा—

कुरवश्च कुरुक्षेत्रश्च = कुरुकुरुक्षेत्रम्।

(छ) क्षुद्र जीवों के नाम वाचक शब्दों में समाहार द्वन्द्व होता है। यथा—

यूका च लिक्षा च = यूकालिक्षम् (जुएँ और लीखें)

(ज) जब जन्म वैरी जीवों के नाम हों, तब समाहार द्वन्द्व होता है। यथा—

सर्पश्च नकुलश्च = सर्पनकुलम्।

एकशेष द्वन्द्व—एक विभक्ति वाले समस्त अनेक समानाकार पदों में जहाँ एक ही पद शेष रह जाता है, वहाँ एक शेष द्वन्द्व होता है। कहने का तात्पर्य है कि जब दो या अधिक शब्दों में से द्वन्द्व समास में केवल एक ही शेष रह जाए, तब उसको एकशेष द्वन्द्व कहते हैं। यथा—

माता च पिता च = पितरौ।

श्वश्रूश्च श्वशुरश्च = श्वशुरौ।

यदि समास में पुंल्लिङ्ग एवं स्त्रीलिङ्ग दोनों शब्द मिले हों, तो समास पुंल्लिङ्ग में रहेगा।

द्वन्द्व समास करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

(१) इकारान्त शब्दों का प्रयोग पहले करना चाहिए। यथा—हरिश्च हरश्च = हरिहरौ।

(२) स्वर से आरम्भ होने वाले और 'अ' में अन्त होने वाले शब्दों को पहले रखना चाहिए।

यथा—इन्द्रश्च अग्निश्च = इन्द्राग्नी।

(३) वर्णों तथा भाइयों के नाम ज्येष्ठ के क्रम से आने चाहिएँ। यथा—

ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च = ब्राह्मणक्षत्रियौ।

रामश्च लक्ष्मणश्च = रामलक्ष्मणौ।

(४) जिस शब्द में कम अक्षर हों, उसका प्रयोग पहले करना चाहिए। यथा—

शिवश्च केशवश्च = शिवकेशवौ।

अभ्यास

(अ) समस्त पद लिखोः—दिनञ्च यामिनी च, माता च पिता च, हस्तौ च पादौ च, ब्राह्मणश्च ब्राह्मणी च, पुत्रश्च दुहिता च, रामश्च लक्ष्मणश्च, हस्तिनश्च अश्वाश्च, कन्दश्च, मूलश्च, फ़लञ्च, देवाश्च असुराश्च, पाणी च पादौ च, अहश्च रात्रिश्च, स्त्री च पुमान् च, अहयश्च नकुलश्च।

(ब) विग्रह बताओः—

भेरी पटहम्, मथुरापाटलिपुत्रम्, हंसौ, तौ, हस्त्यश्वम्, भ्रातरौ, युधिष्ठिरार्जुनौ, मूषकमार्जारम्, रथिकाश्वरोहम्, रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाः।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—मैं संसार के माता-पिता पार्वती और शंकर की वन्दना करता हूँ। २—मैं पीछे-पीछे आ रहा हूँ। ३—प्रत्येक पात्र की देख-भाल करो। ४—भरत मेरे वंश की प्रतिष्ठा है। ५—समय ज्ञात करने के लिए मुझसे कहा गया है। ६—मैं तुम्हारे अधीन हूँ। ७—दिन लगभग ढल गया है। ८—राजाओं को उत्सव प्रिय होता है, वीरों को युद्ध और बच्चों को मनोरञ्जन। ९—नायिका बाएँ हाथ पर मुँह रक्खे बैठी है। १०—अतिथि का अनादर न करो, अनुदार मत हो। ११—अद्भुतगुणों से युक्त नल पृथ्वी का स्वामी था। १२—कामदेव का धनुष पुष्पों का है। १३—गोविन्द की पत्नी रूपवती है। १४—मंत्री को पद से च्युत कर दिया गया है। १५—मित्र, इस हँसी की बात को सत्य न समझना। १६—महात्मा हाथ में लाल कमल लेकर सप्तर्षियों की पूजा करता है। १७—रघुवंश के नाथ राम की वन्दना करता हूँ। १८—उसका यश तीनों भुवनों में व्याप्त है। १९—इस लड़के ने मेरे साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया है। २०—सब कुछ भाग्य के अधीन है।

दशम सोपान

कृदन्त—कर्तृवाच्य और भाववाचक

धातुओं के अन्त में जोड़कर जिस प्रत्यय के द्वारा संज्ञा, विशेषण और अव्यय के वाचक शब्दों को बनाया जाता है उन्हें कृत् प्रत्यय कहते हैं और उनके योग से बने शब्दों को कृदन्त कहते हैं। उदाहरणार्थ कृ धातु से तृच् प्रत्यय जोड़कर 'कर्तृ' शब्द बना। यहाँ तृच् कृत् प्रत्यय है और 'कर्तृ' कृदन्त है। इन कर्तृवाचक कृदन्तों के कर्म का इनके साथ समास भी होता है। जैसे—

(असमस्त) शास्त्राणां ज्ञातारः (शास्त्रों के जानने वाले)

(समस्त) शास्त्रज्ञातारः (शास्त्रों के जानने वाले)

(ण्वुल् तृचौ) 'वाला' के अर्थ में कर्तृवाच्य में धातुओं से ण्वुल् (अक) और तृच् (तृ) ये दो प्रत्यय होते हैं। जैसे कृ धातु का अर्थ है 'करना'। 'करने वाला' यह भाव प्रकट करने के लिए कृ + तृच् = कृ + तृ = कर्तृ शब्द हुआ। इसी प्रकार पठ् से पठितृ, दा से दातृ, पच् से पक्तृ, हृ से हर्तृ आदि। तृच् प्रत्यय करने पर धातु के अन्तिम स्वर को और उपधा लघु स्वर को गुण होता है। तृच् प्रत्यय से बने हुए शब्दों के रूप 'कर्तृ' शब्द की तरह होते हैं।

इसी प्रकार ण्वुल् प्रत्यय भी 'वाला' के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे कृ धातु से सूचित अर्थ हुआ—करना। 'करने वाला' यह भाव प्रकट करने के लिए कृ + ण्वुल् = कृ + अक = कारक शब्द बना। इसी प्रकार पठ् धातु से पाठक, दा धातु से दायक, पच् धातु से पाचक, हृ धातु से हारक इत्यादि। 'ण्वुल्' के 'ण्' और 'ल्' की इत्संज्ञा होती है और अन्तिम स्वर तथा उपधा अकार की वृद्धि होती है। प्रत्यय के 'वु' को अक और 'यु' को अन् होता है। यथा—नी + ण्वुल् = नायक। यहाँ 'नी' के 'ईकार' की वृद्धि 'ऐ' होती है और 'वु' का अक होता है। तदनन्तर सन्धि के नियमानुसार 'ऐ' का आय होता है। इसी प्रकार श्रु + ण्वुल् = श्रावकः, मुच् + ण्वुल् = मोचकः आदि।

(अण् प्रत्यय) यदि कर्मवाचक शब्दों के योग में धातु आवे तो कर्तृवाचक अण् (अ) प्रत्यय होता है। यथा—

कुम्भं करोति इति कुम्भकारः (कुम्भ + कृ + अण्)।

भारं हरति इति भारहारः (भार + हृ + अण्)। अण् प्रत्यय से ण् का लोप होता है तथा उपधा अकार की और धातु के अन्तिम स्वर की वृद्धि होती है।

(अच् प्रत्यय) पच् आदि धातुओं के अनन्तर 'अच्' प्रत्यय लगाकर कर्तृ-बोधक शब्द बनाये जाते हैं। इसका 'अ' शेष रहता है। जैसे—

पच् + अच् = पचः (पचतीति पचः)।

वद् + अच् = वदः (वदतीति वदः)।

चल् + अच् = चलः (चलतीति चलः)।

कर्म के योग में 'अर्ह्' धातु के अनन्तर 'अच्' प्रत्यय लगता है। यथा पूजा + अर्ह् + अच् = पूजार्हः (पूजामर्हतीति पूजार्हः (ब्राह्मणः) इकारान्त धातुओं में अच् जोड़ा जाता है। जैसे—

जि + अच् = जयः।

नि + अच् = नयः।

भि + अच् = भयम्।

(नन्दि ग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः) नन्दि आदि (नन्दि, वाशि, मदि, दूषि, साधि, वर्धि, शोभि, रोचि के णिजन्त रूप) धातुओं के बाद ल्यु (अन), ग्रहि आदि (ग्राही, उत्साही, मन्त्री, अयाची, अवादी, विषयी, अपराधी इत्यादि, के बाद णिनि (इन्); प्रत्यय होता है। यथा—

नन्द + ल्यु = नन्दनः (नन्दयतीति नन्दनः); इसी प्रकार वाशनः, मदनः, दूषणः, साधनः, वर्धनः, शोभनः, रोचनः।

गृह्णातीति ग्राही (ग्रह + इन् = ग्राहिन्)।

अपने आपको समझने के अर्थ में णिनि और खश् (अ) दोनों प्रत्यय होता है। यथा—पण्डितमानी, पण्डितमंन्यः।

(स्त्रियां क्तिन्) स्त्रीलिङ्ग भाववाचक शब्द धातुओं में क्तिन् (ति) लगाकर बनाये जाते हैं। यथा—कृतिः, चितिः, धृतिः, स्तुतिः, मतिः, शान्तिः, मुक्तिः, नतिः, रतिः, भुक्तिः, स्थितिः, नीतिः, दृष्टिः, प्रीतिः इत्यादि।

(घञ् प्रत्यय) जब कोई धात्वर्थ सिद्ध हो जाय, तब 'भाव' कहलाता है। भाव का अर्थ बतलाने के लिए धातु के अनन्तर घञ् प्रत्यय जोड़ा जाता है। जैसे पच् + घञ् = पाकः।

लभ् + घञ् = लाभः।

इसी प्रकार हासः, भागः, त्यागः, नाशः, पाठः, लेखः, उपकारः इत्यादि। यदि कोई ञ अथवा ण वाला प्रत्यय लगता है तो धातु की उपधा के 'अ' की वृद्धि हो जाती है। इसीलिए पकार आदि के अकार की वृद्धि हुई है। पुनश्च घित् (घ जिसका इत् हो) तथा ण्यत् प्रत्यय के पूर्व च् तथा ज् का क्रमशः क् तथा ग् हो जाता है। इसीलिए उपर्युक्त पच् धातु में च् के स्थान में क् हुआ है। घञ् प्रत्ययान्त शब्द पुँल्लिङ्ग ही होते हैं।

भाववाच्य में धातुओं से 'अ' प्रत्यय भी होता है, जैसे भवः, मदः, कोपः, जपः, तोषः, हर्षः इत्यादि।

(ल्युट् प्रत्यय) भाववाच्य में धातुओं से ल्युट् प्रत्यय होता है। 'ल्युट्' से 'ल्' और 'ट्' का लोप हो जाता है। ल्युट् प्रत्यय से बने हुए शब्द नपुंसक होते हैं।

ल्युट् प्रत्यय होने से धातु के अन्तिम स्वर और उपधा लघु स्वर को गुण होता है। यथा—भुज् + ल्युट् = भोजनम्।

'यु' का अन होता है। यथा गम् + ल्युट् = गमनम्, दा + ल्युट् = दानम्। करण और अधिकरण में भी ल्युट् प्रत्यय होता है। यथा—

नीयते अनेन इति नयनम्—नी + ल्युट्।

क्रियते अनेन इति करणम्—कृ + ल्युट्।

यायते अनेन इति यानम्—या + ल्युट्।

अधिकरणे यथा—

शेते अस्मिन् इति शयनम्—शी + ल्युट्।

भाववाचक शब्द बनाने के लिए धातुओं के आगे क्त (त) भी जोड़ा जाता है। (खल् प्रत्यय) कठिन (अतएव दुःखात्मक) और सरल (अतएव सुखात्मक) के भाव का बोध कराने के लिए धातुओं के बाद खल् प्रत्यय प्रयुक्त होता है। इस भाव को प्रकट करने के लिए ईषत्, दुर् और सु धातु के पूर्व जोड़े जाते हैं। यथा—

सुखेन कर्तुं योग्यः सुकरः (सुकृ + खल्)। सुकरः कटो भवता (चटाई आप से आसानी से बन सकती है)।

ईषत्करः—ईषत्करः कटो भवता (चटाई आप से थोड़े में ही अनायास ही) बन सकती है।

दुःखेन कर्तुं योग्यः, दुष्करः—(दुष्कृ + खल्)—दुष्करः कटो भवता (चटाई आपसे मुश्किल से बन सकती है)।

(वसेस्तव्यत्कर्तरि णिच्च) कृत्यान्त शब्द भाववाच्य एवं कर्मवाच्य में ही प्रयुक्त होते हैं किन्तु कुछ शब्द विकल्प से कर्तृवाच्य में प्रयुक्त होते हैं। यथा—

वस् + तव्य = वास्तव्यः (वसने वाला)
भू + यत् = भव्यः (होने वाला)
गै + यत् = गेयः (गाने वाला)
जन् + यत् = जन्यः (पैदा करने वाला) इत्यादि।

(सनाशंसभिक्ष उः) सन्नन्त, आशंस् और भिक्ष् धातु से 'उ' होता है। यथा—लिप्सुः, पिपासुः, आशंसुः, भिक्षुः इत्यादि।

दृश् धातु के पूर्व यदि त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्, किम्, अन्य तथा समान शब्दों में से कोई रहे और दृश् धातु का अर्थ देखना न हो तो उसके बाद कञ् (अ) प्रत्यय जुड़ता है तथा विकल्प से क्विन् भी जुड़ता है। यथा—

तद् + दृश + कञ् = तादृशः (वैसा)।

इसी प्रकार त्यादृशः, यादृशः, एतादृशः, सदृशः, अन्यादृशः।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—गरजने वाले बरसते नहीं, बरसने वाले गरजते नहीं। २—खाने वाले को भोजन दो। ३—देने वाला दान दे रहा है। ४—बोलने वाला सत्य कह रहा है। ५—धर्म को जानने वाला धर्म की बात कहता है। ६—बालक परिश्रम से कार्य करता है। ७—पैदा होने वाले की मृत्यु निश्चित है। ८—वह मथुरा का निवासी है। ९—ज्ञानी को ज्ञान की बातें अच्छी लगती हैं। १०—दुःखी भगवान् को याद करता है। ११—कर्म का फल देने वाला ईश्वर है। १२—इस शहर में एक ही गवैया है। १३—इस घर में कमाने वाला कोई नहीं है। १४—हमारे गाँव के कुम्हार चतुर हैं।

वर्तमानकालिक कृदन्त

शतृ और शानच्

इन दोनों प्रत्ययों का अर्थ 'हुआ' है। शतृ एवं शानच् से बने हुए शब्द अँग्रेजी के उन शब्दों के तुल्य हैं जो क्रिया में ing लगा कर बनाये जाते हैं। परस्मैपदी धातुओं के साथ शतृ एवं आत्मनेपदी धातुओं के साथ 'शानच्' प्रत्यय प्रयुक्त होता है। शतृ एवं शानच् प्रत्यय का वास्तविक स्वरूप क्रमशः अत् (अन्) एवं आन अथवा मान है। प्रायः शत्रन्त शब्दों के रूप पुंल्लिङ्ग में धावत् के समान, स्त्रीलिङ्ग में नदी के समान और नपुंसकलिङ्ग में जगत् के समान चलते हैं। शानच् प्रत्ययान्त शब्दों के रूप पुल्लिङ्ग में राम के समान, स्त्रीलिङ्ग में लता के समान और नपुंसकलिङ्ग में फल के समान होते हैं।

परस्मैपदी धातुओं से शतृ प्रत्ययान्त शब्द

धातु	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
अनु + इष्	अन्विष्यन्	अन्विष्यन्ती	अन्विष्यत्
भू	भवन्	भवन्ती	भवत्
अद्	अदन्	अदती	अदत्
दा	ददन्	ददती	ददत्
दीव्य्	दीव्यन्	दीव्यन्ती	दीव्यत्
श्रु	शृण्वन्	शृण्वती	शृण्वत्
तुद्	तुदन्	तुदती, तुदन्ती	तुदत्
छिन्द्	छिन्दन्	छिन्दन्ती	छिन्दत्
कृ	कुर्वन्	कुर्वती	कुर्वत्
क्री	कीणन्	क्रीणती	क्रीणत्
चिन्त्	चिन्तयन्	चिन्तयती	चिन्तयत्
अस्	सन्	सती	सत्
आप्	आप्नुवन्	आप्नुवती	आप्नुवत्
इष्	इच्छन्	इच्छन्ती, इच्छती	इच्छत्
कथ्	कथयन्	कथयन्ती	कथयत्

धातु	पुँल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
कुप्	कुप्यन्	कुप्यन्ती	कुप्यत्
कूज्	कूजन्	कूजन्ती	कूजत्
कृत्	कृन्तन्	कृन्तन्ती	कृन्तत्
क्रुध्	क्रुध्यन्	क्रुध्यन्ती	क्रुध्यत्
क्रीड्	क्रीडन्	क्रीडन्ती	क्रीडत्
गण्	गणयन्	गणयन्ती	गणयत्
गर्ज्	गर्जन्	गर्जन्ती	गर्जत्
गुञ्ज्	गुञ्जन्	गुञ्जन्ती	गुञ्जत्
गै	गायन्	गायन्ती	गायत्
ग्रन्थ्	ग्रथ्नन्	ग्रथ्नन्ती	ग्रथ्नत्
घ्रा	जिघ्रन्	जिघ्रन्ती	जिघ्रत्
चल्	चलन्	चलन्ती	चलत्
चर्	चरन्	चरन्ती	चरत्
जागृ	जाग्रन्	जाग्रती	जाग्रत्
जीव्	जीवन्	जीवन्ती	जीवत्
तुष्	तुष्यन्	तुष्यन्ती	तुष्यत्
तॄ	तरन्	तरन्ती	तरत्
दंश्	दशन्	दशन्ती	दशत्
दह्	दहन्	दहन्ती	दहत्
दृश्	पश्यन्	पश्यन्ती	पश्यत्
निन्द्	निन्दन्	निन्दन्ती	निन्दत्
नृत्	नृत्यन्	नृत्यन्ती	नृत्यत्
पठ्	पठन्	पठन्ती	पठत्
पत्	पतन्	पतन्ती	पतत्
पा	पिबन्	पिबन्ती	पिबत्
पूज्	पूजयन्	पूजयन्ती	पूजयत्
प्रच्छ्	पृच्छन्	पृच्छन्ती	पृच्छत्

धातु	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
बन्ध्	बध्नन्	बध्नती	बध्नत्
मथ्	मन्थन्	मन्थती	मन्थत्
रच्	रचयन्	रचयन्ती	रचयत्
आ + रुह्	आरोहन्	आरोहन्ती	आरोहत्
लप्	लपन्	लपन्ती	लपत्
लिख्	लिखन्	लिखन्ती	लिखत्
वस्	वसन्	वसन्ती	वसत्
शक्	शक्नुवन्	शक्नुवती	शक्नुवत्
शास्	शासन्	शासती	शासत्
सृज्	सृजन्	सृजन्ती, सृजती	सृजत्
स्था	तिष्ठन्	तिष्ठन्ती	तिष्ठत्
स्पृश्	स्पृशन्	स्पृशती, स्पृशन्ती	स्पृशत्
स्वप्	स्वपन्	स्वपती	स्वपत्
स्मर्	स्मरन्	स्मरन्ती	स्मरत्
हृ	हरन्	हरन्ती	हरत्

आत्मनेपदी धातुओं के शानच् प्रत्यय के रूप

धातु	पुँल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुँसकलिङ्ग
ईक्ष्	ईक्षमाणः	ईक्षमाणा	ईक्षमाणम्
कम्प्	कम्पमानः	कम्पमाना	कम्पमानम्
कृ	कुर्वाणः	कुर्वाणा	कुर्वाणम्
जन्	जायमानः	जायमाना	जायमानम्
त्वर्	त्वरमाणः	त्वरमाणा	त्वरमाणम्
त्रै	त्रायमाणः	त्रायमाणा	त्रायमाणम्
दय्	दयमानः	दयमाना	दयमानम्
दीप्	दीप्यमानः	दीप्यमाना	दीप्यमानम्
नी	नयमानः	नयमाना	नयमानम्
मन्	मन्यमानः	मन्यमाना	मन्यमानम्

धातु	पुँल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
यत्	यतमानः	यतमाना	यतमानम्
युध्	युध्यमानः	युध्यमाना	युध्यमानम्
लभ्	लभमानः	लभमाना	लभमानम्
वन्द्	वन्दमानः	वन्दमाना	वन्दमानम्
वृत्	वर्तमानः	वर्तमाना	वर्तमानम्
वृध्	वर्धमानः	वर्धमाना	वर्धमानम्
व्यथ्	व्यथमानः	व्यथमाना	व्यथमानम्
शी	शयानः	शयाना	शयानम्
सेव्	सेवमानः	सेवमाना	सेवमानम्
सह्	सहमानः	सहमाना	सहमानम्

उभयपदी धातुओं के शतृ एवं शानच् प्रत्यय के रूप

(केवल पुँल्लिङ्ग रूप)

धातु	शतृ	शानच्
कृ	कुर्वन्	कुर्वाणः
छिद्	छिन्दन्	छिन्दानः
ज्ञा	जानन्	जानानः
धाव	धावन्	धावमानः
नी	नयन्	नयमानः
पच्	पचन्	पचमानः
ब्रू	ब्रुवन्	ब्रुवाणः
लिह्	लिहन्	लिहानः
वह्	वहन्	वहमानः
दुह्	दुहन्	दुहानः
तन्	तन्वन्	तन्वानः
धा	दधन्	दधानः

उभयपदी धातुओं से शतृ और शानच्

धातु	नपुं॰	पुं॰	स्त्री॰
कृ	कुर्वत्	कुर्वन्	कुर्वती (कुर्वाणः)
छिद्	छिन्दत्	छिन्दन्	छिन्दती (छिन्दानः)
ज्ञा	जानत्	जानन्	जानती (जानानः)
नी	नयत्	नयन्	नयन्ती (नयमानः)
ब्रू	ब्रुवत्	ब्रुवन्	ब्रुवती (ब्रुवाणः)
लिह्	लिहत्	लिहन्	लिहती (लिहानः)
धा	दधत्	दधन्	दधती (दधानः)

शतृ प्रत्यय—एक दृष्टि में

(१) वर्तमानकालिक कृदन्त शब्दों का संस्कृत में अनुवाद शतृ प्रत्यय से होता है। शतृ प्रत्यय का प्रयोग केवल परस्मैपदी धातुओं में ही किया जाता है। अंग्रेजी की क्रिया में ing लगाकर जिन अर्थों का बोध कराया जाता है, उन्हीं अर्थों की प्रतीति संस्कृत में शतृ प्रत्यय से होती है।

(२) शतृ प्रत्यय से बने हुए शब्द विशेषण की तरह प्रयुक्त होते हैं। अतः इनके लिङ्ग, वचन और विभक्ति अपने विशेष्यों की ही तरह होते हैं। शतृ प्रत्यय से बने हुए शब्दों के रूप पुँ॰ में पठत् के समान, स्त्रीलिङ्ग में नदी के समान और नपुँ॰ में जगत् के समान होते हैं।

(३) शतृ प्रत्यय के तीनों लिङ्गों में निम्न प्रकार से रूप बनाना चाहिए—

जिस धातु का पुं॰ में शतृ प्रत्यय का रूप बनाना हो, उसके लट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में रूप चलाकर 'ति' को हटा देना चाहिए। बाद में जो रूप बने, वही शतृ प्रत्यय प्रथमा विभक्ति का एकवचन होगा। मान लीजिए कि हमें पठ् धातु का पुं॰ में शतृ प्रत्यय का रूप जानना है—इसके लट् प्रथम पुरुष बहुवचन में रूप बनता है—पठन्ति। 'ति' हटाने पर शेष बचेगा 'पठन्' यही 'पठ्' धातु के शतृ प्रत्यय का एकवचन हुआ।

(४) शतृ प्रत्ययान्त के स्त्रीलिङ्ग के रूप बनाने के लिए लट् लकार प्रथम पुरुष ब॰ व॰ की 'इ' को 'ई' में परिवर्तन कर देना चाहिए। यथा 'पठन्ति' को 'पठन्ती' कर दीजिए। अदादिगणीय (अदती, रुदती आदि), स्वादिगणीय

(चिन्वती आदि); क्र्यादिगणीय (क्रीणती आदि); तनादिगणीय (कुर्वती, तन्वती आदि) और जुहोत्यादिगणीय (ददती आदि) धातुओं में 'ई' जोड़कर 'न' हटाने से स्त्रीलिङ्ग रूप बनते हैं।

(५) शतृ प्रत्ययान्त शब्दों के नपुं० प्रथमा एकवचन रूप बनाने के लिए 'अन्ति' प्रत्ययान्त पदों में से 'न' तथा 'इ' की मात्रा हटाई जाती है। इस प्रकार यह रूप हलन्त तकारान्त बनता है। जैसे 'पश्यन्ति' रूप में 'पश्यन्ति' से 'न' और 'इ' की मात्रा हटा देने से शब्द बनेगा—पश्यत्। यही नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति का एकवचन का रूप होगा।

शानच् प्रत्यय—एक दृष्टि में

(१) शतृ प्रत्यय की तरह यह प्रत्यय भी धातु से जुड़कर धातु द्वारा सूचित वर्तमानकाल की क्रिया का बोध विशेषण रूप से कराता है।

(२) शानच् प्रत्यय आत्मनेपदी धातुओं के अनन्तर जोड़ा जाता है। इसका 'आन' या 'मान' शेष रह जाता है।

(३) शानच् प्रत्ययान्त शब्द के रूप अपने विशेष्य के लिङ्ग के अनुसार पुँल्लिङ्ग में 'राम' की तरह, स्त्रीलिङ्ग में 'रमा' की तरह, नपुंसकलिङ्ग में 'फल' की तरह चलते हैं।

शतृ और शानच् प्रत्ययों से निम्नलिखित अर्थों की प्रतीति होती है—

(१) अविच्छिन्नता—गच्छन् बालकः पतति।

(२) क्षमता—इन्द्रियाणि जयन् योगी भवति।

(३) योग्यता—हरिं भजन् मुच्यते।

(४) स्वभाव अथवा मनोवृत्ति—भोगं भुञ्जानः जीवः संसारे भ्रमति।

(५) अवस्था अथवा कोई मापदण्ड—शयानाः भुञ्जते यवनाः।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—बालक ने हँसते हुए, दण्ड को ग्रहण किया।

२—बालक गाता हुआ अपने विद्यालय गया।

३—वह पानी पीता हुआ उद्यान गया।

४—तुम दोनों वन की शोभा को देखते हुए नदी गये।

५—धन पाता हुआ कौन अभिमानी नहीं हो जाता है।
६—काम करता हुआ वह सम्मान प्राप्त करता है।
७—गुरु की कृपा पाता हुआ छात्र प्रसन्न होता है।
८—तुम रोते हुए और खाते हुए कहाँ जा रहे हो?
९—मरता हुआ आदमी दुःखी होता है।
१०—बालक मार्ग पूछता हुआ विद्यालय गया।
११—विद्या प्राप्त करता हुआ वह सुखी है।
१२—मनुष्य खाता हुआ कभी न पढ़े।
१३—सोते हुए बच्चे को मत जगाओ।
१४—विलाप करती हुई सीता को देखकर (दृष्ट्वा) लक्ष्मण बहुत दुःखी हुए।
१५—उसने हँसते हुए कहा।
१६—पापी धर्म को देखते हुए पाप करता है।
१७—गाँव को जाते हुए किसान ने एक शेर को मार दिया।
१८—उसने काँपती हुई स्त्री को देखा।
१९—इतना कहते-कहते कृष्ण का गला भर आया।
२०—दुर्जन जानता हुआ भी बुरा कर्म करता है।
२१—मोहन हँसता हुआ गुरु से क्या पूछता है?
२२—चोर भागता हुआ वहाँ पहुँचा।

भूतकालिक कृदन्त

क्त और क्तवतु

ये दोनों प्रत्यय भूतकाल के अर्थ में प्रयुक्त किये जाते हैं। क्त सकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य में होता है। क्त का 'त' शेष रह जाता है। अकर्मक धातुओं में भी 'क्त' प्रत्यय जुड़ता है किन्तु वह विशेषण नहीं होता है और उससे बना हुआ शब्द नपुंसकलिङ्ग में प्रयुक्त होता है। गत्यर्थक, अकर्मक, श्लिष् (आलिङ्गन करना), शीङ् (सोना), स्था (ठहरना), आस् (बैठना), वस् (रहना), जन् (पैदा होना), रुह् (उपजना), जॄ (जीर्ण होना) के साथ क्त प्रत्यय कर्तृ-

वाच्य में भी होता है। कभी-कभी क्त प्रत्यय नपुंसकलिङ्ग की भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए प्रयुक्त होता है। क्त प्रत्यय के योग से बनने वाले शब्दों के रूप पुंल्लिङ्ग में 'राम' की तरह, स्त्रीलिङ्ग में 'रमा' की तरह और नपुंसकलिङ्ग में 'फल' की तरह होते हैं।

क्तवतु का प्रयोग 'क्त' प्रत्यय के ही अर्थ में कर्तृवाच्य में होता है। 'क्तवतु' का 'तवत्' शेष रह जाता है। 'क्त' प्रत्यय के योग से बने हुए शब्दों के अन्त में 'वत्' जोड़ देने से 'क्तवतु' प्रत्ययान्त शब्द बनते हैं तथा उसके रूप पुंल्लिङ्ग में श्रीमत् के समान, स्त्रीलिङ्ग में नदी के समान और नपुंसकलिङ्ग में जगत् के समान होते हैं। यहाँ केवल पुंल्लिङ्ग के ही रूप दिये जा रहे हैं।

धातु	क्त	क्तवतु
अद्	जग्धः	जग्धवान्
अधि + इ	अधीतः	अधीतवान्
अनु + इष्	अन्विष्टः	अन्विष्टवान्
अर्च्	अर्चितः	अर्चितवान्
अस्	भूतः	भूतवान्
आ + कर्ण	आकर्णितः	आकर्णितवान्
आ + कृ + णिच्	आकारितः	आकारितवान्
आ + दिश्	आदिष्टः	आदिष्टवान्
आ + नी	आनीतः	आनीतवान्
आप्	आप्तः	आप्तवान्
आरभ्	आरब्धः	आरब्धवान्
आ + रुह्	आरूढः	आरूढवान्
आलम्ब्	आलम्बितः	आलम्बितवान्
इ	इतः	इतवान्
इष्	इष्टः	इष्टवान्
ईक्ष्	ईक्षितः	ईक्षितवान्
उत् + डी	उड्डीनः	उड्डीनवान्
उप + दिश्	उपदिष्टः	उपदिष्टवान्
उप + विश्	उपविष्टः	उपविष्टवान्

धातु	क्त	क्तवतु
कथ्	कथितः	कथितवान्
कम्	कान्तः	कान्तवान्
कम्प्	कम्पितः	कम्पितवान्
कुप्	कुपितः	कुपितवान्
कूर्द्	कूर्दितः	कूर्दितवान्
कृ	कृतः	कृतवान्
कृष्	कृष्टः	कृष्टवान्
कॄ	कीर्णः	कीर्णवान्
क्रन्द्	क्रन्दितः	क्रन्दितवान्
क्रम्	क्रान्तः	क्रान्तवान्
क्री	क्रीतः	क्रीतवान्
क्रीड्	क्रीडितः	क्रीडितवान्
क्षि	क्षीणः	क्षीणवान्
क्षिप्	क्षिप्तः	क्षिप्तवान्
क्षुभ्	क्षुब्धः	क्षुब्धवान्
खन्	खातः	खातवान्
खाद्	खादितः	खादितवान्
गण्	गणितः	गणितवान्
गम्	गतः	गतवान्
गर्ज्	गर्जितः	गर्जितवान्
गै	गीतः	गीतवान्
गॄ	गीर्णः	गीर्णवान्
ग्रस्	ग्रस्तः	ग्रस्तवान्
ग्रह्	गृहीतः	गृहीतवान्
घ्रा	घ्राणः, घ्रातः	घ्रातवान्
चर्	चरितः	चरितवान्
चल्	चलितः	चलितवान्

धातु	क्त	क्तवतु
चिन्त्	चिन्तितः	चिन्तितवान्
चि	चितः	चितवान्
चेष्ट्	चेष्टितः	चेष्टितवान्
छिद्	छिन्नः	छिन्नवान्
जन्	जातः	जातवान्
जि	जितः	जितवान्
जीव्	जीवितः	जीवितवान्
ज्वल्	ज्वलितः	ज्वलितवान्
जॄ	जीर्णः	जीर्णवान्
तन्	ततः	ततवान्
तप्	तप्तः	तप्तवान्
तुष्	तुष्टः	तुष्टवान्
त्रै	त्रातः	त्रातवान्
त्यज्	त्यक्तः	त्यक्तवान्
तृप्	तृप्तः	तृप्तवान्
तॄ	तीर्णः	तीर्णवान्
दम्	दान्तः	दान्तवान्
दय्	दयितः	दयितवान्
दह्	दग्धः	दग्धवान्
दुह्	दुग्धः	दुग्धवान्
दा	दत्तः	दत्तवान्
दिव्	द्यूनः, द्यूतः	द्यूतवान्
दीप्	दीप्तः	दीप्तवान्
द्युत्	द्योतितः	द्योतितवान्
दंश्	दष्टः	दष्टवान्
धा	हितः	हितवान्
ध्मा	ध्मातः	ध्मातवान्
ध्वंस्	ध्वस्तः	ध्वस्तवान्

धातु	क्त	क्तवतु
धृ	धृतः	धृतवान्
नम्	नतः	नतवान्
निन्द्	निन्दितः	निन्दितवान्
नी	नीतः	नीतवान्
पठ्	पठितः	पठितवान्
पत्	पतितः	पतितवान्
पद्	पन्नः	पन्नवान्
पलाय्	पलायितः	पलायितवान्
पा	पीतः	पीतवान्
पाल्	पालितः	पालितवान्
पुष्	पुष्टः	पुष्टवान्
पूज्	पूजितः	पूजितवान्
प्रच्छ्	पृष्टः	पृष्टवान्
प्रेर्	प्रेरितः	प्रेरितवान्
बन्ध्	बद्धः	बद्धवान्
बुध्	बुद्धः	बुद्धवान्
ब्रू	उक्तः	उक्तवान्
भक्ष्	भक्षितः	भक्षितवान्
भज्	भक्तः	भक्तवान्
भञ्ज्	भग्नः	भग्नवान्
भाष्	भाषितः	भाषितवान्
भिद्	भिन्नः	भिन्नवान्
भी	भीतः	भीतवान्
भुज्	भुक्तः	भुक्तवान्
भू	भूतः	भूतवान्
भृ	भृतः	भृतवान्
मद्	मत्तः	मत्तवान्
मन्	मतः	मतवान्

धातु	क्त	क्तवतु
मा	मितः	मितवान्
मुद्	मुदितः	मुदितवान्
मुह्	मुग्धः, मूढः	मुग्धवान्
यज्	इष्टः	इष्टवान्
यत्	यतितः	यतितवान्
यम्	यतः	यतवान्
युज्	युक्तः	युक्तवान्
रक्ष्	रक्षितः	रक्षितवान्
रम्	रतः	रतवान्
रच्	रचितः	रचितवान्
रञ्ज्	रक्तः	रक्तवान्
रुच्	रुचितः	रुचितवान्
रुह्	रूढः	रूढवान्
लभ्	लब्धः	लब्धवान्
लुभ्	लुब्धः	लुब्धवान्
लिख्	लिखितः	लिखितवान्
लिह्	लीढः	लीढवान्
वच्	उक्तः	उक्तवान्
वद्	उदितः	उदितवान्
वस्	उषितः	उषितवान्
वप्	उप्तः	उप्तवान्
वह्	ऊढः	ऊढवान्
व्यथ्	व्यथितः	व्यथितवान्
व्यध्	विद्धः	विद्धवान्
विद्	विदितः	विदितवान्
वृध्	वृद्धः	वृद्धवान्
वृत्	वृत्तः	वृत्तवान्
वन्द्	वन्दितः	वन्दितवान्

धातु	क्त	क्तवतु
शक्	शक्तः	शक्तवान्
शम्	शान्तः	शान्तवान्
शंक्	शंकितः	शंकितवान्
शास्	शिष्टः	शिष्टवान्
शिक्ष्	शिक्षितः	शिक्षितवान्
श्लिष्	श्लिष्टः	श्लिष्टवान्
शी	शयितः	शयितवान्
शुभ्	शोभितः	शोभितवान्
शुष्	शुष्कः	शुष्कवान्
श्रि	श्रितः	श्रितवान्
श्रु	श्रुतः	श्रुतवान्
सह्	सोढः	सोढवान्
सृज्	सृष्टः	सृष्टवान्
स्पृश्	स्पृष्टः	स्पृष्टवान्
स्मि	स्मितः	स्मितवान्
स्मृ	स्मृतः	स्मृतवान्
सिच्	सिक्तः	सिक्तवान्
स्था	स्थितः	स्थितवान्
हन्	हतः	हतवान्
हा	हीनः	हीनवान्
ह्वे	हूतः	हूतवान्
हस्	हसितः	हसितवान्
हृ	हृतः	हृतवान्

क्त प्रत्यय—एक दृष्टि में

(१) क्त प्रत्यय का प्रयोग भूतकाल अथवा समाप्ति का अर्थ बताने के लिए किया जाता है। 'क्त' समाप्ति बोधक प्रत्यय है। 'क' का त शेष रह जाता है।

(२) क्त प्रत्यय सकर्मक धातुओं से कर्म में होता है। इसमें कर्ता को तृतीया विभक्ति में रखा जाता है और कर्म को द्वितीया विभक्ति में। यथा—मया पुस्तकानि पठितानि।

(३) क्त प्रत्यय के रूप तीनों लिङ्गों में और सातों विभक्तियों में विशेष्य के अनुसार होते हैं। यदि विशेष्य पुँ० हुआ तो पुं०, स्त्री० हुआ तो स्त्री० और नपुं० हुआ तो नपुं० होता है। 'क्त' प्रत्यय के योग से बनने वाले शब्दों के रूप पुं० में बालक की तरह, स्त्री० में रमा की तरह और नपुं० में फल की तरह चलते हैं।

(४) क्त प्रत्यय सदैव सकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य में होता है किन्तु गत्यर्थक, अकर्मक श्लिष् (आलिङ्गन करना), शीङ् (सोना), स्था (ठहरना), आस् (बैठना), वस् (रहना), जन् (पैदा होना), जॄ (जीर्ण होना) के साथ क्त प्रत्यय कर्मवाच्य में भी होता है। पुनश्च मन, बुध्, पूज् अर्थ वाले धातुओं में क्त प्रत्यय वर्तमान काल के अर्थ में भी लगाया जाता है।

क्तवतु प्रत्यय—एक दृष्टि में

(१) क्तवतु प्रत्यय का भी प्रयोग भूतकाल अथवा समाप्ति का अर्थ बताने के लिए किया जाता है। 'क्तवतु' का 'तवत्' शेष रह जाता है।

(२) इसका प्रयोग कर्तृवाच्य में होता है। क्तवतु प्रत्यय से कर्ता में प्रथमा और कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। क्रिया के लिङ्ग और वचन कर्ता के अनुसार होते हैं। यथा—

बालकः हसितवान् (लड़का हँसा)

बालकाः हसितवन्तः (लड़के हँसे)

बालिका हसितवती (लड़की हँसी)

इस प्रत्यय से बने हुए शब्दों का प्रयोग भी विशेषण की तरह होता है। ऐसी अवस्था में इनके लिङ्ग, वचन और विभक्ति अपने विशेष्य की तरह होते हैं। क्तवतु में अन्त होने वाले शब्द पु० में भगवत् के समान, नपुं० में जगत् के समान और स्त्री० में नदी के समान होते हैं।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—राजा ने चोर को दण्ड दिया।

२—गुरु ने छात्र को वेद समझाया।

३—मैंने पुस्तक पढ़ी।
४—मैंने दो घोड़े देखे।
५—राजा ने मुनि को अन्न दिया।
६—मुझे आनन्द मिला।
७—बालक ने बालिका की पुस्तक चुरा ली।
८—तुमने यह घोड़ा कब खरीदा?
९—मैंने पानी पी लिया है।
१०—बालक बन को चला गया।
११—वह विद्यालय नहीं गया।
१२—उसने गुरु की सेवा की और फल प्राप्त किया।
१३—कुत्ते ने बिल्ली को पकड़ा।
१४—साँड़ पानी पीने के लिए तालाब पर गया।
१५—तुलसीदास जी ने रामचरितमानस लिखा।
१६—शिशु बिछौने पर सो गया।
१७—सिंह जंगल में छोड़ा गया।
१८—राम ने रावण का वध किया।
१९—भीम ने दुःशासन को गदा से मारा।
२०—साँप को देखकर शिशु बहुत डरा।

भविष्यत्कालिक कृदन्त

संस्कृत में भविष्यकाल (Future Participle) के दो प्रत्यय हैं—वही शतृ एवं शानच् जो वर्तमान के हैं। अन्तर केवल इतना है कि ये प्रत्यय भविष्य (लृट्) के अन्यपुरुष के बहुवचन में जो धातु रूप होता है, उसके बाद जोड़े जाते हैं। उदाहरणार्थ भविष्यन्ति के 'भविष्य' में अत् और मान् जोड़कर 'भविष्यत्' और 'भविष्यमाण' रूप बनते हैं। इसीलिए भविष्यकालिक कृदन्तों को कभी-कभी 'ष्यत्' और 'ष्यमाण' भी कहते हैं। यथा—

१—वनं गमिष्यन् रामः पितरौ प्राणमत् (बन जाने वाले राम ने अपने माता-पिता को प्रणाम किया)।

२—कन्दुकेन क्रीडिष्यन्तः बालकाः क्रीडाक्षेत्रं गच्छन्ति (गेंद खेलने वाले लड़के खेल के मैदान में जा रहे हैं)।

	परस्मै०	आत्मने०	कर्मवाच्य
पठ्	पठिष्यत्		पठिष्यमाण
दा	दास्यत्	दास्यमान	दास्यमान
गम्	गमिष्यत्		गमिष्यमाण
चुर्	चोरयिष्यत्	चोरयिष्यमाण	चोरयिष्यमाण
कृ	करिष्यत्	करिष्यमाण	करिष्यमाण
पिपठिष्	पिपठिष्यत्	पिपठिष्यमाण	पिपठिष्यमाण
नी	नेष्यत्	नेष्यमाण	नेष्यमाण

इन प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के रूप भी तीनों-तीनों लिङ्गों में अलग-अलग संज्ञाओं के समान चलते हैं।

पूर्वकालिक कृदन्त

क्त्वा और ल्यप्

पूर्वकालिक कृदन्त (कर या करके) का अनुवाद संस्कृत में 'क्त्वा' और 'ल्यप्' प्रत्ययान्त शब्दों से किया जाता है। क्त्वा प्रत्यय समस्त धातुओं में जोड़ा जा सकता है किन्तु ल्यप् प्रत्यय केवल उन्हीं धातुओं में जुड़ता है जिनके पहले उपसर्ग लगा रहता है। क्त्वा प्रत्यय का 'त्वा' और 'ल्यप्' का केवल 'य' शेष रहता है।

धातु	क्त्वा	धातु	क्त्वा
अद्	जग्ध्वा	दृश्	दृष्ट्वा
अस्	भूत्वा	धा	हित्वा
आप्	आप्त्वा	धृ	धृत्वा
आस्	आसित्वा	ध्यै	ध्यात्वा
अधि + इ	अधीत्य	नम्	नत्वा
इ	इत्वा	नश्	नशित्वा
इष्	एषित्वा, इष्ट्वा	नी	नीत्वा
ईक्ष्	ईक्षित्वा	नृत्	नर्त्तित्वा
कथ्	कथयित्वा	पच्	पक्त्वा

धातु	क्त्वा	धातु	क्त्वा
कृ	कृत्वा	पठ्	पठित्वा
क्री	क्रीत्वा	पा	पीत्वा
गम्	गत्वा	प्रच्छ्	पृष्ट्वा
ग्रह्	गृहीत्वा	ब्रू	उक्त्वा
चुर्	चोरयित्वा	भक्ष्	भक्षयित्वा
चिन्त्	चिन्तयित्वा	भी	भीत्वा
जन्	जनित्वा	भुज्	भुक्त्वा
ज्ञा	ज्ञात्वा	भू	भूत्वा
जि	जित्वा	भृ	भृत्वा
तन्	तनित्वा	भ्रम्	भ्रमित्वा, भ्रान्त्वा
तुद्	तुत्त्वा	मन्	मत्वा
त्यज्	त्यक्त्वा	मुच्	मुक्त्वा
तॄ	तीर्त्वा	मुष्	मुषित्वा, मोषित्वा
दा	दत्वा	मृ	मृत्वा
दिव्	देवित्वा	याच्	याचित्वा
दुह्	दुग्ध्वा	युज्	युक्त्वा
युध्	युद्ध्वा	वृध्	वर्धित्वा
रक्ष्	रक्षित्वा	व्यध्	वेधित्वा
रुद्	रुदित्वा	शक्	शक्त्वा
रुध्	रुद्ध्वा	शम्	शमित्वा, शान्त्वा
लभ्	लब्ध्वा	शास्	शासित्वा
लिख्	लिखित्वा	शी	शयित्वा
वच्	उक्त्वा	श्रु	श्रुत्वा
वद्	उदित्वा	श्वस्	श्वसित्वा
वस्	उषित्वा	सद्	सत्त्वा
विद्	विदित्वा	सह्	सोढ्वा, सहित्वा
वृत्	वर्त्तित्वा	सिच्	सिक्त्वा

धातु	क्त्वा	धातु	क्त्वा
सु	सुत्वा	स्वप्	सुप्त्वा
सेव्	सेवित्वा	सृज्	सृष्ट्वा
स्तु	स्तुत्वा		
स्था	स्थित्वा	श्रु	श्रुत्वा
स्पृश्	स्पृष्ट्वा	हन्	हत्वा
स्मृ	स्मृत्वा	हा	हित्वा

धातु	ल्यप्	धातु	ल्यप्
धातु	ल्यप्	कृष्	आकृष्य
अर्च्	समर्च्य	कॄ	प्रकीर्य
अस्	संभूय	क्री	विक्रीय
आप्	प्राप्य, समाप्य, व्याप्य	क्रीड्	प्रक्रीड्य
		क्रन्द्	आक्रन्द्य
		क्रम्	संक्रम्य
आस्	उपास्य	क्रुध्	सक्रुध्य
इ	प्रेत्य	क्षम्	संक्षम्य
अधि + इ	अधीत्य	क्षिप्	प्रक्षिप्य
ईक्ष्	निरीक्ष्य, परीक्ष्य	क्षुभ्	प्रक्षुभ्य
ग्रह	संगृह्य, अनुगृह्य	खन्	उत्खन्य, उत्खाय
गॄ	उद्गीर्य		
घ्रा	आघ्राय	खाद्	संखाद्य
चर्	आचर्य	गण्	विगणय्य
चल्	प्रचल्य	गै	प्रगाय
कम्	संकाम्य	नुद्	प्रणुद्य
कृ	अवकृत्य, उपकृत्य, अनुकृत्य, संस्कृत्य, पुरस्कृत्य	पच्	संपच्य
		पठ्	संपठ्य
		पत्	निपत्य
		पद्	संपद्य

धातु	ल्यप्	धातु	ल्यप्
चि	संचित्य	पाल्	संपाल्य
चिन्त्	संचिन्त्य	पुष्	संपुष्य
चुर्	संचोर्य	पॄ	आपूर्य
छिद्	उच्छिद्य	प्रच्छ्	आपृच्छ्य
जि	{ विजित्य { पराजित्य	बन्ध् बुध्	आबध्य प्रबुध्य
जप्	संजप्य	ब्रू	प्रोच्य
जीव्	संजीव्य	मन्	अनुमत्य
ज्वल्	प्रज्वल्य	मुच्	विमुच्य
ज्ञा	विज्ञाय	मुह्	संमुह्य
तप्	संतप्य	यज्	समिज्य
तॄ	उत्तीर्य	या	प्रयाय
दंश्	संदश्य	याच्	अनुयाच्य
दह्	संदह्य	युज्	प्रयुज्य
दा	आदाय	रक्ष्	संरक्ष्य
दिव्	संदीव्य	रच्	विरच्य
दिश्	उपदिश्य	रभ्	आरभ्य
दीप्	संदीप्य	रम्	विरम्य
दुह्	संदुह्य	रुध्	विरुध्य
धा	विधाय	लिख्	विलिख्य
धाव्	प्रधाव्य	ली	निलीय
धृ	आधृत्य	वच्	प्रोच्य
ध्यै	{ परिध्याय { संध्याय	वद् वस्	अनूद्य उपोष्य
नम्	प्रणम्य	वह्	प्रोह्य
नश्	विनश्य	वृत्	निवृत्य
नृत्	प्रनृत्य	शम्	निशम्य

धातु	ल्यप्	धातु	ल्यप्
शास्	अनुशिष्य	स्ना	प्रस्नाय
शी	संशय्य	स्पृश्	संस्पृश्य
श्री	आश्रित्य	स्मृ	विस्मृत्य
सह्	संसह्य	सृज्	विसृज्य
सिच्	अभिषिच्य	हन्	प्रहत्य, संहत्य, विहत्य
सिध्	निषिध्य		
सिव्	संसीव्य		
स्था	प्रस्थाय	हा	विहाय

क्त्वा प्रत्यय—एक दृष्टि में—

१—'खाकर', 'पीकर', लिखकर' आदि पूर्वकालिक कृदन्तों का अनुवाद संस्कृत में 'क्त्वा' (त्वा) प्रत्ययान्त शब्दों से किया जाता है।

२—जिन धातुओं के अन्त में 'न्' अथवा 'म्' होता है, उनके अन्तिम 'न्' तथा 'म्' का लोप करके 'क्त्वा' प्रत्यय जोड़ा जाता है। जैसे हन् से हत्वा, मन् से मत्वा आदि।

३—जान्त धातुओं के बाद और नश् धातु के बाद 'क्त्वा' प्रत्यय जुड़ने पर विकल्प से 'न्' का लोप होता है। जैसे भुञ्ज् + क्त्वा = भुक्त्वा अथवा भुङ्क्त्वा।

ल्यप् प्रत्यय-एक दृष्टि में—

१—पूर्वकालिक क्रियाओं का संस्कृत में अनुवाद ल्यप् प्रत्यय से भी होता है किन्तु 'ल्यप्' प्रत्यय केवल उन्हीं धातुओं में जुड़ता है जिनमें पहले उपसर्ग लगा रहता है। 'ल्यप्' का केवल 'य' ही शेष रह जाता है। यथा प्रपठ् + ल्यप् = प्रपठ्य।

२—ल्यप् के पूर्व यदि धातु के अन्त में कोई ह्रस्व स्वर (अ, इ, उ, ऋ) हो तो 'त्य' जुड़ता है, 'य' नहीं यथा—

आ + गम् = आगत्य। वि + जि = विजित्य।

३—प्रायः नकारान्त धातुओं में अनेक 'न्' का लोप करके 'त्य' जोड़ा जाता है। गम्, नम् और रम् आदि के 'म्' रहने पर अवगम्य आदि और लोप होने पर अवगत्य आदि ये दो रूप बनते हैं।

४—यदि धातु के अन्त में 'ऋ' आती है तो ऋ+ल्यप् को 'ईर्य' हो जाता है। जैसे वि+कृ+ल्यप्=विकीर्य (फैलाकर), अव+तृ+ल्यप्=अवतीर्य आदि।

५—यदि धातु के अन्त में आ, ई और ऊ में से कोई स्वर होता है तो ल्यप् का केवल 'य' ही जुड़ता है जैसे उत्+स्था से उत्थाय, अनु+भू से अनुभूय।

निम्नलिखित वाक्यों को ध्यान पूर्वक पढ़ो—

१—प्रतीहारी समुपसृत्य सविनयमब्रवीत् (समीप में आकर प्रतीहारी नम्रतापूर्वक बोली)।

२—वैशम्पायनो मुहूर्तमिव ध्यात्वा सादरमब्रवीत् (मानों कुछ देर तक ध्यान कर वैशम्पायन ने आदर पूर्वक कहा)।

३—तुरासाहं पुरोधाय धाम स्वायंभुवं ययुः (इन्द्र को आगे रखकर वे लोग ब्रह्मा के स्थान पर गए)।

४—सर्वैः पशुभिर्मिलित्वा सिंहो विज्ञप्तः (सब पशुओं ने मिलकर सिंह से प्रार्थना की)।

संस्कृत में अनुवाद करो

१—इस अपराध की घोषणा करके वह नगर से निकाल दिया जाय।

२—मुझे खून से पोतकर और वृक्ष के नीचे फेंककर ऋष्यमूक पर्वत चले जाओ।

३—वह भोजन पकाकर और खाकर सोता है।

४—भाग्य को कोस कर वह घर को रवाना हो गया।

५—पशु को राक्षस समझ कर वह डर के कारण भाग गया।

६—वह अध्ययन करके सम्मान पा सकता है।

७—शिष्य गुरु को नमस्कार करके घर जाता है।

८—छात्र पढ़ करके यश प्राप्त करता है।

९—वह यहाँ आकर घूमता है।

१०—जल पीकर वह मार्ग पर चल पड़ा।

११—सोचकर काम करो।

१२—बच्चा दूध पीकर प्रसन्न होता है।

१३—वह बाण लेक पशुओं को मारता है।

१४—बहेलिया अनाज बिखेर कर पक्षियों को पकड़ता है।

१५—मैं पिता को प्रणाम करके विद्यालय जाता हूँ।

निमित्तार्थक कृदन्त

तुमुन् प्रत्यय

निमित्त-अर्थ (खाने के लिए, पीने के लिए आदि) को प्रकट करने के लिए 'तुमुन्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। अव्यय होने के कारण इसका रूप नहीं चलता है। कुछ धातुओं के तुमुन् प्रत्ययान्त रूप नीचे दिये जाते हैं—

धातु	तुमुन् प्रत्यय	धातु	तुमुन् प्रत्यय
अर्च्	अर्चितुम्	प्रच्छ्	प्रष्टुम्
अर्ज्	अर्जितुम्	भिद्	भेत्तुम्
अधि + इ	अध्येतुम्	भुज्	भोक्तुम्
अनु + इष्	अन्वेष्टुम्	भू	भवितुम्
आप्	आप्तुम्	मुच्	मोक्तुम्
कथ्	कथयितुम्	मृ	मर्तुम्
कृ	कर्तुम्	रम्	रन्तुम्
क्री	क्रेतुम्	रुद्	रोदितुम्
ग्रह्	ग्रहीतुम्	लभ्	लब्धुम्
गै	गातुम्	लिह्	लेढुम्
चि	चेतुम्	वह्	वोढुम्
चिन्त्	चिन्तयितुम्	वप्	वप्तुम्
छिद्	छेत्तुम्	शम्	शमितुम्
जि	जेतुम्	शी	शयितुम्
ज्ञा	ज्ञातुम्	शुच्	शोचितुम्

धातु	तुमुन् प्रत्यय	धातु	तुमुन् प्रत्यय
तृ	तरितुम्	श्रु	श्रोतुम्
त्र	त्रातुम्	सह्	सोढुम् , सहितुम्
त्यज्	त्यक्तुम्	सृज्	स्रष्टुम्
दृश्	द्रष्टुम्	स्वप्	स्वप्तुम्
धाव्	धावितुम्	स्तु	स्तोतुम्
नी	नेतुम्	स्था	स्थातुम्
नृत्	नर्तितुम्	स्ना	स्नातुम्
पच्	पक्तुम्	स्पृश्	स्प्रष्टुम्
पा	पातुम्	हन	हन्तुम्
पूज्	पूजयितुम्	हस्	हसितुम्

तुमुन् प्रत्यय—एक दृष्टि में

(१) निमित्त अर्थ को प्रकट करने के लिए तुमुन् प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। यथा रामं द्रष्टुं गच्छति (राम को देखने के लिए जाता है। यहाँ जाने की क्रिया देखने के निमित्त है, अतएव दृश् धातु में तुमुन् प्रत्यय जोड़कर 'द्रष्टुं' बनाया गया।

(२) निमित्त अर्थ के अतिरिक्त शक् (सकना), धृष् (धृष्ट होना), ज्ञा (जानना), ग्ला (थक जाना, मुरझा जाना), वट् (प्रयत्न करना), रभ् (आरम्भ करना), लभ (पाना), क्रम् (आरम्भ करना), सह् (सहना), अस् (होना)—इन धातुओं का प्रयोग होने पर भी तुमुन् प्रत्यय होता है।

(३) पर्याप्त, समर्थ एवं योग्य इत्यादि अर्थ रखने वाले शब्दों के साथ तथा इनका अर्थ बोध कराने वाले विशेषों के साथ भी तुमुन् का प्रयोग होता है। यथा—

लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः (ललाट पर लिखे हुए को मिटाने में कौन समर्थ है)।

(४) कालवाची शब्दों के साथ कर्ता न होने पर भी 'तुमुन्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। यथा गन्तुम् कालोऽयमस्ति (यह समय जाने के लिए है।)

(५) तुमुनन्त शब्द का तथा प्रधान क्रिया का कर्ता एक ही होना चाहिए। भिन्न कर्ता होने से 'तुमुन्' प्रत्यय का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

(६) तुमुन् प्रत्यय का 'तुम्' शेष रह जाता है। यह अव्यय होता है। अतएव इसके रूप नहीं चलते।

निम्नलिखित वाक्यों को ध्यानपूर्वक पढ़ो—

१—अस्ति में विभवः सर्वं परिज्ञातुम् (मुझमें सब कुछ जानने की शक्ति है)।

२—जानासि देवीं विनोदयितुम् (रानी का मनोरञ्जन करना जानते हो)।

३—न विषहे विपत्तिमवलोकयितुम् , (मैं विपत्ति नहीं सह सकता हूँ)।

४—पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति (पिनाकपाणि महादेव जी को अपना पति चाहती है)।

५—अस्ति भोक्तुमन्नम् (खाने को भोजन है)।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—गर्मी में बाहर जाने के लिए समर्थ नहीं होता।

२—अब आप बोल सकते हैं।

३—पसीने से नहाई हुई भी (स्वेदसलिलस्नाताऽपि) फिर स्नान करने के लिए उतरी।

४—यह गर्दन नहीं उठा सकता।

५—फिर आप और कुछ कहना चाहते हैं।

६—उसकी तपस्या लोगों को जला देने के लिए पर्याप्त है।

७—अग्नि के अलावा और कौन जलाने में समर्थ होगा।

८—मैं अपने हृदय को रोक नहीं सकता हूँ।

९—इस प्रकार उससे एकान्त में बोलने चला।

१०—वे दोष ठीक नहीं किये जा सकते हैं।

११—अपने आप को प्रकट करने के लिए यह अवसर है।

१२—खाने के लिए अन्न होता है।

१३—नहाने के लिए नदी जाओ।

१४—नमस्कार करने के लिए मुनि के आश्रम को जाओ।

१५—अध्ययन के लिए गुरु के पास जाओ।

१६—यह इस काम को कर सकता है।

१७—मैं कुछ पूछना चाहता हूँ।

१८—मेरे प्रेम को मत ठुकराओ (नार्हसि मे प्रणयं विहन्तुम्)।

कृत्य प्रत्यय

तव्यत्

इस प्रत्यय का प्रयोग विधि अर्थ में होता है। इसका 'तव्य' हो शेष रहता है। इस प्रत्यय के द्वारा बने हुए शब्दों के रूप पुंल्लिङ्ग में राम, स्त्रीलिङ्ग में रमा और नपुंसकलिङ्ग में 'फल' की तरह चलते हैं।

धातु	तव्यत्	धातु	तव्यत्
अर्च्	अर्चितव्य	पत्	पतितव्य
आप्	आप्तव्य	पा	पातव्य
अधि + इ	अध्येतव्य	पाल्	पालितव्य
इ	एतव्य	भू	भवितव्य
ईक्ष्	ईक्षितव्य	भिद्	भेतव्य
कृ	कर्तव्य	भृ	भर्तव्ब
क्री	क्रेतव्य	मन्	मन्तव्य
क्षम्	क्षन्तव्य	याच्	याचितव्य
गम्	गन्तव्य	रम्	रन्तव्य
गै	गातव्य	लभ्	लब्धव्य
ग्रह्	ग्रहीतव्य	वच्	वक्तव्य
चल्	चलितव्य	वस्	वस्तव्य
चि	चेतव्य	वह्	वोढव्य
छाद्	छादितव्य	शी	शयितव्य
जि	जेतव्य	श्रु	श्रोतव्य
जीव्	जीवितव्य	सह्	सोढव्य, सहितव्य
त्यज्	त्यक्तव्य	स्था	स्थातव्य
दृश्	द्रष्टव्य	स्मृ	स्मर्तव्य
दा	दातव्य	हन्	हन्तव्य
नी	नेतव्य	हस्	हसितव्य
नृत्	नर्तितव्य	हृ	हर्तव्य

अनीयर्

'चाहिए' अर्थ में अनीयर् प्रत्यय होता है। इसका 'अनीय' शेष रह जाता है।

धातु	अनीयर्	धातु	अनीयर्
अद्	अदनीय	दुह्	दोहनीय
अर्च्	अर्चनीय	दृश्	दर्शनीय
आप्	आपनीय	नम्	नमनीय
आस्	आसनीय	नश्	नशनीय
अधि + इ	अध्ययनीय	नी	नयनीय
इ	अयनीय	नृत्	नर्तनीय
इष्	एषणीय	पच्	पचनीय
ईक्ष्	ईक्षणीय	पठ्	पठनीय
कथ्	कथनीय	पत्	पतनीय
कृ	करणीय	पा	पानीय
क्री	क्रयणीय	पाल्	पालनीय
क्षम्	क्षमणीय	प्रच्छ्	पृच्छनीय
खाद्	खादनीय	ब्रू	वचनीय
गम्	गमनीय	भक्ष्	भक्षणीय
गै	गानीय	भी	भयनीय
ग्रह्	ग्रहणीय	भुज्	भोजनीय
चल्	चलनीय	भू	भवनीय
चि	चयनीय	भृ	भरणीय
चिन्त्	चिन्तनीय	भ्रम्	भ्रमणीय
चुर्	चोरणीय	मुच्	मोचनीय
छाद्	छादनीय	मुष्	मोषणीय
जन्	जननीय	मृ	मरणीय
ज्ञा	ज्ञानीय	याच्	याचनीय
जि	जयनीय	युज्	योजनीय

धातु	अनीयर्	धातु	अनीयर्
तन्	तननीय	युध्	योधनीय
तुद्	तोदनीय	रक्ष्	रक्षणीय
त्यज्	त्यजनीय	रम्	रमणीय
दा	दानीय	रुद्	रोदनीय
दिव्	देवनीय	रुध्	रोधनीय
लभ्	लभनीग	सद्	सदनीय
वच्	वचनीय	सह्	सहनीय
वस्	वचनीय	सु	सवनीय
वद्	वदनीय	सेव्	सेवनीय
वह्	वहनीय	स्तु	स्तवनीय
विद्	वेदनीय	स्था	स्थानीय
व्यध्	वेधनीय	स्मृ	स्मरणीय
वृत्	वर्त्तनीय	स्पृश	स्पर्शनीय
वृध्	वर्धनीय	स्वप्	स्वपनीय
शक्	शकनीय	हन्	हननीय
शम्	शमनीय	हस्	हसनीय
शास्	शासनीय		
शी	शयनीय	हु	हवनीय
श्रु	श्रवणीय	हृ	हरणीय

यत्

यत् प्रत्यय 'चाहिए' अर्थ में केवल स्वरान्त धातुओं के बाद प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त पवर्गान्त, ह्रस्व अकारोपध (जिनके अन्त्य व्यञ्जन से पूर्व ह्रस्व अकार हो) और शक् तथा सह् धातुओं के साथ प्रयुक्त होता है। यत् का 'य' शेष रहता है। यत् प्रत्यान्त शब्दों के रूप पुल्लिङ्ग में 'राम' शब्द के समान, स्त्रीलिङ्ग में 'रमा' शब्द के समान और नपुंसकलिङ्ग में 'फलम्' शब्द के समान चलते हैं।

धातु	यत्	धातु	यत्
कृ	कार्यम्	मद्	मद्यम्
क्षम्	क्षम्यम्	मा	मेयम्
गद्	गद्यम्	यज्	याज्यम्
गम्	गम्यम्	रम्	रम्यम्
ग्रह्	ग्राह्यम्	रुच्	रोच्यम्
गा	गेयम्	लभ्	लभ्यम्
ग्ला	ग्लेयम्	वह्	वाह्यम्
चि	चेयम्	शक्	शक्यम्
जि	जेयम्	शास्	शिष्यम्
दा	देयम्	शी	शेयम्
दुह्	दुह्यम्	श्रु	श्रव्यम्
धा	धेयम्	सह्	सह्यम्
धृ	धार्यम्	स्था	स्थेयम्
पच्	पाच्यम्	स्मृ	स्मार्यम्
पा	पेयम्	हन्	वध्यम्
भुज्	भोग्यम्, भोज्यम्	ह्रा	ह्रेयम्
भू	भव्यम्	हु	हव्यम्

कृत्य प्रत्यय—एक दृष्टि में

(तव्यत् प्रत्यय) 'चाहिए' आदि अर्थ का बोध कराने के लिए संस्कृत में 'तव्यत्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। यथा—त्वया अवश्यमेव गन्तव्यम् (तुझे अवश्य जाना चाहिए)। 'तव्यत्' का 'तव्य' शेष रह जाता है। जैसे कर्त्तव्य आदि। इससे बने हुए शब्दों के रूप पुं० में बालक, स्त्री में रमा और नपुं० में 'गृह' की तरह चलते हैं।

(२) कभी-कभी यह प्रत्यय भविष्यत्काल का भी बोध कराता है। यथा—सुखेन गन्तव्यम् (मैं सुखपूर्वक चला जाऊँगा)।

(३) यह प्रत्यय सकर्मक धातु से कर्म और अकर्मक के भाव में होता है। इसका कर्ता सदैव तृतीया में रहता है। यथा—

मया पुस्तकं पठितव्यम् (मुझे पुस्तक पढ़नी चाहिए। यह उदाहरण सकर्मक धातु का हैं।

त्वया शयितव्यम् (तुझे सोना चाहिए)। यह उदाहरण अकर्मक धातु का है।

(अनीयर् प्रत्यय) (१) 'चाहिए' आदि अर्थ का बोध कराने के लिए संस्कृत में 'अनीयर्' प्रत्यय का भी प्रयोग किया जाता है। 'अनीयर्' का 'अनीय' शेष रह जाता है। इस प्रत्यय से निष्पन्न शब्दों के रूप पुं० में 'बालक,' स्त्री० में 'रमा' और नपुं० में 'गृह' की तरह चलते हैं।

(२) यह प्रत्यय भी सकर्मक धातुओं से कर्म तथा अकर्मक के भाव में होता है। इसका भी कर्ता सदैव तृतीया विभक्ति में रखा जाता है। यथा—मया शयनीयम् (मुझे सोना चाहिए)।

(यत् प्रत्यय) (२) 'चाहिए' आदि अर्थ का बोध कराने के लिए यत् प्रत्यय का भी प्रयोग किया जाता है किन्तु यत् केवल ऐसी धातुओं में जोड़ा जाता है जिसके अन्त में कोई स्वर हो अथवा जिनके अन्त में पवर्ग का कोई वर्ण हो और उपधा में अकार हो।

(२) यदि यत् के पूर्व कोई स्वर हो तो उसे गुय होता है।

(३) यदि यत् के पूर्व 'आ' हो तो उसके स्थान पर पहले 'ई' होकर फिर गुण (ए) हो जाता है। जैसे दा + यत् = द् + ई + य = द् + ए + य = देय।

(४) यत् के पूर्व यदि धातु का अन्तिम स्वर 'ए', 'ऐ', 'ओ' अथवा 'औ' हो तो वह 'ई' हो जाता है और फिर गुण हो जाता है। जैसे—

गै + यत् = गी + य = गे + य = गेय।

(५) यदि लभ् धातु के पूर्व 'आ' उपसर्ग हो अथवा प्रशंसावाचक 'उप' उपसर्ग हो और आगे यकारादि प्रत्यय हो तो बीच में नुम् (न् = म्) आ जाता है। यथा उपलम्भयः साधुः (साधु प्रशंसनीय होता है)।

निम्नलिखित वाक्यों को ध्यानपूर्वक पढ़ो—

१—मया तत्र गन्तव्यम् (मुझे वहाँ जाना चाहिए)।

२—मद्वचनात् स राजा त्वयेदं वाच्यः (मेरे कहने से राजा जी से यह बात कहनी चाहिए)।

३—आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः (यह आश्रम का मृग है, इसे नहीं मारना चाहिए)।

४—असौ दुहितुः पत्या परिग्रहप्रियमस्माभिः श्रावयितव्यः (पति द्वारा (उनकी) कन्या के स्वीकार किए जाने का प्रिय समाचार उन्हें सुना देना चाहिए)।

५—तत्रभवता तपोवनं गन्तव्यम् (उस पूज्य पुरुष को तपोवन चला जाना चाहिए)।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—उसे इस लतामण्डप में अवश्य उपस्थित रहना चाहिए। २—छात्रों को पुस्तक पढ़नी चाहिए। ३—प्रतिदिन संध्या अवश्य करनी चाहिए। ४—अभिज्ञान शाकुन्तल नामक नाटक लेकर हम लोगों को उपस्थित होना चाहिए। ५—आप लोगों की सहायता से यह भी सुख के साथ वहाँ चला जायगा। ६—तब वह भी अवश्य शोर करेगा। ७—हरिणमांस का लोभी बहेलिया अवश्य जायगा। ८—प्रातःकाल उठकर ईश्वर को नमस्कार करना चाहिए। ९—सबको अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए। १०—सबको अपने माता-पिता की सेवा करनी चाहिए। ११—भगवान् का स्मरण करना चाहिए। १२—दरिद्र को दान देना चाहिए। १३—प्रियवादी पर भी विश्वास नहीं करना चाहिए। १४—राजा को शत्रु जीतना चाहिए। १५—गुरु से विद्या पढ़नी चाहिए। १६—नीच पुरुष से भी उपदेश ग्रहण करना चाहिए। १७—बदमाशों की संगति नहीं करनी चाहिए। १८—निर्धन को देखकर हँसना नहीं चाहिए। १९—स्वार्थ के लिए दूसरों की हानि नहीं करनी चाहिए। २०—परिश्रम करके ही निर्वाह करना चाहिए।

एकादश सोपान

तद्धित-विवेचन

संज्ञा, सर्वनाम एवं विशेषण आदि में जिन प्रत्ययों को जोड़कर कुछ अन्य अर्थ भी निकाला जाता है, उन प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं। जैसे—

दितेः अपत्यम् = दैत्यः (दिति + ण्य)। इसमें ण्य (तद्धित प्रत्यय) जोड़कर दिति के लड़के का बोध कराया गया है। कषायेण रक्तम् = काषायम् (वस्त्रम्)—'कषाय रंग में रंगा हुआ'। यहाँ कषाय शब्द के उपरान्त अण् प्रत्यय लगाकर 'कषाय से रंगे हुए' का अर्थ निकाला गया है।

अब कुछ विशेष प्रचलित तद्धित प्रत्ययों का विवेचन किया जा रहा है—

(१) (तस्यापत्यम्) अपत्य (सन्तान, 'पुत्र' अथवा 'पुत्री') अर्थ के शब्द के बाद अण् (अ) प्रत्यय जुड़ता है। इस प्रत्यय के जुड़ने पर शब्द के सर्व प्रथम स्वर की वृद्धि होती है (अ को आ, इ ई को ऐ, उ ऊ को औ, ऋ को आर्, किन्तु अन्तिम उ को ओ होता है)। यथा—

रघु का पुत्र राघवः, वसुदेव का पुत्र वासुदेवः, पाण्डु का पुत्र पाण्डवः, कुरु का पुत्र कौरवः, पृथा का पुत्र पार्थः, पुत्र का पुत्र पौत्रः, आदि। ये सब अकारान्त शब्द रामवत् चलेंगे। स्त्री, शब्द नदीवत् चलेंगे।

(२) (अत इञ्) अपत्य का अर्थ बताने के लिए अकारान्त प्रातिपदिक के बाद इञ् प्रत्यय जोड़ा जाता है। जैसे दशरथ + इञ् = दाशरथिः (दशरथ का पुत्र) दक्षस्य अपत्यं + दाक्षिः (दक्ष् + इञ्) इत्यादि।

(३) (दित्यदित्यादित्यपत्युत्तर०) दिति आदि शब्दों के अपत्य अर्थ में अन्त में ण्यत् (य) प्रत्यय जोड़ा जाता है। शब्द के प्रथम स्वर को वृद्धि हो जाती है। जैसे—दितेः अपत्यं पुमान् दैत्यः (राक्षस)। इसी प्रकार अदिति का आदित्यः (देवता), वत्स का वात्स्यः, प्रजापति का प्राजापत्यः, गर्ग का गार्ग्यः।

(४) (स्त्रीभ्यो ढक्) जिन प्रातिपदिकों में स्त्री प्रत्यय लगा हो, उनमें अपत्य का अर्थ बताने के लिए ढक् (एय्) प्रत्यय जोड़ा जाता है। जैसे—विनता + ढक् = वैनतेयः (विनता का पुत्र)।

भगिनी + ढक् = भागिनेयः (भाञ्जा) इत्यादि। इस प्रत्यय के जुड़ने पर शब्द के प्रथम स्वर को वृद्धि हो जाती है।

(५) (तत्र भवः) यदि किसी वस्तु में दूसरी वस्तु की सत्ता हो अर्थात् वह वहाँ विद्यमान हो तो जिस वस्तु में सत्ता हो, उसके बाद अण् प्रत्यय जोड़ा जाता है। जैसे—

सुघ्ने भवः 'सौघ्नः' (सुघ्न + अण्)—सुघ्न में वर्तमान है।

(६) (सोऽस्य निवासः। अभिजनश्च) यदि किसी में किसी मनुष्य का निवास हो और यह बतलाता हो कि यह अमुक स्थान का निवासी है, तो स्थान-वाचक शब्द के बाद अण् प्रत्यय जुड़ता है। यथा—

मथुरायां निवासः अभिजनो वाऽस्य—माथुरः। इसी प्रकार भाटनागरः आदि।

(७) (कालाट्ठञ्) कालवाची शब्दों के बाद शैषिक ठञ् प्रत्यय जुड़ता है। जैसे मास + ठञ् (इक) = मासिक।

इसी प्रकार सांवत्सरिक, सायं प्रतिक, पौनः पुनिकः आदि।

(८) (सायं चिरं प्राह्णे प्रगे०) सायं, चिरं, प्राह्णे, प्रगे शब्दों के बाद तथा अव्ययों के बाद शैषिक ट्यु-ट्युल् (अन) जुड़ते हैं और शब्द तथा प्रत्यय के बीच में त् भी ऊपर से आ जाता है। यथा—

सायं + त् + ट्युल् (अन) = सायन्तनम्। इसी प्रकार चिरन्तनम्, प्राह्णेतनम्, प्रगेतनम्, दोषातनम्, दिवातनम्, इदानीन्तनम्, तदानीन्तनम् आदि।

(९) (तदधीते तद्वेद) कोई चीज पढ़ने वाले अथवा जानने वाले का बोध कराने के लिए ञ् (अ) लगता है। जैसे व्याकरणमधीते = वैयाकरणः (व्याकरण + ण्)।

(१०) (तेन प्रोक्तम्) पुस्तक-रचना के अर्थ में रचयिता के नाम के आगे अ अथवा ईय् प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा पाणिनिरचित--पाणिनीयम्। मनु-रचित--मानवः इत्यादि।

(११) (तस्येदम्) 'यह इसका है' इस अर्थ को बतलाने के लिए जिसका सम्बन्ध बताना हो उसके अनन्तर अण् जोड़ते हैं। यथा—

देवस्य अयम् = दैवः।

ग्रीष्म + अण् = ग्रैष्मम्। इसका लिङ्ग सम्बद्ध वस्तु के लिङ्ग के अनुसार बदलता रहता है।

(१२) (तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्) 'वाला' या 'युक्त' अर्थ में सभी शब्दों के अन्त में मतुप् (मत्) प्रत्यय जुड़ता है। यथा गावः अस्य सन्ति इति गोमान् (गो + मतुप्))। इसी प्रकार गुणवान्, यशस्वान्, बुद्धिमान्, धीमान्, विद्यावान्, ज्ञानवान् इत्यादि। मतुप् प्रत्यय विशेषकर गुणवाची शब्दों (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि) के उपरान्त लगता है।

(१३) (अत इनि ठनौ) अकारान्त शब्दों के बाद 'वाला' अथवा 'युक्त' अर्थ में इनि (इन्) और ठन् (इक) भी लगते हैं। जैसे—

दण्डी (दण्ड + इनि); दाण्डिकः (दण्ड + उन्)।

(१४) (तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्) युक्त अर्थ के तारका आदि (तारका, पुष्प, मंजरी, सूत्र, मूत्र, प्रचार, विचार, कुड्मल, कण्टक, मुकुल, कुसुम, किसलय, पल्लव, खण्ड, वेग, निद्रा, मुद्रा, बुभुक्षा, पिपासा, श्रद्धा, अभ्र, पुलक, द्रोह, सुख, दुःख, उत्कण्ठा, भर, व्याधि, वर्मन्, व्रण, गौरव, शास्त्र, तरङ्ग, तिलक, चन्द्रक, अन्धकार, गर्व, मुकुर, हर्ष, उत्कर्ष, रण, कुवलय, क्षुध्, सीमन्त, ज्वर, रोग, पण्डा, कज्जल, तृष्, कोरक, कल्लोल, फल, अंकुर, कलङ्क, मूर्च्छा, अङ्गार, दीक्षा ये इस गण के मुख्य शब्द हैं।) शब्दों के अनन्तर इतच् (इत्) प्रत्यय लगाते हैं। यथा—

तारका + इतच् + तारकित (तारे निकल आए हैं जिसमें)। इसी प्रकार पिपासित, पुष्पित, कुसुमित आदि बनाते हैं।

(१४) (तस्य भावस्त्वतलौ) किसी शब्द से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए उस शब्द में त्व अथवा तल् (ता) प्रत्यय लगाते हैं। 'त्व' में अन्त होने वाले शब्द सदा नपुंसकलिङ्ग में होते हैं और तल् में अन्त होने वाले स्त्री० में। यथा—गो + त्व = गोत्वम्, गो + तल् = गोता, शिशु + त्व = शिशुत्वम्, शिशु + तल् = शिशुता इत्यादि।

(१५) (गुणवचनब्राह्मणादिभ्य कर्मणि च) कर्म अथवा भाव अर्थ बताने के लिए गुणवाची शब्दों के अनन्तर तथा ब्राह्मण आदि (ब्राह्मण, चोर, धूर्त,

आराधय, विराधय, अपराधय, उपराधय, एकभाव, द्विभाव, त्रिभाव, अन्य भाव, संवादिन्, संवेशिन्, संभाषिन्, बहुभाषिन्, शीर्षघातिन्, विघातिन्, समस्थ, विषमस्थ, परमस्थ, मध्यस्थ, अनीश्वर, कुशल, चपल, निपुण, पिशुन, कुतूहल, बालिश, अलस, दुष्पुरुष, कापुरुष, राजन्, गणपति, अधिपति, दायाद, विषम, विपात, निपात—ये सब इस गण के मुख्य शब्द हैं) शब्दों के बाद ष्यञ् (य) प्रत्यय जुड़ता है। जैसे ब्राह्मणस्य भाव कर्म वा = ब्राह्मण्यम्। इसी प्रकार—

चौर्यम्, धौर्त्यम्, आपराध्यम्, ऐकभाव्यम्, समस्थ्यम्, कौशल्यम्, चापल्यम्, नैपुण्यम्, पैशुन्यम्, कौतूहल्यम्, बालिश्यम् इत्यादि।

(१६) (पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा। र ऋतो हलादेर्लघोः।) भाव का अर्थ सूचित करने के लिए पृथु आदि (पृथु, मृदु, महत्, पटु, तनु, लघु, बहु, साधु, आशु, उरु, गुरु, बहुल, खण्ड, दण्ड, चण्ड, अकिंचन, बाल, होड, पाक, वत्स, मन्द, स्वादु, ह्रस्व, दीर्घ, प्रिय, वृष, ऋजु, क्षिप्र, क्षुद्र) शब्दों के बाद इमनिच् (इमन्) प्रत्यय भी विकल्प से जोड़ते हैं। जिस शब्द में यह प्रत्यय जोड़ते हैं, वह यदि व्यञ्जन से आरम्भ हो और उसके बाद ऋकार (मृदु, पृथु आदि) आवे तो उस ऋकार के स्थान में र हो जाता है। इमनिच् प्रत्ययान्त समस्त शब्द पुँल्लिङ्ग होते हैं। यथा—

पृथु + इमनिच् = प्रथिमन्। इसी प्रकार म्रदिमन्, महिमन्, पटिमन्, तनिमन् लघिमन्, बहिमन् आदि। इनके रूप महिमन् के समान चलेंगे।

(१७) (तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः) किसी के तुल्य क्रिया करने का अर्थ होने पर जिसके समान क्रिया की जाती है, उसके बाद वति (वत्) प्रत्यय जोड़ देते हैं। यथा—ब्राह्मणेन तुल्यमधीते = ब्राह्मणवत् अधीते।

(१८) (तत्र तस्येव) यदि किसी में अथवा किसी के तुल्य कोई वस्तु हो, तब भी वति प्रत्यय जोड़ते हैं। यथा—

इन्द्रप्रस्थे इव प्रयागे दुर्गः = इन्द्रप्रस्थवत् प्रयागे दुर्गः (जैसा किला इन्द्रप्रस्थ में है, वैसा ही प्रयाग में है।)

चैत्रस्य इव मैत्रस्य गावः = चैत्रव-मैत्रस्य गावः (जैसी गाएँ चैत्र की हैं, वैसी ही मैत्र की हैं)।

(१९) (पञ्चम्यास्तसिल्। पर्यभिभ्यां च। सर्वोभयार्थाभ्यामेव।) पञ्चमी विभक्ति के अर्थ में संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण के अनन्तर तथा परि और अभि उपसर्गों के बाद तसिल् (तस्) जुड़ता है। यथा—

गृहतः, उभयतः मत्तः, त्वतः, अस्मतः, परितः, अभितः, अमुतः, इतः, सर्वतः, मध्यतः, परतः ।

(२०) (सप्तम्यास्त्रल्) सप्तमी विभक्ति के अर्थ में सर्वनाम तथा विशेषण के बाद त्रल् प्रत्यय जुड़ता है। यथा—यत्र, तत्र, बहुत्र, सर्वत्र, एकत्र इत्यादि । परन्तु इदम् में त्रल् न लगकर 'ह' लगता है और 'इह' रूप बनता है ।

(२१) (सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा) सर्व, एक, अन्य, किम् , यद् तथा तद् शब्दों के बाद 'दा' प्रत्यय जुड़ता है, कब, जब आदि अर्थ प्रकट करने के लिए । यथा—सर्वदा, एकदा, अन्यदा, कदा, यदा, तदा । इसी अर्थ में 'दानीम्' प्रत्यय भी जुड़ता है । यथा—कदानीम् , यदानीम्, तदानीम् , इदानीम् इत्यादि ।

(२२) (प्रकारवचने थाल्) ऐसे, वैसे आदि शब्दों द्वारा 'प्रकार' अर्थ को बतलाने के लिए 'थाल्' (था) प्रत्यय जोड़ते हैं—यथा, तथा इत्यादि । परन्तु इदम् , एतद् तथा किम् में 'थमु' लगता है—कथम्, इत्थम् ।

(२३) (दिक्शब्देभ्यः ०) आगे, पीछे आदि शब्दों का अर्थ बताने के लिए पूर्व आदि दिशावाची शब्दों के बाद प्रथमा, पञ्चमी तथा सप्तमी के अर्थ में अस्ताति (अस्तात) प्रत्यय जुड़ता है । जैसे—

पूर्व + अस्ताति = पुरस्तात् । इसी प्रकार अधस्तात् , अवस्तात् , अवरस्तात्, उपरिष्टात् ।

इसी प्रकार एनप् प्रत्यय जोड़कर प्रथमा तथा सप्तमी का अर्थ प्रकट किया जाता है। उदाहरणार्थ दक्षिणेन, उत्तरेण, अधरेण, पूर्वेण, पश्चिमेन शब्द बनाते हैं। इसी प्रकार ही 'आति' प्रत्यय लगाकर पश्चात् , उत्तरात् , अधरात् , दक्षिणात् शब्द भी बनाते हैं।

(२४) (संख्याया विधार्थे धा) संख्यावाचक शब्दों से प्रकार अर्थ में 'धा' प्रत्यय होता है। यथा—एकधा, द्विधा, त्रिधा, चतुर्धा, पञ्चधा, बहुधा, शतधाः ।

(२५) (संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्) 'दो बार' 'तीन बार' आदि की तरह 'वार' शब्द का अर्थ प्रकट करने के लिए संख्यावाची शब्दों के बाद कृत्वसुच् (कृत्वस्) प्रत्यय जोड़ते हैं । यथा—

पञ्चकृत्वः भुङ्क्ते (पाँच बार खाता है) ।

इसी प्रकार—षट्कृत्वः, सप्तकृत्वः आदि ।

(२६) (एकस्य सकृच्च) 'बार' के अर्थ में 'एक' शब्द में भी सुच् जुड़ता है और 'एक' के स्थान में 'सकृत्' आदेश हो जाता है। यथा—

एक + सुच् = सकृत्।

(२७) (प्रमाणे द्वयसज् दघ्नञ् मात्र चः) नाप, तोल अर्थ में शब्द से 'मात्र' प्रत्यय होता है। यथा—हस्तमात्रम् (हाथ भर), कटिमात्रम् (कमर तक), जानुमात्रम् (घुटने तक), मुष्टिमात्रम् (मुट्ठीभर)।

(२८) (द्विवचन विभज्योपपदे तरबीयसुनौ) दो में से एक का अतिशय दिखाने के लिए तरप् और ईयसुन् प्रत्यय जोड़े जाते हैं। यथा—लघु से लघीयस्, लघुतर।

(२९) (अतिशायने तमबिष्ठनौ) दो से अधिक में से एक का अतिशय दिखाने के लिए तमप् और इष्ठन् प्रत्यय जोड़े जाते हैं। यथा—लघु से लघिष्ठ और लघुतम।

संस्कृत में अनुवाद करो

१—वह कन्या धनवाली और ज्ञानवाली है।

२—प्राचीन काल में लोग सत्यवादी और सदाचारी होते थे।

३—राम दशरथ जी के पुत्र थे।

४—पाणिनि के व्याकरण जानने वाले को पाणिनीय कहते हैं।

५—दिति और अदिति के लड़कों में भीषण संग्राम हुआ।

६—मथुरा में उत्पन्न हुए लोगों को माथुर कहते हैं।

७—अधिक गहरे पानी में न जाओ, घुटने तक पानी में जाकर नहाओ।

८—नास्तिक पुराणों की कथाओं पर विश्वास नहीं करता है।

९—वह पुरुष ज्ञानवाला और धनवाला है।

१०—वेद सम्बन्धी शास्त्रों का अध्ययन करो।

११—तुम कहाँ से आ रहे हो और कहाँ तक जा रहे हो?

१२—हमें देश की बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

१३—सुमित्रा के पुत्र को नमस्कार है।

१४—संसार की बातों में लिप्त न होना चाहिए।

१५—भीम ने दुःशासन को मारने की घोर प्रतिज्ञा की।

द्वादश सोपान

लिङ्गानुशासन

संस्कृत में तीन लिङ्ग होने हैं—पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुँसकलिङ्ग। समस्त संज्ञाएँ इन्हीं तीन लिङ्गों में विभाजित हैं। किन्तु संस्कृत भाषा में लिङ्ग प्रकृति के अनुसार नहीं है। इसी कारण संस्कृत में संज्ञाओं का लिङ्ग ज्ञान बहुत कठिन है। इसका ज्ञान कोश तथा काव्यग्रन्थों के अध्ययन से प्राप्त किया जाना चाहिए।

पुंल्लिङ्ग शब्द

(अ) घञ्, अप्, घ, अच्, नङ्, एवं कि प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द पुँल्लिङ्ग होते हैं।

यथा—घञन्त—पाकः, त्यागः।

अबन्त—करः।

घान्त—सञ्चरः, गोचरः।

अजन्त—चयः इत्यादि (भय, लिङ्ग, भग और पद शब्द नपुंसकलिङ्ग होते हैं)।

नङन्त—यज्ञः, यत्नः ('याच्ञा' स्त्रीलिङ्ग है)।

कयन्त—जलधिः, विधिः, निधिः, आधिः (इषुधिः स्त्रीलिङ्ग में भी होता है)।

(ब) न् तथा उ में अन्त होने वाले शब्द प्रायः पुँल्लिङ्ग हुआ करते हैं। यथा—

राजन्, आत्मन्, युवन्, श्वन्, मघवन् आदि सभी नकारान्त शब्द पुल्लिङ्ग हैं। किन्तु चर्मन् (चमड़ा), वर्म्मन् (कवच), शर्मन् (कल्याण), जन्मन् (जन्म), नामन् (नाम), ब्रह्मन् (ब्रह्म), धामन् (घर) आदि शब्द नपुंसकलिङ्ग हैं।

प्रभुः (स्वामी), विभुः (व्यापक), साधुः (सज्जन), वायुः (वायु), विधुः (चन्द्रमा) आदि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं। परन्तु धेनुः (गाय), रज्जुः (रस्सी),

कुहूः (कोयल की बोली, अमावस्या), सरयुः (एक नदी), तनुः (शरीर); रेणुः (धूल), प्रियङ्गुः (एक पौधा) आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं। श्मश्रु (दाढ़ी-मूँछ), जानु (घुटना, जंघा), स्वादु, अश्रु, जतु (लाह), त्रपु (टीन), तालु तथा वसु (धन) शब्द नपुंसकलिङ्ग हैं। मद्गु (एक प्रकार का पक्षी), मधु (मदिरा, शहद), शीधु (मद्य), सानु (पहाड़ की समतल भूमि), कमण्डलु शब्द उभयलिङ्ग पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग हैं।

(स) ऐसे शब्द जिनकी उपधा में क्, ट्, ण्, थ्, न्, प्, भ्, म्, य्, र्, ष् और स् में से कोई अक्षर हो और यदि वे अकारान्त हों तो प्रायः पुंल्लिङ्ग होते हैं।

उदाहरणार्थ—स्तवकः (गुच्छ), नाकः (स्वर्ग), नरकः (नरक), तर्कः आदि। किन्तु चिबुक (ठुड्डी), शालुक (जायफल), प्रातिपदिक (शब्द), अंशुक (महीन कपड़ा), उल्मुक (अङ्गार) शब्द नपुंसकलिङ्ग हैं। कण्टक (काँटा), अनीक (सेना), मोदक (लड्डू), चषक (शराब का प्याला), निष्क, शुल्क, वर्चस्क (चमकीला), पिनाक (धनुष), भाण्डक (वर्तन), कटक (शिविर), दण्डक, पिटक (फोड़ा), फलक, पुलक शब्द उभयलिङ्ग (पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसकलिङ्ग) हैं।

घटः, पटः, नटः आदि अकारान्त टकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग हैं। किन्तु किरीट, मुकुट, ललाट, लोष्ट शब्द नपुंसकलिङ्ग हैं और कपट, निकट आदि शब्द उभयलिङ्ग (पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसकलिङ्ग) हैं।

गुणः, गणः, कणः, शोणः, द्रोणः आदि अकारान्त णकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग हैं। परन्तु ऋण, लवण, तोरण, पर्ण, सुवर्ण, चरण, चूर्ण एवं तृण शब्द उभयलिङ्ग (पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसकलिङ्ग) हैं।

रथः आदि अकारान्त थकारोपध शब्द पुल्लिङ्ग होते हैं। परन्तु तीर्थ, यूथ शब्द नपुंसकलिङ्ग हैं।

फेनः आदि अकारान्त नकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। किन्तु जघन, अजिन, तुहिन, कानन, वन, वृजिन, विपिन, वेतन, शासन, सोपान, मिथुन, श्मशान, रत्न, निम्न तथा चिह्न शब्द नपुंसक होते हैं।

यूपः, दीपः आदि अकारान्त पकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। किन्तु पाप, रूप, उडुप, तल्प, शिल्प, पुष्प, शष्प, समीप, अन्तरीप शब्द नपुंसक होते हैं। स्तम्भः (खंभा), कुम्भः (घड़ा), दम्भः (ढोंग) आदि अकारान्त भकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं।

सोमः, भीमः (भयावना), कामः, घर्मः (घाम) आदि अकारान्त मकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। किन्तु अध्यात्म, कुसुम शब्द नपुंसकलिङ्ग हैं।

हयः (घोड़ा), समयः (काल), जयः (जीत), रयः (वेग), नयः (नीति) एवं लयः (नाश) आदि अकारान्त यकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। किन्तु मय, किसलय (पल्लव), हृदय, इन्द्रिय एवं उत्तरीय शब्द नपुंसकलिङ्ग होते हैं।

वरः, अङ्कुरः, नरः, करः, चरः, ज्वरः, भारः, मारः आदि अकारान्त रकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। किन्तु द्वार, अग्र, चक्र, क्षिप्र, छिद्र, तीर, नीर, दूर, कृच्छ्र, रन्ध्र आदि कई शब्द नपुंसकलिङ्ग हैं।

वृषः आदि अकारान्त षकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। परन्तु पीयूष, पुरीष शब्द नपुंसकलिङ्ग हैं।

राक्षसः, वत्सः, वायसः आदि अकारान्त सकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। किन्तु पनस और साहस शब्द नपुंसकलिङ्ग हैं।

(द) देव, असुर, आत्म, स्वर्ग, गिरि, समुद्र, नख, केश, दन्त, स्तन, भुज, कण्ठ, खड्ग, शर, पङ्क, क्रतु, पुरुष, कपोल, गुल्फ, मेघ, रश्मि और दिवस शब्द तथा इनका अर्थ बताने वाले शब्द प्रायः पुंल्लिङ्ग होते हैं। उदाहरणार्थ—

देव—देवः, सुरः, अमरः, निर्जरः, विबुधः, त्रिदशः आदि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं। किन्तु देवता शब्द स्त्रीलिङ्ग है।

असुर—असुरः, दनुजः, दानवः एवं दितिजः शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

आत्म—क्षेत्रज्ञः शब्द पुंल्लिङ्ग है।

स्वर्ग—स्वर्गः, सुरालयः, देवलोकः एवं नाकः आदि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं। किन्तु 'दिव' शब्द स्त्रीलिङ्ग एवं 'त्रिविष्टप' शब्द नपुंसकलिङ्ग है।

गिरिः—गिरिः, पर्वतः, अचलः, अद्रिः, सानुमान् एवं भूधरः आदि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

समुद्र—समुद्रः, सिन्धुः, अब्धिः, पयोधिः, रत्नाकरः, पारावारः, सागरः आदि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

नख—नखः, करजः आदि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

केश—केशः, कचः, बालः, शिरोरुहः आदि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

दन्त—दन्तः, द्विजः, दशनः, रदः, रदनः, आदि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

इसी प्रकार स्तनः, कुचः शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

भुज—भुजः शब्द पुंल्लिङ्ग है परन्तु बाहुः, पुंल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग दोनों है।

कण्ठ—कण्ठः, गलः एवं शिरोधरः आदि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

खड्ग—खड्गः, असिः, करवालः आदि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

शर—शरः, सायकः आदि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

पङ्क—पङ्कः एवं कर्दमः आदि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

क्रतु—क्रतुः एवं अध्वरः आदि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

पुरुष—मनुष्यः, नरः, पुरुषः, पुमान् एवं ना आदि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

कपोल—कपोलः एवं गण्डः आदि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

गुल्फ—गुल्फः, प्रपदः आदि शब्द पुल्लिङ्ग हैं।

मेघ—मेघः, पयोधरः, वारिधरः, वारिदः, अम्बुदः, अम्बुधरः, जलधरः, वारिवाहः एवं पयोदः आदि शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। परन्तु 'अभ्रम्' शब्द नपुंसकलिङ्ग है।

रश्मि—रश्मिः, किरणः, मयूखः, करः, अंशुः आदि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

दिवस—दिवसः शब्द पुंल्लिङ्ग है। किन्तु दिन और अहन् शब्द नपुंसकलिङ्ग है।

(य) दार, अक्षत, लाज एवं असु शब्द पुंल्लिङ्ग तथा सदा बहुवचन होते हैं।

(क) इमन् प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। जैसे लघिमन्, महिमन्, गरिमन् एवं नीलिमन् आदि।

(ख) ऐसे समासान्त पद जिनके अन्त में अह्न, अह, रात्र शब्द हों वे पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा—पूर्वाह्णः, मध्याह्नः, अर्धरात्रः। किन्तु संख्यावाची शब्द के अन्त में आया हुआ 'रात्र' शब्द नपुंसकलिङ्ग होता है। यथा—द्विरात्रम्, त्रिरात्रम् आदि।

(ग) मरुत्, गरुत्, ऋत्विज्, ऋषि, राशि, ग्रन्थि, कृमि, ध्वनि, बलि, मौलि, कपि, मुनि, ध्वज, गज, हस्त, दूत, धूर्त्त, सूत इत्यादि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

(च) मासवाचक, ऋतुवाचक, रसवाचक, वर्णवाचक शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा—वैशाखः, ज्येष्ठः, वसन्तः, ग्रीष्मः, कटु, तिक्तः, कृष्णः आदि शब्द पुंल्लिङ्ग हैं। किन्तु ऋतुवाचक शरत् और वर्षा शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं।

स्त्रीलिङ्ग शब्द

(अ) अति, ऊ, मि, नि, क्तिन् और ई प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—अवनिः, चमूः, भूमिः, ग्लानिः, कृतिः एवं लक्ष्मीः।

(ब) ईकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं। जैसे श्रीः (लक्ष्मी), धीः (बुद्धि), ह्रीः (लज्जा), सरस्वती एवं नदी आदि। परन्तु सुधीः, प्रधीः, सेनानी, अग्रणीः शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

(स) आकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा माया, दया, लज्जा, श्रद्धा, लता, कृपा एवं करुणा आदि। किन्तु विश्वपा (भगवान्), हाहा (गन्धर्व का नाम) शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

(द) ऊकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा भ्रूः (भौं), भूः (पृथ्वी), वधूः (बहू), प्रसूः (माता), चमूः (सेना) आदि। किन्तु स्वयम्भूः (ब्रह्मा), हूहूः (गन्धर्व) आदि कुछ शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

(य) तल् प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा पटुता, मृदुता, लघुता, महत्ता एवं मूर्खता आदि।

(फ) ऊङ् और टाप् प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा कुरूः, विद्या एवं शोभा आदि।

(क) संख्यावाची शब्दों में एकोनविंशति (१९) से लेकर नवनवति (९९) पर्यन्त समस्त शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं।

(ख) निम्नलिखित शब्दों के पर्याय प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं :—

स्त्री—वामा, ललना, वनिता, महिला, योषित् एवं योषा आदि।

पृथ्वी—धरा, धरित्री, विश्वम्भरा, स्थिरा, अनन्ता, अचला एवं मेदिनी आदि।

नदी—सरित्, निम्नगा, स्रोतस्विनी, तटिनी, स्रोतस्वती आदि।

विद्युत्—चञ्चला, चपला, विद्युत एवं सौदामिनी आदि।

लता—वल्ली, लतिका एवं व्रततिः आदि ।

रात्रि—निशा, दोषा, क्षपा, त्रियामा एवं रजनी आदि ।

बुद्धि—धीः, मतिः प्रज्ञा एवं संवित् आदि ।

वाणी—गीः, वाक्, सरस्वती, एवं भारती आदि ।

(ग) ऋकारान्त मातृ, दुहितृ, स्वसृ, पोतृ और ननान्दृ शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं ।

(घ) सन्नन्त से बनी संज्ञाएं स्त्रीलिङ्ग होती हैं । यथा—जिज्ञासा, बुभुक्षा, मुमूर्षा एवं दिदृक्षा आदि ।

(ङ) तिथिवाचक शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं । यथा प्रतिपद्, द्वितीया एवं पूर्णिमा आदि ।

नपुंसकलिंग शब्द

(अ) भावार्थक ल्युट्, भावार्थक क्त तथा भावार्थ और कर्मार्थ ष्यञ्, यत्, य, ढक्, यक्, अञ्, अण्, वुञ् और छ प्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिङ्ग होते हैं । यथा—

ल्युट्—हसनम्, पठनम्, गमनम्, दर्शनम्, शयनम् और भोजनम् आदि ।

क्त—हसितम्, गतम्, गीतम्, जीवितम्, श्रुतम्, पठितम्, चलितम् आदि ।

त्व—प्रभुत्वम्, महत्त्वम, मूर्खत्वम् एवं पटुत्वम् आदि ।

ष्यञ्—चातुर्यम् एवं ब्राह्मण्यम् आदि ।

यत्—स्तेयम्, देयम् एवं गेयम् आदि ।

य—सख्यम् आदि ।

ढक्—कापेयम् आदि ।

यक्—आधिपत्यम् आदि ।

अञ्—औष्ट्रम् आदि ।

अण्—द्वैहायनम् आदि ।

वुञ्—पिता-पुत्रकम् आदि ।

छ—अच्छावाकीयम्, किरातार्जुनीयम् आदि ।

(ब) अव्ययीभावसमास तथा एकवचनान्त द्वन्द्व सर्वथा नपुंसकलिङ्ग होते हैं । यथा—अधिहरि, उपरामम् आदि ।

पाणिपादम्, अहिनकुलम् एवं पणवमृदङ्गम् आदि।

(स) समाहार द्विगुसमास भी नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। यथा—त्रिभुवनम्, पञ्चपात्रम् एवं चतुर्युगम् आदि। परन्तु कुछ द्विगुसमास स्त्रीलिङ्ग में भी होते हैं। यथा—पञ्चवटी एवं पञ्चमूली आदि।

(द) जिनके अन्त में अस्, इस् वा उस् हो ऐसे शब्द प्रायः नपुंसक होते हैं। यथा तपस्, यशस्, मनस्, पयस्, सरस्, अम्भस्, हविष् एवं धनुष् आदि।

(य) मन में अन्त होने वाला शब्द यदि दो स्वरों वाला हो और साथ ही कर्तृवाचक न हो तो नपुंसकलिङ्ग होता है। यथा चर्मन्, कर्मन् एवं नामन् आदि। परन्तु ब्रह्मन् शब्द पुंल्लिङ्ग भी है।

(फ) 'त्र' में अन्त होने वाले शब्द प्रायः नपुंसकलिङ्ग होते हैं। यथा—पात्रम्, पत्रम्, नेत्रम्, क्षेत्रम्, स्तोत्रम्, मित्रम् एवं छत्रम् आदि। किन्तु यात्रा, मात्रा, वरत्रा आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं।

(क) जिन शब्दों के अन्त में अकारान्त 'ल' हो वे नपुंसकलिङ्ग होते हैं। यथा—कूलम्, कुलम्, जलम्, बलम्, हलम् एवं स्थलम् आदि।

(ख) शत से लेकर ऊपर की संख्याएँ नपुंसक होती हैं। यथा शतम्, सहस्रम्, अयुतम् एवं लक्षम् आदि। किन्तु शत, प्रयुत तथा अयुत पुंल्लिङ्ग में भी होते हैं।

(ग) मुख, नयन, लोह, वन, मांस, रुधिर, कार्मुक, विवर, जल, हल, धन, अन्न, बल, कुसुम, शुल्व, पत्तन और रण शब्द तथा इनके पर्याय शब्द नपुंसकलिङ्ग होते हैं। परन्तु अप् शब्द स्त्रीलिङ्ग बहुवचनान्त होता है। साथ ही अर्थः (धन); विभवः (धन) शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं।

(घ) फलजातिवाचक शब्द प्रायः नपुंसकलिङ्ग होते हैं। यथा आम्रम्, आमलकम् आदि।

(ङ) छाया शब्द के साथ षष्ठी बहुवचन पद का समास हो तो उसका समस्त पद नपुंसकलिङ्ग होता है। यथा वृक्षच्छायम्, वटच्छायम् आदि।

(च) यदि संख्यावाचक शब्द आदि में और अन्त में रात्र शब्द हो तो नपुंसक लिङ्ग होता है। यथा द्विरात्रम्, पञ्चरात्रम् आदि।

त्रयोदश सोपान

पत्रलेखन प्रणाली

१—अवकाश के लिए आचार्य को प्रार्थनापत्र

श्रीमन्तः प्रधानाचार्यमहोदयाः,

आर० डी० कालेज सुचित्तागञ्ज, फैजाबाद ।

मान्याः !

सेवायां सविनयं निवेदनमिदम् यदहं दिनद्वयात् रुग्णोऽस्मि । विद्यालयमागन्तुं कथमपि न शक्नोमि । अतोऽहमष्टानां दिवसानामवकाशं याचे । आशासे, यत् निवेदनं स्वीकृत्य मामनुग्रहीष्यन्ति श्रीमन्तः । इति ।

श्रीमतामाज्ञाकारी शिष्यः—

विश्वनाथः सप्तमकक्षास्थः

४.९

दिनाङ्कः १८–७–६४

२—पुस्तक के लिए प्रकाशक को पत्र

श्रीप्रबन्धकमहोदयः,

चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी ।

श्रीमन् !

भवत्प्रकाशितं 'अनुवादचन्द्रिका' नाम पुस्तकं मया दृष्टम् । कृपया पुस्तकत्रयमधोल्लिखितस्थाने वी० पी० पी० द्वारा शीघ्रमेव प्रेषणीयम् ।

भवदीयः—प्रेमनाथः

५७, आर्यनगरम्,

लक्ष्मणपुरम् ।

दिनाङ्कः १–७–६५

३—परिषद् की सूचना

श्रीमन्तो मान्याः !

सविनयमेतद् निवेद्यते यद् आस्माकीनाया अखिलभारतीयसंस्कृतपरिषदः वार्षिकमधिवेशनम् आगामिन्यां चैत्रमासस्य चन्द्रवासरे सायंकाले अष्टवादन-समये 'मालवीय' महाकक्षे भविष्यति । सर्वेषामपि सदस्यानां समुपस्थितिः सविनयं प्रार्थ्यते ।

निवेदकः—

दिनाङ्कः १-२-६५ रामचन्द्रः (मन्त्री)

४—निमन्त्रणपत्र

श्रीमन्महोदय !

भवन्त एतद् विदित्वा नूनं हर्षमनुभविष्यन्ति यत्परमात्मनः महत्यानुकम्पया मम ज्येष्ठपुत्रस्य श्रीराजेन्द्रकुमारस्य शुभपाणिग्रहणसंस्कारः मथुरावास्तव्यस्य श्रीनिखिलचन्द्रस्य ज्येष्ठपुत्र्या सरोजिनीदेव्या सह आगामिन्यां ज्येष्ठमासस्य शुक्लपक्षस्य नवम्यां तिथौ रविवासरे रात्रौ अष्टवादनसमये सम्पत्स्यते । तदर्थ-मिदं निमन्त्रणपत्रं प्रेषयित्वा आशास्महे यद् भवन्तः सपरिवारमस्मिन् मङ्गलकार्ये निर्दिष्टसमये समागत्य शुभाशीर्वादप्रदानेन वरवधूयुगलमनुग्रहीष्यन्ति ।

७२, डालीगञ्ज, लक्ष्मणपुरम् दर्शनाभिलाषी—

दिनाङ्कः २-४-६५ सतीशचन्द्रः ।

५—मित्र को पत्र

वाराणसेय सं० विश्वविद्यालय-काशीतः

दिनाङ्कः २-५-६४

प्रियमित्र नारायण ! नमस्तेऽस्तु !

अत्र कुशलं तत्रास्तु । पत्रं प्राप्तम् । एतदवगत्य सर्वेऽपि हर्षमनुभवन्ति यद् भवान् वेदान्ताचार्यपरीक्षामुत्तीर्णः । सर्वे छात्राः साधुवादान् वितरन्ति । शेषमन्यत् कुशलम् । त्वरितं पत्रोत्तरं देयम् ।

अभिन्नहृदयः—

शिवप्रसादः ।

६—पिता को पत्र

काशीतः

तिथिः चैत्रशुक्ला ५

वि० सं० २०२०

श्रीमत्सु माननीयेषु पितृपादपद्मेषु ! सादरं प्रणतिः ।

अत्र कुशलं तत्रास्तु । अत्र वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालये मम प्रवेशो जातः । प्रवेशदिवसे पितृव्यः मया सह विश्वविद्यालयं गत्वा शुल्कन्यासमकरोत् । आचार्यैर्निर्दिष्टानि पाठ्यपुस्तकानि क्रीत्वा अहमध्ययने प्रवृत्तोऽस्मि । झटिति गृहस्य वृत्तं लेख्यम् । मातरं प्रति मे प्रणामः ।

भावत्कः आज्ञाकारी पुत्रः—

कृष्णकुमारः ।

चतुर्दश सोपान

वाग्व्यवहार के प्रयोग

(१) मनोरथानामगतिर्न विद्यते—मनोरथ के लिए कोई वस्तु अगम्य नहीं।

(२) स्वभावो दुरतिक्रमः—स्वभाव नहीं बदलता है।

(३) किं कर्तुमुद्यतोसि—क्या करना चाहते हो ?

(४) कर्तव्यं हि सतां वचः—सज्जनों की बात माननी चाहिए।

(५) शासने तिष्ठ भर्तुः—पति की आज्ञा के अनुसार कार्य करो।

(६) तिले तालं पश्यति—छोटी सी बात को बड़ी बात बना देता है।

(७) आमंत्रयस्व सहचरम्—मित्र से विदा हो लो।

(८) चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः—चक्र की नेमि के समान भाग्य-पंक्ति घूमती रहती है।

(९) शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्—शरीर धार्मिक कृत्यों के करने में मुख्य सहायक है।

(१०) इयं कथा मामेव लक्ष्यी करोति—यह कहानी मेरे ही विषय में है।

(११) न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्—रत्न ढूंढ़ा नहीं करता, वह तो ढूँढ़ा जाता है।

(१२) अमुष्य विद्या रसनाग्र नर्तकी—समस्त विद्याएँ उसकी जिह्वा पर थीं।

(१३) क्षीणभूयिष्ठायां क्षपायां—जब रात्रि समाप्तप्राय थी।

(१४) अन्यागतिर्नास्ति—दूसरा कोई चारा नहीं है।

(१५) तद्वचः मम हृदये शल्यं जातम्—उसके वचन ने मेरे हृदय पर बाण का काम किया।

(१६) अलमन्यथा गृहीत्वा—ऐसा न समझो।

(१७) न ते वचोऽभिनंदामि—मैं तुम्हारे वचनों का अनुमोदन नहीं करता।

(१८) अव्याजमनोहरं वपुः—प्रकृत्या सुन्दर शरीर।

(१९) चिन्ताविषघ्नोऽगदः—चिन्ता को मिटाने वाली दवा।

(२०) न त्वां तृणं मन्ये—मैं तुम्हें तिनके के बराबर भी नहीं समझता।

(२१) कस्मिन्नपि पूजार्हे अपराद्धा शकुन्तला—किसी पूज्य व्यक्ति के प्रति शकुन्तला ने अपराध किया है।

(२२) एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जति—गुणों के समूह में एक दोष छिप जाता है।

(२३) इदं मे इष्टसिद्धये कल्पेत—इससे मेरे अभीष्ट की सिद्धि हो जायेगी।

(२४) अतिस्नेहः पापशङ्की—अतिस्नेह से पाप की शङ्का होने लगती है।

(२५) पितेति मां स मानयति—यह पिता है ऐसा समझकर मुझे मानता है।

(२६) सुखमुपदिश्यते परस्य—दूसरों को उपदेश देना सरल है।

(२७) उमाख्यां स जगाम—वह उमा नाम से प्रसिद्ध हुई।

(२८) का च ते नामाक्षराणि—तुम्हारा नाम क्या है ?

(२९) यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्—अङ्ग-अङ्ग में जवानी भर गई।

(३०) सकलरिपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते—जिसके ऊपर तुम्हारे लड़कों ने समस्त शत्रुओं को जीतने की आशा बाँधी थी।

(३१) साहसे श्रीः प्रतिवसति—लक्ष्मी वीर पुरुष के ऊपर कृपा करती है।

(३२) धैर्यं निधेहि हृदये—धैर्य धारण करो।

(३३) दीर्घसूत्री विनश्यति—देर में करने वाला नष्ट हो जाता है।

(३४) प्राणव्ययेनापि—प्राणों को देकर भी।

(३५) अलं श्रमेण—परिश्रम करना व्यर्थ है।

(३६) मनो मे संशयमेव गाहते—मेरा मन अब भी शङ्कित है।

(३७) इदं प्रायेण तव कर्णपथमायातम्—सम्भवतः यह आपने सुन लिया हो।

(३८) सूचिभेद्यं तमः—घना अन्धकार।

(३९) अलमतिविस्तरेण—अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।

(४०) कालस्य कुटिला गतिः—समय की गति कुटिल है।

(४१) अलं निर्बंधेन—हठ करना व्यर्थ है, हठ मत करो।

(४२) शिखी केकाभिस्तिरयति मे वचनं-मोर अपनी बोली से मेरी आवाज को दबा लेता है।

(४३) तस्य धैर्यं न हीयते—उसका धैर्य क्षीण नहीं होता है।

(४४) अतिपरिचयादवज्ञा—अत्यधिक परिचय से अपमान होता है।

(४५) बहुकौतुकः स देशः—वह देश बहुत कौतुकों से युक्त है।

(४६) चिन्ता ज्वरो मनुष्याणाम्—चिन्ता बहुत कष्ट देती है।

(४७) न कामचारो मयि शङ्कनीयः—तुम्हें मेरे ऊपर व्यभिचार की शङ्का नहीं करनी चाहिए।

(४८) हर्षस्थाने अलं विषादेन—प्रसन्न होने के स्थान पर दुःखी मत हो।

(४९) हृदयंगमः परिहासः—आनन्दप्रद हास्य।

(५०) दासी महिषीपदं ग्राहिता, देवीभावं गमिता—दासी को रानी की पदवी दे दी गई।

(५१) प्रस्तूयतां विवादवस्तु—झगड़े वाला मामला बताओ।

(५२) किं निमित्तं ते संतापः—तुम्हारे संताप का क्या कारण है?

(५३) ममापि नाम दशाननस्य परैः पराभवः—ऐं! क्या मुझ रावण की भी दूसरे से पराजय।

(५४) एवं सर्वगुणोपेतं पुत्रं विद्वांसमाप्नुहि—इस प्रकार सम्पूर्ण गुण-विशिष्ट विद्वान् पुत्र प्राप्त करो।

(५५) एतदासनमास्यताम्—कृपया इस आसन पर विराजिये।

(५६) कथं जीवितं धारयिष्यामि—मैं कैसे जीवन धारण करूँगा?

(५७) अस्ति कश्चिद्विशेषः—इसमें कुछ विशेषता है।

(५८) अस्ति मे विशेषोऽद्य—मैं आज पहले की अपेक्षा अच्छा हूँ।

(५९) इति मे वितर्कः—ऐसा मेरा अनुमान है।

(६०) आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया—बड़ों की आज्ञा अविचारणीय होती है।

(६१) धारासारैर्महती वृष्टिर्बभूव—मूसलाधार पानी बरसा।

(६२) महदपि राज्यं मे न सौख्यमावहति—मुझे बड़ा राज्य भी सुख प्रदान नहीं करता है।

(६३) बलवती शिरोवेदना मां बाधते—मेरे सिर में भयंकर दर्द है।

(६४) प्रभातप्राया रजनी—सुबह होने वाली है।

(६५) सर्वं दैवायत्तम्—समस्त वस्तुएँ भाग्य पर आश्रित हैं ।

(६६) विश्वासभूमिः स नृपस्य—वह राजा का विश्वासपात्र है ।

(६७) विषयेषु मनो मा संनिवेशय—विषयों में मन को मत लगाओ ।

(६८) कियदवशिष्टं रजन्याः—रात्रि कितनी शेष है ?

(६९) शनैर्निद्रा निमीलितलोचनं मामकार्षीत्—नींद ने मेरी आँखों को धीरे धीरे बन्द कर दिया ।

(७०) अतिपिनद्धेन वल्कलेन नियंत्रितास्मि—मैं इस तङ्ग वल्कल से जकड़ दी गई हूँ ।

(७१) अनुगृहीतोऽस्मि—मैं अनुगृहीत हो गया ।

(७२) लघुसंदेशपदा सरस्वती—संक्षिप्त संदेश ।

(७३) सहस्व मासद्वयं—दो मास तक प्रतीक्षा करो ।

(७४) लोकव्यवहारदृष्ट्या—सांसारिक व्यवहार की दृष्टि से ।

(७५) हृदयं संस्पृष्टमुत्कंठया—हृदय उत्कण्ठा से प्रभावित हो गया ।

(७६) वरं मृत्युर्न पुनरपमानः—अपमान से मौत श्रेष्ठ है ।

(७७) अलमन्यथा गृहीत्वा—ऐसा न समझो ।

(७८) नास्ति बन्धुसमं बलम्—बन्धु सदृश कोई बल नहीं है ।

(७९) आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा—आनन्दपूर्ण चक्षु से ।

(७९ अ) किं तव वृत्तम्—तुम्हारा क्या हुआ ।

(८०) चक्षुर्विषयमतिक्रान्तः—वह लुप्त हो गया ।

(८१) भिन्नरुचिर्हि लोकः—सबों की रुचि विभिन्न प्रकार की होती है ।

(८२) यथाभिलषितं क्रियताम्—जैसा चाहो वैसा करो ।

(८३) येन केनापि प्रकारेण—किसी प्रकार ।

(८४) मनुष्याः स्खलनशीलाः—भूल होना मनुष्य का स्वभाव ही है ।

(८५) कष्टमभ्यापन्नः—विपदवस्था में पड़ा हुआ ।

(८६) तंतुनाभः स्वत एव तंतून् सृजति—मकड़ी स्वयं अपने तन्तुओं को बुनती है ।

(८७) भर्तुः प्रतीपं मा स्म गमः—पति के विपरीत न होना ।

(८८) गमिष्याम्युपहास्यताम्—मैं हँसी का भाजन बनूँगा ।

(८९) न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति—स्त्री को स्वतंत्रता नहीं मिलनी चाहिए।

(९०) किं वृत्तिमुपजीवत्यार्यः—आपका क्या व्यवसाय है?

(९१) निःस्पृहस्य तृणं जगत्—योगी के लिए संसार तिनके के तुल्य है।

(९२) इति कर्णपरम्परया श्रुतमस्माभिः—ऐसा हमने कानोंकान सुना है।

(९३) यौवनपदवीमारूढः—वह युवावस्था को प्राप्त हो गया है।

(९४) अपि कुशलं भवतः—आप अच्छे तो हैं?

(९५) समवायो हि दुस्तरः—एकता अत्यन्त कठिन है।

(९६) विहगाः समदुःखा इव चुक्रुशुः—मानो सहानुभूति में पक्षीगण क्रन्दन करने लगे।

(९७) कतिपयदिवसस्थायिनी यौवनश्रीः—युवावस्था अल्प काल तक ही रहती है।

(९८) परिच्छेदातीतः—जिसकी परिभाषा न हो सके।

(९९) शान्ते पानीयवर्षे—जब पानी बरसना बन्द हो गया।

(१००) सत्यमेव जयते—सत्य की ही विजय होती है।

(१०१) भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैः—फल आने पर वृक्ष झुक जाते हैं।

(१०२) परसुखमसहिष्णुः—दूसरे के सुख से ईर्ष्या करने वाला।

(१०३) चित्ते भयं जनयति—मन में भय उत्पन्न हो रहा है।

(१०४) सीदति मे हृदयम्—मेरा हृदय डूबा जा रहा है।

(१०५) अपत्यमन्योन्यसंश्लेषणं पित्रोः—सन्तान माता-पिता के बन्धन की गाँठ है।

(१०६) विषयसुखनिरतो जीवितमत्यवाहयत्—विषयसुख में लीन होकर उसने जीवन बिताया।

(१०७) तव न कदापि मया विप्रियं कृतम्—मैंने कभी आपकी बुराई नहीं की।

(१०८) मम विकारः परिच्छेदातीतः—मेरी मनोव्यथा वर्णनातीत है।

(१०९) आचारं प्रतिपद्यस्व—लोकाचारानुसार प्रणाम करो।

(११०) वसुधां तस्य हस्तगामिनीमकरोत्—वसुधा को उसके हाथों में सौंप दिया।

(१११) सा दारुणा प्रतिज्ञा लोके प्रकाशतां गता—वह भयंकर प्रतिज्ञा संसार में ज्ञात हो गई।

(११२) पञ्चवर्षदेशीयः—लगभग पाँच वर्ष का।

(११३) वरं तत्कालोपनता तित्तिरी न पुनर्दिवसांतरिता मयूरी—नौ नक़द न तेरह उधार।

(११४) स्वहितपरायणो मा भूः—स्वहितपरायण मत होओ, केवल अपना ही हित मत देखो।

(११५) अस्मिन् दुर्जने कथं तवैवं विश्वासः—इस दुष्ट में तेरा ऐसा विश्वास कैसे हुआ?

(११६) आ परितोषात् विदुषाम्—विद्वानों को सन्तोष हो जाने तक।

(११७) कामात् क्रोधोऽभिजायते—काम से क्रोध पैदा होता है।

(११८) आमूलात् श्रोतुमिच्छामि—आरम्भ से ही सुनना चाहता हूँ।

(११९) अयम् बालकः रूपेण पितरम् अनुहरति—यह बालक रूप में पिता से मिलता जुलता है।

(१२०) सत्येन शपामि—मैं सत्य की शपथ खाता हूँ।

(१२१) क्व तत्र भवती कामन्दकी—पूज्या कामन्दकी देवी कहाँ हैं?

(१२२) मां स भवान् नियुङ्क्ते—मुझे वह श्रीमान् जी नियुक्त कर रहे हैं।

(१२३) भवत्पादपद्मेषु—आपके चरणकमलों में।

(१२४) सेवितोऽपि महाजनैः—यद्यपि बड़े लोगों से सेवित हुआ।

(१२५) अथ कतमं पुनर्ऋतुमधिकृत्य गास्यामि—किस ऋतु के बारे में गाऊँ?

(१२६) अये महत् दुःखमापतितम्—हा बड़ा दुःख आ पड़ा।

(१२७) अहो पापौघदलनदक्षा भगवती भागीरथी—अहा! पापराशि के नाश में दक्ष भगवती गङ्गा हैं।

(१२८) सत्यमेव सतां व्रतम्—सच बोलना ही सज्जनों का व्रत है।

(१२९) स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपम्—जो अपने स्वामी को अच्छी सलाह नहीं देता वह निन्दित भृत्य है।

(१३०) किमु यत्र चतुष्टयम्—जहाँ चारों हैं वहाँ का क्या कहना?

(१३१) क्षणादूर्ध्वं न जानामि विधाता किं करिष्यति—क्षणभर में न मालूम विधाता क्या करेगा ?

(१३२) न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्—इसके ऊपर बाण न छोड़ो।

(१३३) शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः—यद्यपि यह आश्रम शान्त है तथापि मेरी भुजा फड़क रही है।

(१३४) न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति—विषयों के उपभोग से कामनाएँ कभी शान्त नहीं होतीं।

(१३५) नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्—यदि भगवान् की आराधना नहीं की तो तप से क्या लाभ ?

(१३६) ततः परं किं वक्तव्यम्—इसके अतिरिक्त और क्या कहना है ?

(१३७) इतस्तावदागम्यताम् देवि ! —देवि ! पहले इधर तो आओ।

(१३८) वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतम्—चुप रहना अच्छा है किन्तु झूठ बोलना नहीं।

(१३९) अज्ञानिनो हि माययाऽभिभूयन्ते—केवल अज्ञानी ही माया से अभिभूत होते हैं।

(१४०) मातृजङ्घा हि वत्सस्य स्तम्भीभवति बन्धने—माँ की जांघ बछड़े के बन्धन में खूँटा बन जाती है।

(१४१) हा हा देवि स्फुटति हृदयम् !—हा देवि ! मेरा हृदय फटा जा रहा है।

(१४२) यथादिशति भवान्—जैसी आपकी आज्ञा।

(१४३) भोगैः न तृप्यन्ति जनाः—लोग भोग से तृप्त नहीं होते हैं।

(१४४) सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्—सत्य और प्रिय बोलना चाहिए।

(१४५) धनानि जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्—बुद्धिमान को परोपकार में धन और जीवन का उत्सर्ग कर देना चाहिए।

(१४६) सहसा किमपि न कुर्यात्—एकाएक कुछ नहीं कर बैठना चाहिए।

(१४७) अभिज्ञानशाकुन्तलाख्येन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः—अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक लेकर हम लोगों को उपस्थित होना चाहिए।

(१४८) असत्यवादिनि कोऽपि न विश्वसिति—झूठ बोलने वाले पर कोई विश्वास नहीं करता है।

(१४९) गुरुजनेषु विनयेन वर्तताम्—गुरुजनों के प्रति विनयपूर्वक बर्त्ताव करो।

(१५०) स्तोकात् मुक्तः—बहुत थोड़े से बचा।

(१५१) शुचो वशं मा गमः—शोक मत करो।

(१५२) ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा—ब्रह्ममय तेज से चमकता हुआ सा।

(१५३) महतां पदमनुविधेयम्—बड़ों के मार्ग का अनुसरण करना चाहिये।

(१५४) मानुषीं गिरमुदीरयामास—मनुष्य की सी बोली बोला।

(१५५) अतिरमणीयं कथावस्तु—कथा का विषय अत्यन्त रमणीक है।

(१५६) सकलशास्त्रपारंगतः—समस्त विद्याओं का पण्डित।

(१५७) आपदर्थे धनं रक्षेत्—आपत्ति के दिनों के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए।

(१५८) अश्रुतिमभिनयति—न सुनने का बहाना करता है।

(१५९) अग्निं साक्ष्ये आधाय—अग्नि को साक्षी बनाकर।

(१६०) सागरे नद्यो विलीयन्ते—नदियाँ समुद्र में विलीन हो जाती हैं।

(१६१) वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा—मेरी ओर से उस राजा को कहना।

(१६२) को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम्—विद्वानों के लिए कौन सा विदेश है ? प्रिय बोलने वालों के लिए कौन पराया है ?

(१६३) अभिव्यक्तायां चन्द्रिकायां किं दीपिकापौनरुक्त्येन—चाँदनी में दीपक जलाने से क्या ?

(१६४) शशिना सह याति कौमुदी—चांदनी चन्द्रमा के साथ चली जाती है।

(१६५) मां प्रति त्वं नासि वीरः—मेरे विचार से तुम वीर नहीं हो।

(१६६) योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भारः—समस्त राज्यभार योग्य मंत्री पर छोड़ दिया गया है।

(१६७) लतायां पूर्वलूनायां प्रसूनस्यागमः कुतः—वेल के पहले ही कट चुकने पर फूल कहाँ से आ सकते हैं।

(१६८) स्वेदसलिलस्नाताऽपि पुनः स्नातुम् अवातरत्—पसीने से नहाई हुई भी पुनः स्नानार्थ नीचे उतरी।

(१६९) पुनरपि वक्तुकाम इव आर्यो लक्ष्यते—आप फिर कुछ कहना चाहते हैं ?

(१७०) पुत्रः शत्रुरपण्डितः—मूर्ख पुत्र शत्रु के समान है।

संस्कृत सूक्तियों का हिन्दी-अनुवाद

अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति—आलस्य बुरी बला है।

अजीर्णे भोजनं विषम्—अजीर्ण में भोजन विष तुल्य है।

अतिपरिचयादवज्ञा, संततगमनादनादरो भवति—अधिक मेल-जोल से अवज्ञा होती है और किसी के यहां अधिक जाने से अनादर।

अतिलोभो न कर्तव्यः—अत्यधिक लोभ नहीं करना चाहिए।

अति सर्वत्र वर्जयेत्—अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप। अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप॥

अधिकस्याधिकं फलम्—जितना गुड़ डालोगे उतना मीठा होगा।

अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः—अक्लमंद को इशारा ही काफी है।

अनुहुंकुरुते घनध्वनिं नहि गोमायुरुतानि केसरी—सिंह मेघगर्जन सुनकर तो दहाड़ता है, गीदड़ों की ध्वनि सुनकर नहीं।

अन्धस्येवान्धलग्नस्य विनिपातः पदे पदे—अन्धा गुरु बहरा चेला, दोनों नरक में ठेलमठेला।

अन्ते मतिः सा गतिः—अन्त मता सो गता।

अन्तः शाक्ता बहिःशैवाः—अन्दर से काले बाहर से गोरे।

अन्धस्य वर्तकीलाभः—अन्धे के हाथ बटेर लगना।

अन्धो वीक्षितुमुद्यतः—आँख न दीदा काढ़े कसीदा।

अन्तः शत्रुः बहिः सुहृद्—ऊपर से पानी देना नीचे से जड़ काटना।

अपराधित्वेऽपि धृष्टता—एक तो चोरी दूसरे सीना जोरी।

अपि धन्वन्तरिर्वैद्यः किं करोति गतायुषि ?—आई को कौन टाले।

अप्राप्यं नाम नेहास्ति धीरस्य व्यवसायिनः—धीर और व्यवसायी व्यक्ति के लिए संसार में कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं।

अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः—कटु परन्तु हितकर बात कहने और सुनने वाले व्यक्ति दुर्लभ हैं।

अभद्रं भद्रं वा विधिलिखितमुन्मीलयति कः—विधि का लिखा मिटाया नहीं जा सकता।

अभावादल्पता वरा—न होने की अपेक्षा थोड़ा अच्छा।

अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते—जब लग पैसा गाँठ में तबलग ताको यार।

अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः—एक तो करेला दूसरे नीम चढ़ा।

अरण्यरोदनं व्यर्थं भस्मनि हुतमेव च—अन्धे के आगे रोवे अपना दीदा खोवे।

अर्थो हि कन्या परकीय एव—कन्या पराया धन होती है।

अर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः—जगत में धन के समान मित्र कोई नहीं।

अर्थार्थी जीवलोकोऽयं श्मशानमपि सेवते—अपनी गरज बावली होती है।

अर्द्धो घटो घोषमुपैति नूनम्—अधजल गगरी छलकत जाय।

अल्प आयो व्ययो महान्—अस्सी की आमद चौरासी का खर्च।

अल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः—समय थोड़ा है और विघ्न बहुत।

अवधानरहितं श्रवणं हि व्यर्थम्—एक कान से सुनना दूसरे से निकाल देना।

अविनीता रिपुर्भार्या—नम्रता-रहित पत्नी शत्रु है।

अव्यवस्थित चित्तस्य प्रसादोऽपि भयंकरः—जिसका चित्त ठिकाने न हो, उसकी कृपा भी भयावनी होती है।

अस्थिरं क्षुद्रसौहृदम्—ओछे की प्रीति बालू की भीति।

अस्थिरं जीवितं लोके—जीवन का भरोसा नहीं।

अस्थिरे धनयौवने—धन जोवन का गरब न कीजै।

अज्ञता कस्य नामेह नोपहासाय जायते—अज्ञान के कारण किसका उपहास नहीं होता है।

आत्मनाशे जगन्नाशः—आप मरे जग परलै।

आत्मीयाः सदोषाश्चेत् को लाभः परदूषणैः—अपना पैसा खोटा तो परखने वाले का क्या दोष ।

आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः—जैसे को तैसा ।

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः—आलस्य बुरी बला है ।

आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्—आहार-व्यवहार में लज्जा न करे ।

इतः कूपस्ततस्तटी—आगे कूआँ पीछे खाईं ।

इतो देयं ततो ग्राह्यम्—इस हाथ दे उस हाथ ले ।

इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः—न इधर के रहे न उधर के रहे ।

इतो मुक्तस्ततो बद्धः—आसमान से गिरा खजूर में अटका ।

इतो लाभस्ततः क्षतिः—आमों की कमाई नींबू में गँवाई ।

इदं च नास्ति न परं च लभ्यते—न इधर के रहे न उधर के रहे ।

इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः—अपने मुँह मियाँ मिट्ठू ।

उत्पतितोऽपि चणकः शक्तः किं भ्राष्ट्रकं भङ्क्तुम् ? अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता ।

उत्पद्यन्ते विलीयन्ते—जो पैदा हुआ वह मरेगा ।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्—उदारचरित लोगों के लिए वसुधा ही कुटुम्ब है ।

उदारस्य तृणं वित्तम्—पैसा हाथ की मैल है ।

उद्धारः क्रेतृलोपकः—उधार दिया, ग्राहक खोया ।

उद्धारः स्नेहनाशकः—उधार मुहब्बत की कैंची है ।

उद्धारभोजनं तृणतापसेवनम्—उधार का खाना, फूस का तापना एक है ।

उद्योगः पुरुषलक्षणम्—उद्योग ही पुरुष का लक्षण है ।

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये—सीख न दीजै बानरा जो बए का घर जाय ।

उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम्—गर्म अङ्गार हाथ को जलाता है, ठण्डा काला करता है ।

एकः कपोतपोतः श्येनाः शतशोऽभिधावन्ति—एक अनार सौ बीमार ।

एकं कृत्यं लोकपरलोकफलदम्—एक पुण्य दूसरे फलियाँ ।

एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः—गुणों के समुदाय में अकेला दोष ऐसे छिप जाता है जैसे चन्द्रमा की किरणों में कलङ्क।

एक लक्ष्ये सर्वसिद्धिर्लक्ष्याधिक्ये न काचन—एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।

कवयः किं न पश्यन्ति ?—जहाँ न जाय रवि वहाँ जाय कवि।

कष्टः खलु पराश्रयः—पराधीन सपने सुख नाहीं।

कष्टादपि कष्टतरं परगृहवासः परान्नं च—पराए घर में निवास और पराए अन्न से निर्वाह सबसे बड़े दुःख हैं।

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा—सुख-दुःख सबके साथ लगे हुए हैं।

काकोऽपि जीवति चिराय बलिञ्च भुङ्क्ते—अपना पेट तो कुत्ता भी भर लेता है।

काकमांसं शुनोच्छिष्टमतिस्वल्पञ्च तत्पुनः—एक अण्डा वह भी गन्दा।

कान्ता रूपवती शत्रुः—सुरूप पत्नी शत्रु है।

कायः कस्य न वल्लभः—जान किसे प्यारी नहीं।

कालस्य कुटिला गतिः—काल की चाल टेढ़ी होती है।

काश्मीरजस्य कटुतापि नितान्तरम्या—दुधार गाय की लात भली।

किन्न कुर्वन्ति स्वार्थिनः—अपनी गरज बावली होती है।

किं मर्दितोऽपि कस्तूर्यां लशुनो याति सौरभम्—रखिए मेलि कपूर में हींग न होय सुगन्ध।

किमिष्टमन्नं खरसूकराणाम्—बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद ?

कुपुत्रेण कुलं नष्टम्—डूबा वंस कबीर का उपजे पूत कमाल।

कुरूपता शीलतया विराजते—सुन्दर शील से कुरूपता भी खिल उठती है।

कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते—फटे पुराने वस्त्र भी स्वच्छ रहने से खिल उठते हैं।

कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितः—प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं।

कोऽर्थी गतो गौरवम् ?—माँगन गए सो मर गए।

को जानाति जनो जनार्दनमनोवृत्तिः कदा कीदृशी—मेरे मन कछु और है, विधिना के कछु और।

क्रुद्धे विधौ भजति मित्रममित्रभावम्—विधाता क्रुद्ध हो तो मित्र भी शत्रु बन जाते हैं।

क्रोधो मूलमनर्थानाम्—क्रोध अनर्थों की जड़ है।

कृपणानुसारि च धनम्—धन कृपण के पीछे चलता है।

कृशे कस्यास्ति सौहृदम् ?—निर्बल से कौन मित्रता करता है ?

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः—वास्तविक सौन्दर्य वही है जो प्रतिक्षण नया होता जाये।

क्षमया किं न साध्यति—क्षमा से क्या नहीं सिद्ध होता ?

खलः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति॥ } अपना ढेंढर न देखे, दूसरों की फूली निहारे।

गङ्गां हिमाचलं नयति—उलटे बाँसबरेली को।

गतं शोचन्त्यपण्डिता
गतस्य शोचनं नास्ति
गते शोको निरर्थकः } अब पछताये होत क्या जब चिड़ियों ने चुग लिया खेत।

गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः—जगत भेड़-चाल है।

गहना कर्मणो गतिः—करम की गति न्यारी।

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः—गुणियों में गुण ही पूज्य होते हैं, न बाह्यचिह्न न अवस्था।

गुणैर्विरहितोऽपि गुणाकराख्यः—आँखों के अन्धे नाम नयन सुख।

चकास्ति योग्येन हि योग्यसंगमः—योग्य योग्य के साथ ही अच्छा लगता है।

चन्दनदाहः शमीरक्षा—अशर्फियां लुट गईं कोयलों पर मुहर।

चाण्डालोऽपि नरः पूज्यो यस्यास्ति विपुलं धनम्—पैसा चाण्डाल को भी पूज्य बना देता है।

चिन्तासमं नास्ति शरीरशोषणम्—चिन्ता के समान शरीर को कोई भी नहीं सुखाता।

छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति—आपत्तियां कभी अकेले नहीं आतीं।

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः—बूँद २ से घड़ा भर जाता है।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः—जो आयेगा सो जायेगा राजा रंक फकीर।

जामाता दशमो ग्रहः—दामाद दसवाँ ग्रह है।

जिते चित्ते जितं जगद्—मन के हारे हार है मन के जीते जीत ।

जीवो जीवस्य जीवनम्—जीव जीव का जीवन है ।

तरुणो कच इव नीचः कौटिल्यं नैव विजहाति—कुत्ते की दुम कभी सीधी होने को नहीं ।

तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम्—ऊधो! मन माने की बात ।

तिष्ठत्येकां निशां चन्द्रः श्रीमान् संपूर्णमण्डलः—चार दिन की चाँदनी और फिर अँधेरी रात ।

त्यजन्त्युत्तमसत्त्वा हि प्राणानपि न सत्पथम्—प्राण जाय पर वचन न जाई ।

त्रैलोक्ये दीपको धर्मः—धर्म त्रिलोकी का दीपक है ।

दर्दुरा यत्र वक्तारस्तत्र मौनं हि शोभनम्—जहाँ मेढक वक्ता हों वहां मौन ही अच्छा ।

दशाननोऽहरत्सीतां बन्धनं च महोदधेः—सीता तो चुराई रावण ने और बांधा गया समुद्र ।

दारिद्र्यदोषेण करोति पापम्—मरता क्या न करता ।

दाशेरस्य मुखे जीरः—ऊँट के मुँह में जीरा ।

दुरितस्य दुःखम्—आदि बुरा अन्त बुरा ।

दुर्लभं भारते जन्म मानुष्यं तत्र दुर्लभम्—भारतवर्ष में जन्म दुर्लभ है और फिर मनुष्यता तो और भी दुर्लभ है ।

दुष्टत्वे सर्वे समाः—एक थैली के चट्टे बट्टे ।

दूरतः पर्वता रम्याः—दूर के ढोल सुहावने ।

दैवमेव हि साहाय्यं कुरुते सत्त्वशालिनाम्—जो अपनी सहायता करता है, ईश्वर भी उसकी सहायता करता है ।

दैवो दुर्बलघातकः—गरीब को खुदा की मार ।

दैवी विचित्रा गतिः—ईश्वर की माया कहीं धूप कहीं छाया ।

दोषोऽपि गुणतां याति प्रभोर्भवति चेत्कृपा—राम भए जेहि दाहिने, सबै दाहिने हाथ ।

द्रव्येण सर्वे वशाः—धन से सब अधीन हो जाते हैं ।

धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः—धर्म हीन मनुष्य पशुतुल्य है ।

न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे—आग लगने पर कूआं नहीं खोदा जाता।

न तोषात् परमं सुखम्—संतोष सबसे बड़ा सुख है।

न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते—धर्मवृद्धों की अवस्था नहीं देखी जाती।

न महान्ति कर्माणि भवन्ति गूढम्—ऊँट की चोरी और झुके झुके।

न यद्भावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा—अनहोनी होती नहीं होनी होवन हार।

न्यूनायेऽधिकव्ययः—अस्सी की आमद चौरासी का खर्च।

नवा वाणी मुखे मुखे—जितना मुंह उतनी बातें।

न सुवर्णे ध्वनिस्तादृग् यादृक्कांस्ये प्रजायते—थोथा चना बाजे घना।

न हि सर्वविदः सर्वे—सभी सब कुछ नहीं जानते।

न हि विचलति मैत्री दूरतोऽपि स्थितानाम्—जो है जिसको भावता सो ताही के पास।

न हि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते—अच्छी वस्तु स्वयमेव प्रसिद्ध हो जाती है।

न हि कश्चिन्निजं तक्रमम्लमित्यभिभाषते—अपनी छाछ को कोई खट्टा नहीं कहता।

न ह्येकेन हस्तेन तालिका संप्रपद्यते—एक हाथ से ताली नहीं बजती।

न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति—श्रेष्ठ लोग किए हुए उपकार को नहीं भूलते।

नास्ति ज्ञानात्परं सुखम्—ज्ञान से बढ़कर कोई सुख नहीं है।

नास्ति मोहसमो रिपुः—मोह से बढ़कर कोई शत्रु नहीं है।

नारीणां भूषणं पतिः—पति स्त्रियों का भूषण है।

नात्मयत्नं विना सिद्धिः—आप मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता।

निजो निज एव परः परश्च—अपना अपना गैर गैर।

निजाधीनं स्वगौरवम्—अपनी इज्जत अपने हाथ।

निजापराधे भृत्यस्य भर्त्सनम्—आप हारे बहू को मारे।

निरक्षरभट्टाचार्यः—काला अक्षर भैंस बराबर।

निर्धनता सर्वापदामास्पदम्—गरीब को सुख कहां ?

निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्—मन चंगा तो कठौती में गंगा ।

निर्वाणदीपे किमु तैलदानम्—अब पछताये होत क्या जब चिड़ियां चुग गईं खेत ।

निस्सारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान्—ऊँची दूकान फीका पकवान ।

निश्चिन्तो नरः सुखी—ऊधो का लेना न माधव का देना ।

निष्कापव्ययः पणरक्षणम्—अशर्फियां लुटीं कोयलों पर मुहर ।

नैकस्मिन्नेव कान्तारे सिंहयोर्वसतिः क्वचित्—रहे क्यों एक म्यान असि दोय ।

पथ्यं भिषक्शताद् वरम्—एक परहेज न सौ हकीम ।

पयो गते किं खलु सेतुबन्धः—साँप निकल गया लकीर पीटा करो ।

पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम्—सांप को दूध पिलाने से उसका विष ही बढ़ता है ।

परसदननिविष्टः को लघुत्वं न याति—पर घर कबहुँ न जाइये जात घटत है मान ।

परोपकाराय सतां विभूतयः—कह रहीम परकाज हित संपत्ति सँचहिं सुजान ।

परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम् ।
धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्तुमहात्मनः ॥ } पर उपदेश कुशल बहुतेरे ।
जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥

पश्येह मधुकरीणां सञ्चितमर्थं हरन्त्यन्ये—अण्डे सेवे कोई बच्चे लेवे कोई ।

पापानामाकरो लोभः—लोभ पापों की खान है ।

पाषाणे मृगमदलेपः—अरहर की टट्टी गुजराती ताला ।

पित्तेन दूने रसने सिताऽपि तिक्तायते—अन्धे को सब अन्धे ही दीखते हैं ।

प्रज्ञा नाम बलं श्रेष्ठं निष्प्रज्ञस्य बलेन किम् ? अक्ल बड़ी कि भैंस ।

प्राघुणपूजा दिनद्वयम्—एक दिन मेहमान, दो दिन मेहमान, तीसरे दिन बलाए जान ।

प्रायोगच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रापदां भाजनम्—भाग्य का मारा जहाँ जाता है, विपत्ति भी उसे वहीं जा घेरती है ।

प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते—जैसी संगत वैसी रंगत ।

प्रालेयलेहान्न तृषाविनाशः—ओस चाटे प्यास नहीं बुझती ।

प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति—बिन घरनी घर भूत का डेरा ।

फलं भाग्यानुसारतः—फल भाग्य के अनुसार होता है ।

बधिरस्य पुरो गीतम्—भैंस के आगे बीन बजावे भैंस खड़ी पगुराय ।

बधिरान्मन्दकर्णः श्रेयान्—न होने की अपेक्षा थोड़ा अच्छा ।

बलं मूर्खस्य मौनित्वम्—मूर्ख का बल मौन ।

बहूनामप्यसाराणां संहतिः कार्यसाधिका—बहुत निबल मिलि बल करैं, करैं जो चाहैं सोय ।

बालः शिक्षयति वृद्धान्—अण्डा सिखावे बच्चे को तू चीं चीं मत कर ।

बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्—भूखे को कुछ नहीं सूझता ।

भद्रो भद्रे खलः खले—अदले का बदला ।

भवितव्यता बलवती—होनहार फिरती नहीं ।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः—मुक्ति तथा बन्धन का कारण मन है ।

मनःपूतं समाचरेत्—अन्तःकरण के अनुसार आचरण करे ।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्—महात्माओं के मन, वचन और कर्म में एकरूपता होती है ।

मर्कटस्य सुरापानं ततो वृश्चिकदंशनम्—एक तो करेला, दूसरे नीम चढ़ा ।

मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्—पैदा होने वाला मरेगा ।

महाजनो येन गतः स पन्थाः—बड़ों का मार्ग ही ठीक मार्ग है ।

महानपि प्रसङ्गेन नीचं सेवितुमिच्छति—आवश्यकता पड़ने पर गधे को भी बाप कहा जाता है ।

महान् महत्येव करोति विक्रमम्—बड़ा मनुष्य बड़े पर ही पराक्रम दिखाता है ।

मातर्लक्ष्मि तव प्रसादवशतो दोषा अपि स्युर्गुणाः—पैसे से दोष भी गुण बन जाता है ।

मातासमं नास्ति शरीरपोषणम्—माता के समान शरीर का कोई पोषक नहीं है ।

मित्रस्य निकषो विपत्—मित्र की पहचान आपत्ति में ही होती है ।

मूर्खस्य हृदयं शून्यम्—मूर्ख का हृदय विचार रहित होता है ।

मेघो गिरिजलधिवर्षी च—उदार मनुष्य पात्र का विचार नहीं करते हैं।

मौनं सर्वार्थसाधकम्—एक चुप हजार को हराता है।

यः क्रियावान् स पण्डितः—जिसके कर्म अच्छे हैं वही पण्डित है।

यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि—अन्धों में काना राजा।

यत्र शूरगतिर्नास्ति कातरः किं करिष्यति ?—ऊँट घोड़े बहे जायँ, गधा कहे कितना पानी।

यथा चित्तं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रिया—जैसा मन वैसी वाणी, जैसी वाणी वैसी क्रिया।

यथा देशस्तथा भाषा—जैसा देश वैसी भाषा।

यथा बीजं तथाङ्कुरः—जैसा कारण वैसा कार्य।

यदेव रोचते यस्मै भवेत् तत्तस्य सुन्दरम्—सूरदास जाको जासों हित, सोई ताहि सुहात।

यद्देवेन ललाटपत्रलिखितं तत्प्रोज्झितुं कः क्षमः ?—विधि का लिखा मिटाया नहीं जा सकता।

यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नो करणीयं नाचरणीयम्—लोकमर्यादा का पालन अवश्य करना चाहिए।

यस्य पार्श्वे धनन्नास्ति सोऽपि धनपाल उच्यते—आंखों के अन्धे नाम नयन-सुख।

याचको याचकं दृष्ट्वा श्वानवद् गुर्गुरायते—कुत्ता कुत्ते का वैरी।

याचनान्तं हि गौरवम्—मांगन गए सो मर गए।

या यस्य प्रकृतिः स्वभावजनिता केनापि न त्यज्यते—स्वभाव नहीं बदलता है।

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते }
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव तु } आधी छोड़ सारी को धावै। आधी रहै न सारी पावै॥

यो यद् वपति बीजं हि लभते सोऽपि तत्फलम्—जैसा बोयेगा वैसा काटेगा।

वक्रे विधौ वद कथं व्यवसायसिद्धिः—जब भाग्य ही सीधा न हो तो कार्य कैसे सिद्ध हो।

वस्त्रपूतं पिवेज्जलम्—वस्त्र से छानकर ही जल पीना चाहिए।

विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः—चित्त-वृत्तियों के रूप विचित्र हैं।

विद्या रूपं कुरूपिणाम्—कुरूप लोगों का रूप विद्या है।

विद्वान् सर्वत्र पूज्यते—विद्वान् की सब जगह पूजा होती है।

विधिरहो वलवानिति मे मतिः—होनहार फिरती नहीं।

विनाशकाले विपरीतबुद्धिः—बुरे दिनों के आने पर बुद्धि मारी जाती है।

विभूषणं मौनमपण्डितानाम्—मौन मूर्खों का भूषण है।

विषकुम्भाः पयोमुखाः—अन्दर से काले बाहर से गोरे।

विषमयोगो न युज्यते—आधा तीतर आधा बटेर।

वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः—पैसा रहा न पास यार मुँह से नहिं बोलैं।

वृद्धस्य तरुणी विषम्—बूढ़े के लिए युवती विष है।

वृद्धा नारी पतिव्रता—वृद्ध स्त्री पतिव्रता होती है।

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्—धर्म का प्रथमसाधन शरीर ही है।

शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः—सीधो अँगुलियों से घी नहीं निकलता।

शिरसि लिखितं लंघयति कः?—विधि का लिखा मिटाया नहीं जा सकता।

शुभस्य शीघ्रम्—भला काम शीघ्र ही कर लेना चाहिए।

सत्यमेव जयते—सत्य की ही विजय होती है।

सन्तुष्टः सदा सुखी—आए की खुशी न गए का गम।

सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः—आग लगने पर कूँआ नहीं खोदा जाता।

सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते—अपयश से मौत भली।

सर्वं कार्यवशाज्जनोऽभिरमते, तत्कस्य को वल्लभः?—सबको काम प्यारा है, चाम प्यारा नहीं।

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः—सारी जाती देखकर आधी लेय बचाय।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्—बिना विचारे जो करै, सो पाछे पछताय।

सुखमास्ते निःस्पृहः पुरुषः—जिसको कुछ नहिं चाहिए, सोई शाहंशाह ।

स्वदेशजातस्य नरस्य नूनं गुणाधिकस्यापि भवेदवज्ञा—घर का जोगी जोगड़ा आन गाँव का सिद्ध ।

स्वातन्त्र्यमिष्टप्रदम्—अपना हाथ जगन्नाथ ।

हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापिवा—मित्र की पहचान विपत्ति में ही होती है ।

अँग्रेजी लोकोक्तियों के संस्कृत पर्याय

A bad descendant destroys the line. कुपुत्रेण कुलं नष्टम् ।

A bad workman quarrels with his tools. कञ्चुकमेव निन्दति शुष्कस्तनी नारी ।

A bird in hand is better than two in the bush. वरमद्य कपोतो न श्वो मयूरः, अध्रुवाद् ध्रुवं वरम् ।

A drop in the ocean. दाशेरस्य मुखे जीरः, न स्तोकेन घस्मरतृप्तिः,

A figure amog cyphers. निरस्तपादपे देश एरण्डोऽपि द्रुमायते, यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि ।

A fog cannot be dispelled by a fan. न तारालोकेन तमिस्रनाशः, प्रालेयलेहान्न तृषाविनाशः ।

A friend in need is a friend indeed. स सुहृद् व्यसने यः स्यात् ।

A light purse is a heavy curse. दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी, कष्टं निर्धनिकस्य जीवितमहो दारैरपि त्यज्यते ।

An empty vessel makes much noise. अर्धो घटो घोषमुपैति नूनम् ।

A nine day's wonder. तिष्ठत्येकां निशां चन्द्रः श्रीमान् संम्पूर्णमण्डलः ।

Avarice is the root of all evils. नास्ति तृष्णासमो व्याधिः ।

As you sow so shall you reap. यो यद्वपति बीजं हि लभते सोऽपि तत्फलम् ।

A wolf in lamb's clothing. विषकुम्भं पयोमुखम् ।

Barking dogs seldom bite. ये गर्जन्ति मुहुर्मुहुर्जलधारा वर्षन्ति नैतादृशाः ।

Birds of the same feather flock together. मृगा मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति ।

Calamity is the touch stone of brave mind. अश्नुते स हि कल्याणं व्यसने यो न मुह्यति ।

Christmas comes but once a year. कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा ।

Coming events cast their shadows before. आमुखापाति कल्याणं कार्यसिद्धिं हि शंसति ।

Content is happiness. संतोषः परमं सुखम् ।

Cry is the only strength of a child. बालानां रोदनं बलम् ।

Cut your coat according to your cloth. हिताहितं वीक्ष्य निकाममाचरेत् ।

Death forgives none. मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम् ।

Depandence is indeed painful. कष्टः खलु पराश्रयः ।

Diligence is mother of good luck. उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः ।

Distance lends enchancement to the view. दूरस्थाः पर्वता रम्याः ।

Do at Rome as the Romans do. वर्तमानेन कालेन वर्तयन्ति मनीषिणः ।

Do what the great men do. महाजनो येन गतः स पन्थाः ।

East or west home is the best. जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।

Every cock fights best on its own dung hill. निजसदन-निविष्टः श्वा न सिंहायते किम् ?

Every potter praises his own pot. सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति ।

Example is better than precept. परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम् । धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनः ॥

Familiarity breads contempt. अतिपरिचयादवज्ञा भवति ।

Fool to others, to himself sage. इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः ।

Fortune favours the brave. उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः ।

Gather thistles and expect pickles. यादृशमुप्यते बीजं तादृशं फलमाप्यते ।

Gods will be done. ईश्वरेच्छा बलीयसी ।

Good men prove their usefulness by deeds not by words. नीचो वदति न कुरुते, वदति न साधुः करोत्येव ।

Great cry, liltle wool निःसारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान् ।

Half a loaf is better than no bread. अभावादल्पता वरा ।

He gives thrice who gives in a trice. शुभस्य शीघ्रम् ।

If the sky falls we shall catch larks न मुनिः पुनरायातो न चासौ वर्धते गिरिः ।

It is a great sin to harm a person who comes for shelter. अङ्कमारुह्य सुप्तं हि हत्वा किं नाम पौरुषम् ।

It is no use crying over spilt milk. निर्वाणदीपे किमु तैल-दानम् ।

It is too late to lock the stable-door when the steel is stolen. न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे ।

It is wise to take refuge under the great. कर्तव्यो मह-दाश्रयः ।

It takes two to make a row. एकस्य हि विवादोऽत्र दृश्यते न तु प्राणिनः ।

Let by gone, be by gone. गतस्य शोचनं नास्ति ।

Light sorrows speak but deeper ones are dumb. अगाधजलसञ्चारी न गर्वं याति रोहितः ।

Little knowledge is a dangerous thing. अल्पविद्या भयंकरी ।

Many a little makes a mickle. जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः ।

Might is right. वीरभोग्या वसुन्धरा ।

Misfortunes never come alone. छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ।

Much ado about nothing. बह्वारम्भे लघुक्रिया ।

New lords new laws. नवाङ्गनानां नव एव पन्थाः ।

No pity with out mercy. को धर्मः कृपया विना ।

No pains no gains. न हि सुखं दुःखैर्विना लभ्यते ।

None would like to be friend of a wicked person. अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति ।

One trying for better got worst. रत्नाकरो जलनिधिरित्यसेवि धनाशया । धनं दूरेऽस्तु वदनमपूरि क्षारवारिभिः ॥

Out of the frying pan into the fire. बन्धनभ्रष्टो गृहकपोतश्चिल्लाया मुखे पतितः ।

Prevention is better than cure. प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ।

Pride goeth before a fall. अतिदर्पे हता लङ्का ।

Slow and steady wins the race. शनैः पन्थाः शनैः कन्था शनैः पर्वतलङ्घनम् ।

The king is the strength of the weak. दुर्बलस्य बलं राजा ।

There are men and men. नवा वाणी मुखे मुखे ।

The virtuous make good their promise. अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ।

Those palmy days are gone. हा हन्त सम्प्रति गतानि दिनानि तानि ।

Time once past can not be recalled. गतः कालो न चायाति ।

Tit for tat. कण्टकेनैव कण्टकम् ।

To kill two birds with one stone. एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा ।

Two of the traders seldom agree. याचको याचकं दृष्ट्वा श्वानवद् गुर्गुरायते ।

Union is strength. संघे शक्तिः कलौ युगे ।

Wealth is the root of all calamities. अर्थमनर्थं भावय नित्यम् ।

Wealth is great attraction. को न याति वशं लोके मुखे पिण्डेन पूरितः ।

When good cheer is lacking, the friends will be packing. एतत्तु मां दहति नष्टधनाश्रयस्य, यत्सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति ।

Where there is peace at home there is no need of judge. यत्र चौरा न विद्यन्ते तत्र किं स्यान्निरीक्षकैः ।

Wicked persons commit fault and good men suffer. खलः करोति दुर्वृत्तं तद्धि फलति साधुषु ।

अंग्रेजी संस्कृत शब्दावली

Academy	शिक्षालयः
Accountant	संख्यातृ
Accountant general	महागणनाध्यक्षः
Acknowledgement	प्राप्तिपत्रम्
Act	अधिनियमः

Administration	प्रशासनम्
Administrator	प्रशासकः
Advocate	अधिवक्तृ
Agent	अभिकर्तृ
Agitation	आन्दोलनम्
Air-Conditioned	वातनियंत्रित ताप
Application	आवेदनपत्रम्
Autocracy	एकतन्त्रम्
Autonomy	स्वायत्तशासनम्
Ballot-box	मतपेटिका
Ballot-paper	मतपत्रम्
Biology	जीवविज्ञानम्
Blood pressure	रक्तचापः
Bond	बन्धपत्रम्
Broad-Cast	प्रसारणम्
Budget	आयव्ययकम्
Cabinet	मन्त्रिमण्डलम्
Calendar	तिथिपत्रम्
Census	जनगणना
Chairman	सभापतिः
Chancellor	कुलपतिः
Chief judge	मुख्यन्यायाधीशः
Chief minister	मुख्यमंत्रिन्
Code	संहिता
Commission	आयोगः
Commissioner	आयुक्तः
Committee	समितिः
Commonwealth	राष्ट्रमण्डलम्

Communism	साम्यवादः
Conference	सम्मेलनम्
Constitution	संविधानम्
Context	प्रकरणम्
Control	नियन्त्रणम्
Co-operation	सहयोगः
Copyright	प्रकाशनाधिकारः
Court	न्यायालयः
Declaration	घोषणा
Delegate	प्रतिनिधिः
Delegation	प्रतिनिधिमण्डलम्
Democracy	लोकतन्त्रम्
Direction	निर्देशः
District	मण्डलम्
Election	निर्वाचनम्
Embassy	दूतावासः
Federal	संघीयम्
Finance	वित्तम्
Formula	सूत्रम्
Fund	निधिः
Gazette	राजपत्रम्
Government	शासनम्
Governor	राज्यपालः
Grant	अनुदानम्
Handi crafts	हस्तशिल्पम्
House of people	लोकसभा
Industry	उद्योगः
Institution	संस्था
International	अन्ताराष्ट्रियम्

Land-revenue	भूराजस्वम्
Law	विधिः
Legislative assembly	विधानसभा
Legislative council	विधानपरिषद्
Legislature	विधानमण्डलम्
Member	सदस्यः
Motion	प्रस्तावः
Nation	राष्ट्रम्
Office	कार्यालयः
Officer	पदाधिकारी
Ordinance	अध्यादेशः
Organization	संघटनम्
Patron	संरक्षकः
Polling station	मतदानस्थानम्
Post-office	पत्रालयः
President	राष्ट्रपतिः, प्रधानः
Procedure	प्रक्रिया
Publicity	प्रचारः
Record	अभिलेखः
Regional	प्रादेशिकम्
Republic	गणराज्यम्
Rule	नियमः
Tax	करः
Technology	शिल्पविज्ञानम्
Theory	सिद्धान्तः
Traffic	यातायातम्
Treaty	संधिः
Union	संघः

Vacancy रिक्तस्थानम्
Warrant अधिपत्रम्
Writ आदेशलेखः

हिन्दी में अनुवाद करो :—

नीतिमञ्जरी

अर्थाऽऽगमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥
ऋणकर्ता पिता शत्रुर्माता च व्यभिचारिणी।
भार्या रूपवती शत्रुः, पुत्रः शत्रुरपण्डितः॥
अनभ्यासे विषं विद्या, अजीर्णे भोजनं विषम्।
विषं सभा दरिद्रस्य, वृद्धस्य तरुणी विषम्॥
आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥
अवश्यं भाविनो भावा भवन्ति महतामपि।
नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहिशयनं हरेः॥
यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किन्न पीयते॥
न दैवमपि सञ्चिन्त्य त्यजेदुद्योगमात्मनः।
अनुद्योगेन तैलानि तिलेभ्यो नाप्तुमर्हति॥
उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः॥
यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्।
एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति॥
पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।
तस्मात्पुरुषकारेण यत्नं कुर्यादतन्द्रितः॥

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥
माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥
रूपयौवनसंपन्ना विशालकुलसम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥
काचः काञ्चनसंसर्गाद्धत्ते मारकतीं द्युतिम् ।
तथा सत्सन्निधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम् ॥
नाऽद्रव्ये निहिता काचित्क्रिया फलवती भवेत् ।
न व्यापारशतेनापि शुकवत्पाठ्यते बकः ॥
कीटोऽपि सुमनःसङ्गादारोहति सतां शिरः ।
अश्माऽपि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः ॥
गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः ।
आस्वाद्यतोयाः प्रवहन्ति नद्यः समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः ॥
नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां शृङ्गिणान्तथा ।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥

स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी दशशतकरधारी ज्योतिषां मध्यचारी ।
विधुरपि विधियोगाद्ग्रस्यते राहुणाऽसौ लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः ॥
सुजीर्णमन्नं, सुविचक्षणः सुतः, सुशासिता स्त्री, नृपतिः सुसेवितः ।
सुचिन्त्य चोक्तं, सुविचार्य यत्कृतं, सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम् ॥

असम्भवं हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय ।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति ॥
विपदि धैर्यमथाऽभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता, युधि विक्रमः ।
यशसि चाऽभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥
सम्पदि यस्य न हर्षो, विपदि विषादो, रणे च धीरत्वम् ।
तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरलम् ॥
शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम् ।
मतिमताञ्च विलोक्य दरिद्रतां विधिरहो बलवानिति मे मतिः ॥

व्योमैकान्तविहारिणोऽपि विहगाः सम्प्राप्नुवन्त्यापदं,
बध्यन्ते निपुणैरगाधसलिलान्मत्स्याः समुद्रादपि ।
दुर्नीतं किमिहास्ति ? किं सुचरितं ? कः स्थानलाभे गुणः
कालो हि व्यसनप्रसारितकरो गृह्णाति दूरादपि ॥

संलापितानां मधुरैर्वचोभिर्मिथ्योपचारैश्च वशीकृतानाम् ।
आशावतां श्रद्दधतां च लोके किमर्थिनां वञ्चयितव्यमस्ति ॥

प्राक्पादयोः पतति खादति पृष्ठमांसं कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम् ।
छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति ॥

घर्मार्तं न तथा सुशीतलजलैः स्नानं, न मुक्तावली,
न श्रीखण्डविलेपनं सुखयति प्रत्यङ्गमप्यर्पितम् ।
प्रीत्या सज्जनभाषितं प्रभवति प्रायो यथा चेतसः,
सद्युक्त्या च पुरस्कृतं सुकृतिनामाकृष्टिमन्त्रोपमम् ॥

परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम् ।
धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनः ॥

को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशः स्मृतो,
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहु प्रतापार्जितम् ।
यद्दंष्ट्रानखलाङ्गलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते,
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः ॥

घृतकुम्भसमा नारी तप्ताऽङ्गारसमः पुमान् ।
तस्माद् घृतञ्च वह्निञ्च नैकत्र स्थापयेद् बुधः ॥

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव अन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ।

वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं
वरं क्लैब्यं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम् ।
वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचि
र्वरं भिक्षाशित्वं न च परधनास्वादनसुखम् ॥

वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्टवृषभो,
वरं वेश्या पत्नी न पुनरविनीता कुलवधूः ।

वरं वासोऽरण्ये न पुनरविवेकाधिपपुरे,
वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः ॥
वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं द्रुमालयं पक्वफलाम्बु भोजनम् ।
तृणानि शय्याः, परिधानवल्कलं न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥
अर्थाः पादरजोपमा, गिरिनदीवेगोपमं यौवनम्
आयुष्यं जललोलबिन्दुचपलं, फेनोपमं जीवितम् ।
धर्मं यो न करोति निन्दितमतिः स्वर्गाऽर्गलोद्घाटनं,
पश्चात्तापयुतो जरापरिगतः शोकाग्निना दह्यते ॥
धनेन किं यो न ददाति चाश्नुते बलेन किं यो न रिपून्न बाधते ।
श्रुतेन किं यो न च धर्ममाचरेत् किमात्मना यो न जितेन्द्रियो भवेत् ॥
शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा यस्तु क्रियावान्पुरुषः स विद्वान् ।
सुचिन्तितं चौषधमातुराणां न नाममात्रेण करोत्यरोगम् ॥
न स्वल्पमप्यध्यवसायभीरोः करोति विज्ञानविधिर्गुणं हि ।
अन्धस्य किं हस्ततलस्थितोऽपि, प्रकाशयत्यर्थमिह प्रदीपः ॥
मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतसः,
पात्रं यत्सुखदुःखयोः सह भवेन्मित्रेण तद्दुर्लभम् ।
ये चान्ये सुहृदः समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुला-
स्ते सर्वत्र मिलन्ति तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत् ॥

हिमालय-वर्णनम्

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य
स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥
यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सम्
मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे ।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च
पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम् ॥

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य
हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम् ।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते
निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥
आमेखलं संचरतां घनानां
छायामधः सानुगतां निषेव्य ।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते
शृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः ॥
पदं तुषारस्रुतिधौतरक्तं
यस्मिन्नदृष्ट्वापि हतद्विपानाम् ।
विदन्ति मार्गं नखरन्ध्रमुक्तैः
मुक्ताफलैः केसरिणां किराताः ॥
भागीरथीनिर्झरसीकराणां
वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः ।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातै-
रासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः ॥
यज्ञांगयोनित्वमवेक्ष्य यस्य
सारं धरित्रीधरणक्षमं च ।
प्रजापतिः कल्पितयज्ञभागं
शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत् ॥

रघुवंश–नवनीतम्

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥
क्वसूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥
लोकान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम् ।
संततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे ॥

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या ।
तदन्तरे सा विरराज धेनुः दिनक्षपामध्यगतेव संध्या ॥
अलं महीपाल ! तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात् ।
न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ॥
स त्वं निवर्तस्व विहाय लज्जां गुरोर्भवान्दर्शितशिष्यभक्तिः ।
शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्षं न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति ॥
एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च ।
अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम् ॥
सर्वत्र नो वार्त्तमवेहि राजन्नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम् ।
सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा ॥
रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यं तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम् ।
न कारणात्स्वाद् बिभिदे कुमारः प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात् ॥
स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥

गीता–कर्मयोगः

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥
योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥
सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥
हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥

श्रियो निवासस्थानानि

वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे दक्षे नरे कर्मणि वर्तमाने ।
अक्रोधने दैवपरे कृतज्ञे, जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्णसत्त्वे ॥
नाकर्मशीले पुरुषे वसामि न नास्तिके साङ्करिके कृतघ्ने ।
न भिन्नवृत्ते न नृशंसवर्णे न चाविनीते न गुरुष्वसूयके ॥

ये चाल्पतेजोबलसत्त्वमानाः क्लिश्यन्ति कुप्यन्ति च यत्र तत्र।
न चैव तिष्ठामि तथाविधेषु नरेषु संगुप्तमनोरथेषु॥
यश्चात्मनि प्रार्थयते न किञ्चिद् यश्च स्वभावोपहतान्तरात्मा।
तेष्वल्पसंतोषपरेषु नित्यं नरेषु नाहं निवसामि देवि॥
सत्यासु नित्यं प्रियदर्शनासु सौभाग्ययुक्तासु विभूषितासु।
वसामि नारीषु पतिव्रतासु कल्याणशीलासु विभूषितासु॥

भारतवर्षस्य महिमा

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥
ज्ञानीम नैतत् क्व वयं विलीने स्वर्गप्रदे कर्मणि देहबन्धम्।
प्राप्स्याम, धन्याः खलु ते मनुष्या ये भारते नेन्द्रियविप्रहीनाः॥
अहो भुवः सप्त समुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत्।
गायन्ति यत्रत्यजना मुरारेः कर्माणि भद्राण्यवतारवन्ति॥
अहो अमीषां किमकारि शोभनं
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः॥
न यत्र वैकुण्ठकथा सुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम्॥
कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्
क्षणायुषां भारतभूजयो वरम्।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः
संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः॥

विद्याप्रशंसा

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद् धर्मं ततः सुखम् ॥
न चौरहार्यं न च राजहार्यं
न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि ।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं
विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् ॥
मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते
कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम् ।
लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्त्तिं
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ॥
विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः ।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम्
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः ॥
कामधेनुगुणा विद्या ह्यकाले फलदायिनी ।
प्रवासे मातृसदृशी विद्या गुप्तं धनं स्मृतम् ॥
पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगतं धनम् ।
कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम् ।
अन्नदानं परं दानं विद्यादानं ततः परम् ।
अन्नेन क्षणिका तृप्तिर्यावज्जीवं च विद्यया ॥
विद्या समुन्नतिपथं विशदीकरोति
बुद्धिं विचारविषये प्रखरीकरोति ।
कर्त्तव्यपालनपरां धियमादधाति
विद्या सखा परमबन्धुरथेह लोके ॥
धनं धनं नैव मतं बुधानां
विद्यैव वित्तं मतमस्ति तेषाम् ।
चौरो न यां चोरयितुं समर्थो
भूपोऽपहर्तुं न च यां समर्थः ॥

विद्याधनं श्रेष्ठधनं तन्मूलमितरद्धनम् ।
दानेन वर्धते नित्यं न भाराय च नीयते ॥
तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम् ।
तपसा किल्विषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥

हास्याय

कमले कमला शेते हरः शेते हिमालये ।
क्षीराब्धौ च हरिः शेते मन्ये मत्कुणशंकया ॥
स्वयं पञ्चमुखः पुत्रौ गजाननषडाननौ ।
दिगम्बरः कथं जीवेदन्नपूर्णा न चेद् गृहे ॥
असारे खलु संसारे सारं श्वशुरमन्दिरम् ।
हरो हिमालये शेते हरिः शेते तु सागरे ॥
सदा वक्रः सदा क्रूरः सदा मानधनापहः ।
कन्याराशिस्थितो नित्यं जामाता दशमो ग्रहः ॥
मेरुः स्थितोऽतिदूरे मनुष्यभूमिं परां परित्यज्य ।
भीतो भयेन चौर्याच्चौराणां हेमकाराणाम् ॥
परान्नं प्राप्य दुर्बुद्धे मा प्राणेषु दयां कृथाः ।
दुर्लभानि परान्नानि प्राणा जन्मनि जन्मनि ॥
यावज्जीवेत् सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥
वैद्यराज नमस्तुभ्यं यमराजसहोदर ।
यमस्तु हरति प्राणान् वैद्यः प्राणान् धनानि च ॥
द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं गेहे मे नित्यमव्ययीभावः ।
तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्यां बहुव्रीहिः ॥
अत्तुं वाञ्छति वाहनं गणपतेराखुं क्षुधार्तः फणी
तं च क्रौञ्चपतेः शिखी च गिरिजासिंहोऽपि नागाननम् ।
गौरी जह्नुसुतामसूयति कलानाथं कपालानलो
निर्विण्णः स पपौ कुटुम्बकलहादीशोऽपि हालाहलम् ॥

एका भार्या प्रकृतिमुखरा चञ्चला च द्वितीया
पुत्रश्चैको भुवनविजयी मन्मथो दुर्निवारः ।
शेषः शय्या शयनमुदधौ वाहनं पन्नगारिः
स्मारं स्मारं स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारिः ॥

तातोऽगस्त्येन पीतश्चरणतलहतो वल्लभोऽन्येन रोषा-
दावाल्याद्विप्रवर्य्यैः स्ववदनविवरे धारिता वैरिणी मे ।
गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजानिमित्तं
तस्मात्खिन्ना सदाऽहं द्विजवरसदनं सर्वथैव त्यजामि ॥

या पाणिग्रहलालिता सुसरला तन्वी सुवंशोद्भवा
गौरी स्पर्शसुखावहा गुणवती नित्यं मनोहारिणी ।
सा केनापि हृता तया विरहितो गन्तुं न शक्नोम्यहम्
रे भिक्षो तव कामिनी ? नहि नहि, प्राणप्रिया यष्टिका ॥

भो ब्रह्मन् भवता समं न घटते संग्रामवार्ताऽपि नो,
सर्वे हीनबला वयं, बलवतां यूयं स्थिता मूर्धनि ।
यस्मादेकगुणं शरासनमिदं सुव्यक्तमुर्वीभुजा-
मस्माकं भवतां पुनर्नवगुणं यज्ञोपवीतं बलम् ॥

कृष्णः क्रीडितवान् गोभिरिति गोतुल्यबुद्धिषु ।
पक्षपातवती लक्ष्मीरीहा देवी पतिव्रता ॥

इतरतापशतानि यदृच्छया
विलिखितानि सहे चतुरानन ।
अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं
शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख ॥

प्रहेलिका

अपदो दूरगामी च साक्षरो न च पण्डितः ।
अमुखः स्फुटवक्ता च यो जानाति स पण्डितः ॥ (लेखपत्रम्)

वने वसति को वीरो योऽस्थिमांसविवर्जितः ।
असिवत् कुरुते कार्यं, कार्यं कृत्वा वनं गतः ॥
(कुलालदोरकः)

दन्तैर्हीनः शिलाभक्षी निर्जीवो बहुभाषकः ।
गुणस्यूतिसमृद्धोऽपि परपादेन गच्छति ॥ (उपानत्)

कृष्णमुखी न मार्जारी द्विजिह्वा न च सर्पिणी ।
पञ्चभर्त्री न पाञ्चाली यो जानाति स पण्डितः ॥ (लेखनी)

वृक्षाग्रवासी न च पक्षिराज-
त्रिनेत्रधारी न च शूलपाणिः ।
त्वग्वस्त्रधारी न च सिद्धयोगी
जलं च बिभ्रन्न घटो न मेघः ॥
(नारिकेलफलम्)

वृक्षाग्रवासी न च पक्षिजातिस्तृणं च शय्या न च राजयोगी ।
सुवर्णकायो न च हेमधातुः पुंसश्च नाम्ना न च राजपुत्रः ॥
(आम्रः)

चक्री त्रिशूली न हरिर्न शम्भु-
र्महान् बलिष्ठो न च भीमसेनः ।
स्वच्छन्दचारी नृपतिर्न योगी
सीतावियोगी न च रामचन्द्रः ॥ (वृषभः)

एकचक्षुर्न काकोऽयं बिलमिच्छन् न पन्नगः ।
क्षीयते वर्धते चैव न समुद्रो न चन्द्रमाः ॥
(सूचिका)

न तस्यादिर्न तस्यान्तो मध्ये यस्तस्य तिष्ठति ।
तवाप्यस्ति ममाप्यस्ति यदि जानासि तद्वद ॥
(नयनम्)

सर्वस्वापहरो न तस्करगणो रक्षो न रक्ताशनः
सर्पो नैव बिलेशयोऽखिलनिशाचारी न भूतोऽपि च ।
अन्तर्धानपटुर्न सिद्धपुरुषो नाप्याशुगो मारुत-
स्तीक्ष्णास्यो न तु सायकस्तमिह ये जानन्ति ते पण्डिताः ॥
(मत्कुणः)

अन्योक्तयः

एक एव खगो मानी वने वसति चातकः ।
पिपासितो वा म्रियते याचते वा पुरन्दरम् ॥

भो राजहंस किमिति त्वमिहागतोऽसि
योऽसौ बकः स इह हंस इति प्रतीतः ।
तद् गम्यतां त्वरितमेव पुनः स्वभूमौ
यावद् वदन्ति बक एष न मूढलोकाः ॥

भुक्ता मृणालपटली भवता निपीता-
न्यम्बूनि यत्र नलिनानि निषेवितानि ।
रे राजहंस ! वद तस्य सरोवरस्य
कृत्येन केन भवितासि कृतोपकारः ॥

अस्ति यद्यपि सर्वत्र नीरं नीरजमण्डितम् ।
रमते न मरालस्य मानसं मानसं विना ॥

गाङ्गमम्बु सितमम्बु यामुनं कज्जलाभमुभयत्र मज्जतः ।
राजहंस तव सैव शुभ्रता चीयते न च न चापचीयते ॥

नीरक्षीरविवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषे चेत् ।
विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः ॥

सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।
प्रकृतिरियं सत्ववतां न खलु वयस्तेजसो हेतुः ॥

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने ।
विक्रमार्जितसत्त्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ॥

पिबन्ति मधु पद्मेभ्यो भृङ्गाः केसरधूसराः ।
हंसाः शैवालमश्नन्ति धिग्दैवमसमञ्जसम् ॥

सैव सैव सरसी रमणीया यत्र यत्र वलते तव रागः ।
राजहंस रसिक स्मरणीया श्रीमता तदपि मानसकेलिः ॥

पञ्चदश सोपान

स्त्रीप्रत्यय प्रकरण

जिन प्रत्ययों के लगाने से पुँल्लिङ्ग शब्द स्त्रीलिङ्ग हो जाता है उनको स्त्री प्रत्यय कहते हैं। मुख्यस्त्री प्रत्यय टाप् (आ) और ङीप् (ई) हैं।

१—(अजाद्यतष्टाप्) अजा आदि (अजा, एडका, कोकिला, चटका, अश्वा, मूषिका, बाला, होडा, पाका, वत्सा, मन्दा, विलाता, पूर्वापिहाणा, अपरापहाणा, क्रुञ्चा, उष्णिहा, देवविशा, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, मध्यमा, दंष्ट्रा) तथा अकारान्त शब्दों के आगे स्त्रीलिङ्ग में टाप् (आ) होता है। यथा—

अज + आ = अजा, एडक + आ = एडका, अश्व + आ = अश्वा, बाल + आ = बाला, उष्णिह् + आ = उष्णिहा, देवविश् + आ = देवविशा, भुञ्जान + आ = भुञ्जाना, गंग + आ = गंगा इत्यादि।

२—टाप् के जोड़ने के पूर्व यदि शब्द में 'क' अन्त आवे और उसके पूर्व 'अ' हो तो 'अ' के स्थान में 'इ' हो जाती है। यथा—

मूषक + टाप् (आ) = मूषिक + आ = मूषिका, कारक + टाप् (आ) = कारिका, सर्वक + टाप् = सर्विक + आ + सर्विका, मामक + टाप् = मामिक + आ = मामिका।

परन्तु यह नियम तभी लगेगा जब 'क' किसी प्रत्यय का हो और टाप् के पूर्व सुप् प्रत्ययों में से कोई न लगे हों।

३—(षिद्गौरादिभ्यश्च) षित शब्दों (नर्तक; खनक, पथिक आदि) तथा गौरादि गण के शब्दों (गौर, मनुष्य, हरिण, आमलक, वदर, उभय, भृङ्ग, अनडुह् , नट, मङ्गल, मण्डल, बृहत्) शब्दों के परे स्त्रीलिङ्ग में ङीष् (ई) प्रत्यय होता है। यथा—नर्तकी, पथिकी, गौरी आदि।

४—(पुंयोगादाख्यायाम्) पुँल्लिङ्ग शब्द जो नर का द्योतक हो, उससे मादा बनाने के लिए ङीष् जोड़ा जाता है। यथा—गोपः—गोपी, शूद्रः–शूद्री।

५—(ऋन्नेभ्यो ङीप्) ऋकारान्त और नकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों के बाद

ङीप् (ई) लगाकर स्त्रीलिंग शब्द बनाया जाता है। यथा—कर्तृ-कर्त्री, दण्डिन्-दण्डिनी, राजन्-राज्ञी, श्वन्-शुनी।

६—(वयसि प्रथमे। वयस्यचरम इति वाच्यम्।) प्रथम वयस् (अन्तिम अवस्था को छोड़कर) का बोध कराने वाले शब्दों के अनन्तर ङीप् लगता है। यथा—कुमारः—कुमारी। इसी प्रकार किशोरी, वधूटी इत्यादि। किन्तु वृद्धा, स्थविरा।

७—(उगितश्च) जिसमें उकार और ऋकार का लोप हो जाता है उन प्रत्ययों (मतुप्, वतुप्, इयसु, तवतु, शतृ) से बने हुए शब्दों के बाद स्त्रीलिङ्ग में ईकार होता है। यथा—भवत्-भवती, श्रीमत्-श्रीमती, जानत्-जानती, गृह्णत्-गृह्णती इत्यादि।

८—(टिड्ढाणञ्०) निम्नलिखित शब्दों के बाद ङीप् लगाया जाता है—कर शब्द से अन्त होने वाले; जैसे भोगकर-भोगकरी।

नद, चोर, देव, ग्राह, गर, प्लव—नदी, चोरी, देवी, ग्राही, गरी, प्लवी।

ढक्, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नञ्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ् और क्वरप् प्रत्ययान्त शब्द—जैसे, सुपर्णी-सौपर्णेयी, इन्द्र-ऐन्द्री, उत्स-औत्सी। इस प्रकार ऊरुद्वयसी, ऊरुदघ्नी, ऊरुमात्री, पञ्चतयी, आक्षिकी, लावणिकी, यादृशी, इत्वरी।

९—इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, और मृड शब्द के अनन्तर स्त्रीलिङ्ग में आनुक् (आन्) और ङीष् होता है। यथा इन्द्राणी, भवानी, वरुणानी, रुद्राणी, शर्वाणी, मृडानी।

हिम और अरण्य शब्द के अनन्तर महत्त्व अर्थ में आन और ङीष् प्रत्यय होता है। यथा हिमानी (बहुत पाला), अरण्यानी (बड़ा वन)।

यव शब्द से दुष्ट अर्थ में और यवन् से लिपि अर्थ में आनीष् (आनी) होता है। यथा—दुष्टः यवः यवानी, यवनानां लिपिः यवनानी।

मातुल और उपाध्याय शब्द के बाद विकल्प से आनीष् और ई होता है। यथा—मातुलस्य स्त्री—मातुलानी, मातुली।

उपाध्यायस्य स्त्री—उपाध्यायानी, उपाध्यायी।

जो स्त्री स्वयं पढ़ाती है वहाँ उपाध्यायी और उपाध्याया, यहाँ ङीष् और आ दोनों होते हैं।

१०—(जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्) अकारान्त ऐसे जातिवाचक शब्द जिनकी उपधा में 'य्' न हो, ङीष् लगकर स्त्रीलिङ्ग होते हैं; यथा—ब्राह्मणः-ब्राह्मणी। इसी प्रकार हरिणी, मृगी आदि।

११—(स्वाङ्गाच्चोपसर्जना०) जिन अङ्गवाचक शब्दों की उपधा में संयुक्त वर्ण न हों और बहुव्रीहि समास से बने हों उन अकारान्त अङ्गवाचक शब्दों के अनन्तर स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ङीष् होता है। यथा—चन्द्रमुख—चन्द्रमुखा या चन्द्रमुखी।

परन्तु अङ्ग, गात्र, नेत्र इत्यादि अङ्गवाचक शब्दों में संयुक्त वर्ण रहने पर भी ई और आ होता है। यथा—कृशाङ्गी-कृशाङ्गा, बिम्बोष्ठी-बिम्बोष्ठा, गोकर्णी-गोकर्णा, सुकण्ठी-सुकण्ठा, सुगात्री-सुगात्रा, तन्वङ्गी-तन्वङ्गा। किन्तु प्राङ्मुखी, प्रत्यङ्मुखी इत्यादि।

१२—(बह्वादिभ्यश्च) क्तिन् प्रत्यय भिन्न इकारान्त कृत् प्रत्यय से बने प्रातिपदिक के अनन्तर स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ङीप् होता है। यथा—राजिः, राजी। श्रेणिः, श्रेणी। रजनिः, रजनी इत्यादि।

क्तिन् प्रत्यय से बने हुए शब्द स्वयं स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—मतिः, बुद्धिः, गतिः इत्यादि।

१३—(वोतो गुणवचनात्) उकारान्त गुणवाची शब्दों के बाद स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए विकल्प से ङीष् जोड़ते हैं। यथा—मृदु से मृदुः अथवा मृद्वी।

किन्तु यदि उपधा में संयुक्त वर्ण हो तो ङीप् नहीं लगता है, जैसे पाण्डु पुँल्लिङ्ग तथा स्त्री दोनों में।

कुछ ज्ञातव्य स्त्रीप्रत्ययान्त शब्द

पुँल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	पुँल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
बाल	बाला	स्वादु	स्वाद्वी, स्वादु
पाचक	पाचिका	श्वशुर	श्वश्रूः
गोप	गोपी	स्वामिन्	स्वामिनी
अश्वपालक	अश्वपालिका	गौर	गौरी
किशोर	किशोरी	युवन्	युवतिः
लघु	लघुः-लघ्वी	कुरुः	कुरूः

पुँल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	पुँल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
मघवन्	मघोनी, मघवती	साधु,	साध्वी, साधुः
यवन (लिपि)	यवनानी	राजन्	राज्ञी
हय	हयी	बुद्धिमत्	बुद्धिमती
प्राच् (पूर्व)	प्राची	सुन्दर	सुन्दरी
मनोहर	मनोहरा	अर्य	अर्यी
गायक	गायिका	सखि	सखी
शूद्र	शूद्री	आचार्य (पत्नी)	आचार्यानी
सिंह	सिंही	गवय	गवयी
वधूट	वधूटी	तस्थिवस्	तस्थुषी
विद्वस्	विदुषी	अरण्यम्	अरण्यानी

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—हँसती हुई कुमारी ने सामने आती हुई नव वधू को देखा।

२—सावित्री पतिव्रता स्त्री थी।

३—पार्वती ने शिव को प्रसन्न किया।

४—इन्द्राणी, भवानी, आचार्यानी और आचार्य पूज्य हैं।

५—वह कन्या अब पढ़ चुकी है।

६—मामा की स्त्री मुझे प्यार करती है।

७—गायिका गाती है, नर्तकी नाचती है और अध्यापिका पढ़ाती है।

८—ब्राह्मण ब्राह्मणी से, क्षत्रिय क्षत्रिया से, वैश्य वैश्यस्त्री से, शूद्र शूद्रस्त्री से, विवाह करते हैं।

९—प्रियतम के वियोग में विलाप करती हुई दमयन्ती ने एक अजगर देखा।

१०—उपाध्याय की स्त्री माता के समान होती है।

११—जंगल में व्याघ्र व्याघ्री के साथ, सिंह सिंही के साथ और मृग मृगी के साथ घूमते हैं।

१२—बिल्ली चूहों और चुहियों को खाती है।

१३—उसका विवाह चन्द्र के समान मुखवाली स्त्री से हुआ।

१४—छोटी उम्रवाली बालिका पढ़ रही है।

१५—कोयल मधुरस्वर से कूजती है।

१६—गोपियाँ कृष्ण के चारों ओर खड़ी हैं।

१७—जवान स्त्रियों का सौन्दर्य सबके मन को हर लेता है।

१८—यह मनोहारिणी कामिनी अब दण्डिनी तपस्विनी हो गई है।

१९—इस कक्षा में सुशीला सर्वप्रथम है।

२०—सरोजिनी नायडू भारत की कोकिला थीं।

षोडश सोपान

संस्कृत व्यावहारिक शब्द

जातिवर्ग

जूता—पादत्राणम् ।
चित्र—चित्रम् ।
चक्र—चक्रम् ।
सोना—स्वर्णम् ।
सुनार—स्वर्णकारः ।
घड़ा—घटः ।
चित्रकार—चित्रकारः ।
कुम्हार—कुम्भकारः ।
मल्लाह—कर्णधारः ।
मजदूर—भारवाहः ।
जुलाहा—तन्तुवायः ।
सूई-सूचिका ।
सफेदी, शुभ्रता—सुधा ।
उस्तरा—क्षुरः ।
दर्जी—सौचिकः ।
पुताई करने वाला—सुधाजीविन् ।
महल—सौधम् ।
शिकारी—व्याधः ।
कसाई—वधिकः ।
पेटू—तुन्दिलः ।
जुआरी—द्यूतकारः ।
भूनने वाला—भर्जकः ।

झाड़ू—संमार्जनी ।
तेल—तैलम् ।
लोहा—लौहम् ।
कारीगर—शिल्पिन् ।
लोहार—लौहकारः ।
चमार—चर्मकारः ।
तेली—तैलिकः ।
माली—मालाकारः ।
मेहतर—महत्तरः ।
धोबी—रजकः ।
कुर्सी—आसन्दिका ।
खाट—खट्वा ।
नाई—नापितः ।
बढ़ई—तक्षक ।
मदारी—ऐन्द्रजालिकः ।
द्वार—द्वारम् ।
रंगरेज—रंजक ।
द्वारपाल—प्रतिहारः ।
ठग—वञ्चकः ।
बौना—वामनः ।
कलाल—शौण्डिकः ।
लेप लगाने वाला—लेपकः ।

खिलाड़ी—आक्रीडी। किसान—कृषकः।
पड़ोसी—प्रतिवेशी। फावड़ा—खनित्रम्।
मजदूरी—भृतिः। बहँगी—जलानयनयन्त्रम्।
शराब—सुरा। शराबघर—मद्यस्थानम्।
प्याला—चषकः। बाँसुरी—वेणुः।
भाड़—भ्राष्ट्रम्। ढोल—पटहः।
दुन्दुभिः—नगारा। दरांती—दात्रम्।
तागा—सूत्रम्। प्याऊ—प्रपा।
कैंची—कर्त्तरी। चक्की—घरट्टः।
बाजा—वाद्यम्। चारण—कुशीलवः।
मोम—द्रावकः।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—जुलाहा वस्त्रों को बनाता है। २—भूनने वाला चना भून रहा है। ३—भारवाहक भार को ढोता है। ४—किसान खेती करता है। ५—राजगीर ने आज हमारे विद्यालय में सफेदी की। ६—चमार जूता बनाता है। ७—कुम्हार चाक पर मिट्टी से घड़ा बनता है। ८. लोहार लोहे को पीटता है। ९—माली फूलों से माला बनाता है। १०—सुनार देखते रहने पर भी सोना चुराता है। अतः 'पश्यतोहर' कहा जाता है। ११—विवाह आदि उत्सवों में कहार बहँगियों से पानी लाते हैं। १२—गाय को कसाइयों के हाथ न बेंचना चाहिए। १३—मल्लाह नौका को नदी के पार ले जाता है। १४—चित्रकार चित्र बनाता है। १५—धोबी पार ले जाता है। १६—मदारी अपना जादू दिखाता है। १७—नाई उस्तरे से मनुष्य के बाल काटता है। १८—दर्जी कपड़ा सीता है। १९—शिकारी बाण से हिरन मारता है। २०—द्वारपाल राजा के महल के द्वार की रक्षा करता है। २१—कृष्ण वंशी बजाते हैं। २२—बौना व्यक्ति घूम रहा है। २३—रंगरेज वस्त्रों को रंगता है। २४—मेहतर सफाई करता है। २५—पेटू खूब खाता है।

वस्त्रवर्ग

कुर्ता—कंचुकः। पायजामा—पादयामः।
चादर, दुपट्टा—उत्तरीयम्। रजाई—नीशारः।

कम्बल—कम्बलः ।
पगड़ी—उष्णीषम् ।
करधनी—काञ्ची, मेखला ।
धोती—अधोवस्त्रम् ।
टोपी—शिरस्कम् ।
साड़ी—शाटिका ।
ब्लाउज—कंचुलिका ।
जांघिया—अर्धोरुकम् ।
कपड़ा—वसनम् ।
कमरबंद—रशना ।
रूमाल—मुखप्रोञ्छनम् ।
तकिया—उपधानम् ।
घूँघट—अवगुण्ठनम् ।
अँगोछा—अंगप्रोक्षणम् ।
बिछौना—शय्या ।
स्वेटर—ऊर्णाकञ्चुकम् ।
लोई—रल्लकः ।
रुई (कपास)—कार्पासः ।

आभूषण वर्ग

मोती की माला—हारः ।
कनफूल—कर्णपूरः ।
हँसुली—ग्रैवेयकम् ।
बुलाक—नासाभरणम् ।
कंकण—कंकणम् ।
तिलक—तिलकम् ।
टिकुली—ललाटालङ्कारः ।
पहुँची—कटकः, आवापकः ।
चूड़ी—काचवलयः—यम् ।
आभूषण—अलंकारः ।
पाजेब—नूपुरः ।
बाजूबन्द—केयूरम् ।
कान की बाली—कुण्डलम् ।
कण्ठा—कण्ठाभरणम् ।
अंगूठी—अंगुलीयकम् ।
करधनी—मेखला ।
वेणी—स्त्रीमस्तकाभरणम् ।

शृङ्गार वर्ग

साबुन—फेनिलः ।
सिन्दूर—सिन्दूरम् ।
इत्र—गन्धतैलम् ।
शीशा—दर्पणः ।
काजल—अंजनम् ।
कंघी—कङ्कतिका ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—कुर्ता और धोती पहनो । २—रजाई, पगड़ी, अँगोछा, टोपी, रूमाल और तकिया साफ रखो । ३—भारतीय स्त्रियाँ साड़ी और मेखला पहनती हैं । ४—शिक्षित स्त्रियाँ आभूषण पसन्द नहीं करतीं । ५—असभ्य जातियों में

आभूषणों का अधिक प्रचार है। ६—वह स्त्री ग्रीवा में मोती की माला, कान में कनफूल, नाक में बुलाक, हाथ में कंकण और बाजूबन्द, भाल पर तिलक, आँख में काजल और पैर में पाजेब धारण किए हुए हैं। ७—स्त्रियाँ साबुन से अङ्गों को धोकर दर्पण में मुँह देखती हैं और कंघी से वेणी को गूथती हैं। ८—सिन्दूर सौभाग्य का चिह्न है। ९—शहर की स्त्रियाँ नथ और बुलाक से बड़ी नफरत करती हैं। १०—चूड़ी पहनने का रिवाज सभी जगह है। ११—रूमाल से हाथ मुँह साफ करो। १२—स्त्री इत्र लगाती है (निक्षिप्)।

प्राणि वर्ग

बाघ—व्याघ्रः। भेड़—एडका।
रीछ—ऋक्षः। चूहा—मूषक।
सूअर—शूकरः। बकरा—अजः।
भेड़िया—वृकः। बिलाव—मार्जारः।
गीदड़—शृगालः। कुत्ता—कुक्कुरः।
खरगोश—शशः। भैंसा—महिषः।
बन्दर—वानरः। गधा—गर्दभः।
हिरन—मृगः। ऊँट—उष्ट्रः।
न्योला—नकुलः। बैल—वृषभः।
घोड़ा—अश्वः। गैंडा—गण्डकः।
हाथी—गजः। गाय—गौः।
कुत्ती—शुनी। बकरी—अजा।
हिरन का बच्चा—हरिणकः। गोह—गोधा।

पक्षि वर्ग

कोयल—कोकिलः। चिड़िया—चटकः।
मोर—मयूरः। बत्तख—वर्तिका।
हंस—हंसः। मैना—सारिका।
तोता—शुकः। बाज—श्येनः।
चातक—चातकः। उल्लू—उलूकः।
चकवा—चक्रवाकः। बगुला—बकः।

खंजन—खंजनः।
कबूतर—कपोतः।
टिटिहरी—टिट्टिभः।
चील—चिल्लः।
गीध—गृध्रः।
मुर्गा—कुक्कुटः।
कौआ—वायसः, काकः।
तीतर—तित्तिरिः।

पशु-पक्षियों की बोलियाँ

(भेड़िये) गुर्राते हैं—वृकाः रसन्ति।
(शेर) दहाड़ते हैं—सिंहा गर्जन्ति।
(कुत्ते) भौंकते हैं—श्वानः बुक्कन्ति।
(हाथी) चिग्घाड़ते हैं—गजा बृंहन्ति।
(कौवे) कांव कांव करते हैं—काकाः कायन्ति।
(घोड़े) हिनहिनाते हैं—अश्वा ह्रेषन्ते।
(चिड़ियाँ) चूँ चूँ करती हैं—पक्षिणः चीभन्ते।
(गधे) रेंकते हैं—गर्दभाः रासन्ते।
(साँप) फुंकारते हैं—सर्पाः फूत्कुर्वन्ति।
(गौवें) रंभाती हैं—गावः रम्भन्ते।
(मेढक) टर्राते हैं—दर्दुरा रुवन्ति।
(गीदड़) चीखते हैं—शृगालाः क्रोशन्ति।
(बिल्लियाँ) म्याऊँ करती हैं—बिडालाः मीवन्ति।

संस्कृत में अनुवाद करो :—

१—मैंने वन में व्याघ्र, सूअर, रीछ, भेड़िया, मृग और गीदड़ देखा। २—सैनिक घोड़े पर चढ़ता है। ३—किसान बैल से खेत जोतता है। ४—ऊँट बालू में भी तेजी से चलता है। ५—कुत्ता अपरिचित मनुष्य को देखकर भौंकता है। ६—खरगोश स्वभाव से सरल होता है। ७—मुझे भालू का नाच बहुत अच्छा लगता है। ८—जानवरों में शृगाल चालाक होता है। ९—गैंडे को मारना आसान नहीं है। १०—कोयल की बोली बड़ी मधुर होती है। ११—कौआ काला होता है। १२—जंगल में मोर नाचता है। १३—आकाश में तोते उड़ते हैं। १४—सरस्वती का वाहन हंस है। १५—चातक मेघ को निहारता है। १६—खञ्जन उड़ता है। १७—कबूतर अपनी क्रीडा से मन को हरता है।

१८—लोग मैना को बड़े चाव से पालते हैं। १९—चूहे और बिल्ली का स्वाभाविकवैर है। २०—टिटिहरी उड़ती है, मुर्गा बड़े तड़के ही बोलता है, चकवा रात्रि में रोता है।

शरीर वर्ग

अंग—अङ्गम्। | दाँत—दन्तः।
पेट—उदरम्। | ओष्ठ—ओष्ठः।
हृदय—हृदयम्। | नीचे का ओष्ठ—अधरः।
छाती—उरःस्थलम्। | कन्धा—स्कन्धः।
माथा—ललाटम्। | गला—कण्ठः।
शिर—शीर्षम्। | स्तन—स्तनः।
भुजा—बाहुः। | हाथ—करः।
मुट्ठी—मुष्टिः। | नाखून—नखः।
बुद्धि—बुद्धिः। | नाक—नासिका।
जीभ—जिह्वा। | नाभि—नाभिः।
हाथ—हस्तः। | कमर—कटिः।
अंगूठा—अंगुष्ठः। | अँगुली—अंगुलिः।
बाल—केशः। | जाँघ—जंघा।
शौच—मलम्। | चोटी—शिखा।
लघुशंका—मूत्रम्। | पीठ—पृष्ठम्।
खून—रक्तम्। | मुँह—आननम्।
पैर की गिट्टी—गुल्फकः। | कान—कर्णः।
पुरुष का वीर्य—शुक्रम्। | स्त्री का वीर्य—रजः।
लार—लाला। | अण्डकोष—वृषणः।
मसूड़े—तालु। | योनि—योनिः।
शरीर—शरीरम्। | हड्डी—अस्थि।
मन—चित्तम्। | नाड़ी—धमनी।
फेफड़ा—फुफ्फुसम्। | ताली—करतलध्वनिः। (६०)
लिङ्ग—लिङ्गम्। | तोंद—तुन्दम्।
ठुड्ढी—चिबुकम्। | छाती—उरः।
चूतड़—नितम्बः। | गुदा—पायुः।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—आज मेरे दाँत में दर्द हो रहा है। २—उस स्त्री की कमर पतली है। ३—कान कुण्डल से अच्छा लगता है। ४—हाथ की शोभा दान देने से है, कंगन से नहीं। ५—परोपकार करने से ही शरीर का महत्त्व है। ६—इस राजा की छाती चौड़ी है। ७—दुष्यन्त की भुजा हाथी के सूँड़ की तरह थी। ८—आँख में अञ्जन लगाओ। ९—नाक में उँगली मत करो। १०—इस पुरुष की नाभि, नाखून, उदर और शिर सुन्दर हैं। ११—कण्ठ सुन्दर स्वर से सुशोभित होता है। १२—उसने चारों समुद्रों को स्तन के रूप में धारण किया। १३—डा० राधाकृष्णन् के व्याख्यान के अन्त में लोगों ने तालियाँ बजाईं। १४—हम जिह्वा से स्वाद लेते हैं। १५—शिखा कल्याण और कीर्ति के लिए होती है। १६—कान को स्वच्छ रक्खो। १७—इस नायिका की जांघें केले के खम्भे की तरह हैं। १८—मेरे शरीर में खून का विकार है। १९—उस सेठ की तोंद निकली है। २०—उसके सिर के बाल सुन्दर हैं।

विद्यालय वर्ग

सुलेख—सुलेखः।
परिणाम—परिणामः।
खिलाड़ी—क्रीडकः।
अंक—अङ्कः
छुट्टी—अवकाशः।
दावात—मसीपात्रम्।
कक्षा—श्रेणी।
कलम—लेखनी।
स्याही—मसी।
थूकना—ष्ठीवनम्।
कालेज—विद्यालयः।
युनिवर्सिटी—विश्वविद्यालयः।
हाजिर—उपस्थितः।

अनुशासन—अनुशासनम्।
क्रीडाक्षेत्र—क्रीडाक्षेत्रम्।
उत्तर—उत्तरम्।
पृष्ठ—पृष्ठम्।
बजे—वादनम्।
परीक्षा—परीक्षा।
खेल—क्रीडा।
कापी—संचिका।
स्कूल—पाठशाला।
गैरहाजिर—अनुपस्थितः।
पुस्तक—पुस्तकम्।
मैनेजर—प्रबन्धकर्ता।
होशियार—प्राज्ञः।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—आजकल विद्यालयों में पढ़ाई वैज्ञानिक ढंग से हो रही है। २—कुछ खिलाड़ी क्रीडाक्षेत्र में खेल रहे हैं। ३—वह नौ बजे विद्यालय आता है। ४—विद्यार्थियों को अनुशासन का पालन करना चाहिए। ५—वार्षिक परीक्षा में उसे साठ अङ्क मिले। ६—इस कक्षा में चार छात्र अनुपस्थित हैं। ७—गुरु उससे जो प्रश्न पूछता है वह उसका उत्तर भलीभाँति देता है। ८—दावात में स्याही नहीं है। ९—विद्यालय के अवकाश के दिनों में भी कुछ न कुछ अवश्य पढ़ो। १०—वह अपनी कलम से पाँच पृष्ठ लिखता है। ११—तुम्हें अपने अध्यापक का कहना मानना चाहिए। १२—उत्तम विद्यार्थी अपने सहपाठियों से प्रेम करता है। १३—कुछ छात्र परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं और कुछ अनुत्तीर्ण। १४—आपस में कभी लड़ाई मत करो। १५—प्रातःकाल उठकर अध्ययन के लिए बैठ जाओ।

खाद्य वर्ग

मट्ठा—तक्रम्।	लड्डू—मोदकः।
नमक—लवणम्।	पूआ—अपूपः।
घृत—घृतम्।	दाल—सूपः।
मक्खन—नवनीतम्।	साग—शाकः।
खिचड़ी—कृशरः।	पकवान—पक्वान्नम्।
रोटी—रोटिका।	शक्कर—शर्करा।
खीर—पायसम्।	चीनी—सिता।
सेवई—सूत्रिका।	भात—भक्तम्।
हलुआ—लप्सिका।	पूड़ी—शष्कुली।
रसोइया—पाचकः।	

भक्ष्य वर्ग

लहसुन—लशुनम्।	चावल—तण्डुलः।
अचार—सन्धितम्।	गेहूँ—गोधूमः।
धान—धान्यम्।	चना—चणकः।
प्याज—पलाण्डुः।	जौ—यवः।

चटनी—अवलेहः ।
सत्तू—सक्तुः ।
सरसो—सर्षपः ।
कोदो—कोद्रवः ।
दही—दधि ।
उड़द—माषः ।
मसूर—मसूरः ।
पापड़—पर्पटा ।
कौनी—कंगुः ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—मैं प्रतिदिन दाल, भात, रोटी, तरकारी, घी, दूध और दही खाता हूँ। २—मैं त्योहार के दिनों में सेवई, पूड़ी, खीर, मिठाई, पकवान और मक्खन खाता हूँ। ३—रसोइया भोजन बनाता है। ४—मुझे चटनी अच्छी लगती है। ५—दही में नमक डालो। ६—किसान धान, गेहूँ, मसूर, उड़द, सरसो और चना पैदा करता है। ७—जौ की रोटी अच्छी होती है। ८—भोजन के साथ अचार भी खाना चाहिए। ९—लहसुन और प्याज अधिक मात्रा में नहीं खाना चाहिए। १०—बीमार को खिचड़ी खानी चाहिए। ११—पापड़ भी स्वादिष्ट होता है। १२—तिल से तेल निकलता है। १३—सत्तू खाकर पानी पियो। १४—जाड़े के मौसम में दही नहीं खाना चाहिए। १५—कोदो का भात अच्छा नहीं होता है।

फल वर्ग

अमरूद—आम्रलम् ।
नारंगी—नारगं फलम् ।
सेव—सेव फलम् ।
नारियल—नारिकेल फलम् ।
केला—कदली फलम् ।
बेर—बदरी ।
अंगूर—द्राक्षा ।
बादाम—वातादः ।
बेल—बिल्वः ।
खरबूजा—दशाङ्गुलम् ।
आम—आम्रः, रसालः ।
अनार—दाडिमः ।
कटहल—पनसः ।
नीबू—जम्बीरः ।
गूलर—उदुम्बरः ।
पीपल—अश्वत्थः ।
नीम—निम्बः ।
सुपारी—पूगः ।
पिस्ता—अङ्कोट फलम् ।
सरीफा—शिंशवृक्षफलम् ।

खजूर—खर्जूरफलम् । नासपाती—अमृतफलम् ।
खीरा—त्रपुषम् । पीलू—पीलुफलम् ।
कमरख—कर्मरक्षः । खिन्नी—क्षीरिकाफलम् ।
कैथा—कपित्थम् । तरबूज—तारबूजम् ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—स्वास्थ्य के लिए फल अत्यन्त लाभप्रद है । २—आम सभी फलों का राजा है । ३—मेरे बगीचे में अनार, बेर, गूलर, नीबू, पीपल, सुपारी, केला और नारियल के पेड़ हैं । ४—अतिथि का सम्मान सुपारी से करना चाहिए । ५—आम, सेव, केला और अंगूर बहुत मधुर होते हैं । ६—स्वास्थ्य-लाभ के लिए अंगूर और संतरा अत्युत्तम है । ७—मुझे नीबू का अचार अच्छा लगता है । ८—बीमार को अनारफल का रस दिया जाता है । ९—कैथे के फल की चटनी बनती है । १०—गर्मियों में तरबूज खाया जाता है । ११—कटहल की तरकारी अच्छी होती है । १२—अमरूद अधिक नहीं खाना चाहिए । १३—चुनार के पास शरीफे होते हैं । १४—लखनऊ के खरबूजे प्रसिद्ध हैं । १५—गर्मियों में कसेरू खाना चाहिए ।

सम्बन्धि वर्ग

बहन—स्वसृ, भगिनी । बड़ा भाई—अग्रजः ।
देवर—देवरः । छोटा भाई—अनुजः ।
साला—श्यालः । दादा—पितामहः ।
ससुर—श्वशुरः । नाना—मातामहः ।
परपोता—प्रपौत्रः । परदादा—प्रपितामहः ।
पोता—पौत्रः । चाचा—पितृव्यः ।
माता—माता, जननी । दादी—पितामही ।
नानी—मातामही । परनानी—प्रमातामही ।
चाची—पितृव्यपत्नी । चचेरा भाई—पितृव्य पुत्रः ।
भौजाई (भाभी)—भ्रातृजाया, प्रजावती । भतीजा—भ्रातृपुत्रः ।
पतोहू—पुत्रवधूः । ननद—ननान्दा ।

पोती—पौत्री ।
दामाद—जामाता ।
भानजा—भागिनेयः ।
यार—जारः, उपपतिः ।
मामा—मातुलः ।
मामी—मातुली ।
देवरानी—याता ।
फूफी—पितृष्वसा ।
फूफा—पितृष्वसृपतिः ।
फुफेरा भाई—पितृष्वस्रीयः ।
पतिव्रता—साध्वी ।
सोहागिन—सौभाग्यवती ।
मौसी—मातृष्वसा ।
मौसा—मातृष्वसृपतिः ।
मौसेरा भाई—मातृष्वस्रीयः ।
सखी—आलिः ।
दूती—दूती ।
नौकरानी—परिचारिका ।
नौकर—भृत्यः ।
मित्र—मित्रम् ।
दुश्मन—शत्रुः ।
रण्डा—विधवा, विश्वस्ता ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—सुशीला राम की बहन है । २—मेरे नाना और नानी वृद्ध हैं । ३—उसकी बड़ी बहन और छोटी बहन विद्यालय में पढ़ रही हैं । ४—विधवा को ईश्वर की आराधना करनी चाहिए । ५—नई पतोहू के आगमन से घर में सुख-समृद्धि का राज्य है । ६—मेरे भानजे का विवाह इसी वर्ष होगा । ७—इस संसार में भाई का मिलना मुश्किल है । ८—मेरे चाचा और चाची प्रयाग में रहते हैं । ९—सास को माता समझना चाहिए । १०—भौजाई माता के तुल्य होती है । ११—जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते हैं । १२—रमा के देवर अध्यापक हैं । १३—दामाद को ससुराल में अधिक दिनों तक नहीं रहना चाहिए । १४—दूती नायिका के संदेश को उसके यार तक पहुँचाती है । १५—पतिव्रता स्त्री को वेश्या की संगति नहीं करनी चाहिए । १६—नौकरानी को शीघ्र ही बाजार भेजो । १७—उस नौकर से कोई लाभ नहीं जो आज्ञाकारी न हो । १८—आज मेरी मौसी की भुजा टूट गई । १९—श्याम मेरा मौसेरा भाई है । २०—वह मेरा फुफेरा भाई है ।

जल वर्ग

कमल—कमलम् ।
जाल—जालम् ।
तरङ्ग—तरङ्गः ।
कीचड़—पङ्कः ।
नदी का रेतीला किनारा—सैकतम् ।
मल्लाह—नाविकः ।

तट—तटम् । नाव—नौका ।
मछुआ—धीवरः । मछली—मत्स्यः ।
बूँद—बिन्दुः । मगर—मकरः ।
कुँआ—कूपः । कछुआ—कच्छपः ।
मेंढक—दर्दुरः । तालाब—तडागः ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—तालाब में कमल खिले हैं। २—जल की शोभा कमलों से ही होती है। ३—नाविक नौका से नदी को पार करने की इच्छा करता है। ४—नदी के किनारे रेत और कीचड़ है। ५—नदी में मगर, कछुए और मछलियाँ हैं। ६—यमुना में तरङ्गें उठ रही हैं। ७—मछुआ तालाब में जाल डालकर मछलियाँ पकड़ता है। ८—वर्षा ऋतु में मेंढक इधर-उधर खूब उछलते हैं। ९—बादल नन्हीं-नन्हीं जल की बूँदों को लेकर आता है। १०—मेरे घर के सामने एक कुँआ है।

संकीर्ण वर्ग

देशान्तर से आगत—आयातः । देश से बाहर गया हुआ—निर्यातः।
तख्त—काष्ठपट्टम् । बदलना—विनिमयः ।
चश्मा—उपनेत्रम् । डाकिया—पत्रवाहकः ।
चाँदी—रजतम् । घूस—उत्कोचः ।
रूपया—रूप्यकम् । सूद—कुसीदः ।
मुकद्दमा—अभियोगः । मुद्दालेह—प्रतिवादी ।
मुद्दई—वादी । वकील—वाक्कीलः ।
जज—न्यायाधीशः । पैसा—पणः ।
दूकान—आपणः । कोर्ट—न्यायालयः ।
अशर्फी—दीनारः । छींक—क्षवथुः, छिक्का ।
छावनी—शिविरम । धरोहर—न्यासः ।
मस्तूल—कूपकः । जुगनू—खद्योतः ।
आँधी—वात्या । प्रतिज्ञा—प्रतिश्रुतिः ।
ढक्कन—आच्छादनम् । घुड़सवार—अश्वारोहः ।

काठी—पर्याणम्।
मखौल—परिहास।
झरना—निर्झरः।
कर्जदार—अधमर्णः।
डाट—छिद्ररोधकः।
खिड़की—गवाक्षः।
जामिन—प्रतिभूः।
हद्द—सीमा।
कानून—विधिः।
लगाम—प्रग्रहः।
पसीना—स्वेदः।
बोरा—शणपुटः।
गली—प्रतोलिका।
हैजा—विसूचिका।
बाजीगर—आहितुण्डिकः।
साहूकार—उत्तमर्णः।
धोखेबाज—कितवः, शठः।
वसीयतनामा—मृत्युपत्रम्, चरमपत्रम्।
पहरेदार—यामिकः।
कैद—कारावासः।
होड़—प्रतिद्वन्द्विता।
कसरत—व्यायामः।
शोर—कोलाहलः।
नकशा—मानचित्रम्।
दखल—अधिकारः।
कढ़ाई—कटाहः।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—डाकिया पत्र लाया है। २—घूस लेना और देना दोनों ही महापाप हैं। ३—इस मुकदमे के लिए एक अच्छे वकील की आवश्यकता है। ४—तख्त यहाँ रखो। ५—मेरे अध्यापक चश्मा पहनते हैं। ६—जामिन के अभाव में वह अपराधी नहीं छूट सकता है। ७—वादी ने प्रतिवादी पर अभियोग लगाया। ८—न्यायाधीश ने उस हत्यारे को सन्देह पर छोड़ दिया। ९—शोर न करो, चुपचाप पढ़ो। १०—चोर को दस वर्ष की सजा हुई। १२—घुड़सवार घोड़े को तेजी से दौड़ाता है। १२—आयात और निर्यात से देश के व्यापार की उन्नति होती है। १३—कर्जदार अपने साहूकार से डरता है। १४—गर्मियों में शरीर से पसीना निकलता है। १५—अशर्फी, सोना, चाँदी और रत्न कीमती वस्तुएँ हैं।

ऋतु एवं दिनमास वर्ग

ऋतु—ऋतुः।
गर्मी—ग्रीष्मः।
वसन्त—वसन्तः।
वर्षा—वर्षा।

शरद्—शरद् ।
हेमन्त—हेमन्तः ।
शिशिर—शिशिरः ।
दिन—वासरः ।
रविवार—रविवारः ।
सोमवार—सोमवारः ।
मंगलवार—मंगलवारः ।
बुधवार—बुधवारः ।
बृहस्पतिवार—बृहस्पतिवारः ।
शुक्रवार—शुक्रवारः ।
शनिवार—शनिवारः ।
महीना—मासः ।
चैत्र—चैत्रः ।
वैशाख—वैशाखः ।
ज्येष्ठ—ज्येष्ठः ।
आषाढ़—आषाढ़ः ।
श्रावण—श्रावणः ।
भाद्रपद—भाद्रपदः ।
आश्विन्—आश्विनः ।
कार्तिक—कार्तिकः ।
मार्गशीर्ष—मार्गशीर्षः ।
पूष—पौषः ।
माघ—माघः ।
फाल्गुन—फाल्गुनः ।

संस्कृत में अनुवाद करो—

१—एक साल में ६ ऋतुएँ होती हैं—वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर। २—वसन्त ऋतु को ऋतुराज कहते हैं। ३—वसन्त ऋतु में तरु और लताएँ फल और पुष्प से युक्त होती हैं। ४—ग्रीष्म ऋतु में धूप बहुत तेज होती है। ५—वर्षा ऋतु में खूब वृष्टि होती है। ६—शरद् ऋतु बड़ी सुहावनी होती है। ७—हेमन्त ऋतु में ठण्डक खूब होती है। ८—शिशिर में हिमपात होता है। ९—एक सप्ताह में सात दिन होते हैं—रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार, शुक्रवार, शनिवार। १०—एक वर्ष में बारह महीने होते हैं—चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन।

सप्तदश सोपान

अशुद्धि-प्रदर्शन

लिङ्ग वचन एवं कारक की अशुद्धियाँ

अशुद्ध	शुद्ध
१. चत्वारः कन्याः चत्वारः फलानि	चतस्रः कन्याः, चत्वारि फलानि ।
२—दशमे कक्षायां शतानि छात्राः	दशम्यां कक्षायां शतं छात्राः ।
३—अग्निना नगरम् अदहत्	अग्निः नगरम् अदहत् ।
४—सर्वेषां विद्यानां पात्राणि०	सर्वासां विद्यानां पात्रम् ।
५—छात्रद्वयं क्रीडतः	छात्रद्वयं क्रीडति ।
६—दम्पती पुत्रम् अभाषत	दम्पती पुत्रम् अभाषेताम् ।
७—सः प्राणं तत्याज	सः प्राणान् तत्याज ।
८—मम मने सन्देहः	मम मनसि सन्देहः ।
९—भवानस्य किं नाम	भवतः किं नाम ।
१०—तं दारम् , इमम् अक्षतम् , इमं लाजम्० ।	तान् दारान् , इमान् अक्षतान् , एतान् लाजान्० ।
११—मम सुहृदस्य पुस्तकम्	मम सुहृदः पुस्तकम् ।
१२—तव लक्ष्मी नास्ति	तव लक्ष्मीः नास्ति ।
१३—या बाला आगच्छत् , सः०	या बाला आगच्छत् , सा० ।
१४—भवन्तौ वदथः	भवन्तौ वदतः ।
१५—भूपत्युः सह अगच्छत	भूपतिना सह अगच्छत् ।
१६—बालकः चन्द्रमां पश्यति	बालकः चन्द्रमसं पश्यति ।
१७—तं द्रव्यं देहि	तस्मै द्रव्यं देहि ।
१८—जनकं स्मरति	जनकस्य स्मरति ।

सन्धि की अशुद्धियाँ

अशुद्ध	शुद्ध
१९—बालो सुखेन शेते	बालः सुखेन शेते ।
२०—भो देवागच्छ	भो देव आगच्छ ।
२१—स अनिवसत	स न्यवसत् ।

२२—सखि प्रियम्वदा	सखि प्रियंवदे ।
२३—कवीमौ यातः	कवी इमौ यातः ।
२४—अम्यजा गच्छन्ति	अमी अजा, गच्छन्ति ।
२५—देवोवाच	देव उवाच ।

सर्वनाम तथा विशेष्य विशेषण की अशुद्धियाँ

२६—स महति विपदि वर्तते	स महत्यां विपदि वर्तते ।
२७—इयं पुस्तकम् अस्ति	इदं पुस्तकमस्ति ।
२८—सर्वाः बालकाः गच्छन्ति	सर्वे बालका गच्छन्ति ।

१—सर्वनाम शब्दों और विशेषण शब्दों का वही लिङ्ग, विभक्ति और वचन होता है, जो विशेष्य का होता है। २—विंशति से बाद के सभी संख्या-वाची शब्द केवल एक वचन में आते हैं। ३—कर्ता (व्यक्तिनाम, वस्तुनाम) में प्रथमा होती है। ४—'पात्र' शब्द जब विधेय के रूप में प्रयुक्त होगा तब इसमें नपुं० ए० व० ही रहेगा। ५—'द्वय' के साथ क्रिया एक० में ही रहती है। ६—'दम्पती' के साथ क्रिया द्विवचन में आती है। ७—'प्राण' शब्द का प्रयोग बहु-वचन में होता है। ८—मनस् शब्द हलन्त है। ९—भवत् शब्द नपुंसकलिङ्ग और हलन्त है। १०—दार, अक्षत, लाज के रूप पुँल्लिङ्ग में और बहुवचन में ही चलते हैं। ११—सुहृद् शब्द भी हलन्त है। १२—लक्ष्मी शब्द को प्रथमा के एकवचन में विसर्ग होता है। १३—यत् और तत् शब्द सापेक्ष सर्वनाम हैं अतः यत् शब्द में जो लिङ्ग, विभक्ति और वचन होगा, वही तत् शब्द में भी होगा। १४—'भवत्' (आप) शब्द के साथ सदा प्रथम पुरुष आता है। १५—पति शब्द किसी शब्द के अन्त में समाप्त होगा तो उसका रूप हरि के तुल्य चलेगा। 'सह' के साथ तृतीया होती है। १६—चन्द्रमस् शब्द हलन्त है। १७—दा धातु के कर्म में चतुर्थी होती है। १८—स्मरण अर्थ की धातुओं के साथ कर्म में षष्ठी होती है। १९—क, ख, प, फ, ष, स, श परे रहने पर विसर्ग का ओ नहीं होता। २०—सम्बोधन के अवर्ण की आगे स्वर के साथ सन्धि नहीं होती। २१—वस् धातु का लङ् का रूप बनाकर नि उपसर्ग लगेगा, नि + अवसत्। २२—एक पद में, धातूपसर्ग में और समास में अवश्य सन्धि

होती है। २३—इकारान्त द्विवचन में सन्धि नहीं होती। २४—अदस् शब्द के मकार युक्त--ई में सन्धि नहीं होती। २५--विसर्ग के लोप होने पर सन्धि नहीं होती। २६--विपत् शब्द स्त्री लिङ्ग है अतएव महत् शब्द की भी स्त्रीलिङ्ग में सप्तमी विभक्ति ही होगी। २७--पुस्तक नपुंसकलिङ्ग की प्रथमा विभक्ति के एक वचन में है अतएव उसका विशेषण नपुंसकलिङ्ग की प्रथमा के एकवचन में होगा। २८--नपुं०, पुं०, स्त्री० में सर्वनाम शब्दों के लिङ्ग वचन विशेष्य के समान ही होंगे।

२९--मे पिता आगतः	मम पिता आगतः।
३०--प्रातः प्रभृति वर्षा भवति	प्रातः प्रभृति वर्षति देवः।
३१--सुन्दरी अबलागणः याति	सुन्दरोऽवलागणो याति।
३२--एतं प्रश्नं तस्मात् शिष्यात् पृच्छ।	एतं प्रश्नं तं शिष्यं पृच्छ।
३३--किञ्चित् अन्यं वद	किञ्चिद् अन्यद् वद।

वर्ण तथा अव्ययों की अशुद्धियाँ

३४--च भोजनम् अपि०	भोजनं च अपि०।
३५--तु अहं न गमिष्यामि	अहं तु न गमिष्यामि।
३६--स मिथ्यां वदति	स मिथ्या वदति।
३७--दिनेशः च दामोदरः गच्छतः	दिनेशो दामोदरश्च गच्छतः।
३८--मार्गे हस्तीः पलायते	मार्गे हस्ती पलायते।
३९--पितृण् संतर्पय	पितृन् संतर्पय।
४०--अहं पुस्तकं गृहीतुमिच्छामि	अहं पुस्तकं ग्रहीतुमिच्छामि।

क्रिया में काल आदि की अशुद्धियाँ

४१--अहं स्थामि	अहं तिष्ठामि।
४२--वयं दृश्यामः	वयं पश्यामः।

२९--युष्मद् और अस्मद् शब्द को वाक्य के आदि में 'ते', 'मे' आदेश नहीं होते। ३०--व्याकरण-समस्त होते हुए भी 'वर्षा भवति' प्रयोग व्यवहारानुकूल नहीं है। संस्कृत व्यवहार में 'वर्षा' नित्य बहुवचनान्त शब्द है और

इसका अर्थ 'बरसात' है। ३१--गण शब्द पुँल्लिङ्ग है अतएव उसका विशेषण सुन्दर शब्द भी पुँल्लिङ्ग ही होगा। ३२--प्रच्छ धातु द्विकर्मक है, इसके साथ दो कर्म होते हैं। सर्वनाम शब्दों और विशेषण शब्दों का वही लिङ्ग, विभक्ति और वचन होगा, जो विशेष्य का होता है। ३३--नपुंसक लिङ्ग में अन्यत् होता है। ३४--'च' (और) का प्रयोग उससे एक शब्द के बाद कीजिए। ३५--तु आदि वाक्य के आरम्भ में नहीं आते। ३६--अव्यय के साथ कोई विभक्ति नहीं आती। ३७--'च' दूसरे शब्द के बाद आता है। ३८--हस्तिन् इन प्रत्ययान्त शब्द है। ३९--पदान्त में 'न्' का 'ण्' नहीं होता है। ४०--ग्रह होता है। ४१--४२--वर्तमान काल में स्था को तिष्ठ् और दृश् को पश्य हो जाता है।

४३--स ब्रूष्यति	स वक्ष्यति।
४४--तेन नगरे वस्यते।	तेन नगरे उष्यते।
४५--राज्ञा प्रजाः पाल्यते	राज्ञा प्रजाः पाल्यन्ते।
४६--रामः भृत्यं कार्यं करोति	रामः भृत्येन कार्यं कारयति।
४७--त्वया भूयसे	त्वया भूयते।
४८--स माम् अवदत् स्म	स माम् अवदत्।

कृदन्त शब्दों की अशुद्धियाँ

४९--अन्नपाचकः खादति	अन्नस्य पाचकः खादति।
५०--स पुस्तकं दृष्टः	तेन पुस्तकम् दृष्टम्।
५१--स पुस्तकं पठनं करोति	स पुस्तकस्य पठनं करोति।
५२--छात्रः गुरुं सेवन् तिष्ठति	छात्रः गुरुं सेवमानः तिष्ठति।
५३--बालकः पाठः पठित्वा भुङ्क्ते	बालकः पाठं पठित्वा भुङ्क्ते।
५४--विद्यालयम् आगत्वा पठिष्यामि	विद्यालयमागत्य पठिष्यामि।
५५--बालिका बालकं दृष्टवान्	बालिका बालकं दृष्टवती।
५६--मया वचांसि श्रोतव्यम्	मया वचांसि श्रोतव्यानि।
५७--भिक्षां ददन् शिशुः हसति	भिक्षां ददत् शिशुः हसति।

४३--लृट् में ब्रू को वच् हो जाता है। ४४--वस् का भाववाच्य में उष् हो जाता है। ४५--कर्मवाच्य में क्रिया कर्म के अनुसार होती है। ४६--प्रेरणार्थक

धातु में शुद्ध धातु के अन्त में णिच् (अर्थात् अय) लग जाता है। प्रेरणार्थक धातुओं के साथ मूल धातु के कर्ता में तृतीया होती है और कर्म में पूर्ववत् द्वितीया ही रहती है। ४७--भाववाच्य में क्रिया सदा प्रथम पुरुष के एकवचन में होती है। ४८--भूतकाल की क्रिया के साथ 'स्म' नहीं लगता। ४९--तृच्, अक् प्रत्ययान्त के साथ षष्ठी तत्पुरुष नहीं होता है। ५०--कर्मवाच्य में में कर्ता में तृतीया और कर्म में प्रथमा होती है। ५१--पठन् के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। ५२--आत्मनेपदी से शानच् और परस्मैपदी से शतृ प्रत्यय होता है। ५३--क्त्वा, शतृ, शानच् और तुमुन् के कर्म में द्वितीया होती है। ५४--उपसर्ग पूर्व होने से क्त्वा को ल्यप् होता है। ५५--कर्तृवाच्य के कर्ता में प्रथमा और उसी के अनुसार क्रियावाचक के लिङ्ग वचन होते। ५६--कर्मवाच्य के कृदन्तीय शब्दों में कर्म के अनुसार लिङ्ग और वचन होते हैं। ५७--जुहोत्यादि गणीय धातु के साथ नुम् नहीं होता।

स्त्रीप्रत्ययान्त तथा समासान्त शब्दों की अशुद्धियाँ

५८--अहोरात्र्यो वर्तते	अहोरात्रः (त्रं) वर्तते।
५९--चन्द्रवदनीं बालां पश्य	चन्द्रवदनां बालां पश्य।
६०--अश्वी गच्छति	अश्वा गच्छति।
६१--सः हंसा पश्यति	सः हंसीं पश्यति।
६२--नृत्यती बाला आगता	नृत्यन्ती बाला आगता।

५८--समाहार द्वन्द्व में अन्त वाले शब्द में 'अ' लगाकर पुंल्लिङ्ग या नपुं० का ए० व० होता है। ५९--दो से अधिक स्वर वाले शब्दों में 'ई' नहीं होता। ६०--'अश्व' का स्त्री० 'अश्वा' होता है। ६१--'हंस' का स्त्री० 'हंसी' होता है। ६२--नृत् धातु से नुम् होता है।

शुद्ध करने के लिए वाक्य

(१) बालकः नृपेण पुस्तकं याचने।

(२) सः गौः दुग्धं दुग्धवान।

(३) त्वं मया किं पृच्छसि ?

(४) सः तव किं ब्रवीति ?

(५) रामेण तण्डुलान् ओदनः पच्यते।

(६) तेन अजां ग्रामः नीयते ।
(७) अरण्येऽधिवस्तुं यतय इच्छति ।
(८) अस्य गिरेरभितो बह्वोऽश्मानः सति ।
(९) दुर्योधनः पांडवाल्लारिनह्यत् ।
(१०) मम वचनं स न विश्वसिति ।
(११) चौराणां भीतोऽस्मि ।
(१२) सः नरः कर्णस्य बधिरोऽस्ति ।
(१३) ज्ञानस्य विना जीवनम् निष्फलम् ।
(१४) रामस्य ऋते धनुर्धरो नास्ति ।
(१५) पत्नी पत्युः सह वनं गच्छति ।
(१६) नृपः सिंहासने अधितिष्ठति ।
(१७) दण्डात् अश्वं ताडयति ।
(१८) नेत्रस्य काणः भिक्षां याचते ।
(१९) सः शौर्ये कृष्णात् सदृशः अस्ति ।
(२०) रामः चन्द्रं दृश्यति ।
(२१) ग्रामस्य उत्तरः गङ्गा अस्ति ।
(२२) धनेन विद्या गरीयसी ।
(२३) पापे जुगुप्सन्ते सज्जनाः ।
(२४) एकस्य वर्षस्य ऊर्ध्वम् स आगमिष्यति ।
(२५) सः नरः पादस्य पादस्य खञ्जः अस्ति ।
(२६) भक्ति देवो रोचते ।
(२७) मा चौरानभैष्ट ।
(२८) अस्य पर्वतस्य पर्वं महावापी वर्तते ।
(२९) स मयि द्रुह्यति)
(३०) अतस्त्वां दूरादेव नमः ।
(३१) हा धिङ् मेऽन्यायाचरणं कुर्वते ।
(३२) धर्मस्य अनुगच्छति ।
(३३) नगरस्य उभयतः विद्यालयाः सन्ति ।
(३४) नृपात् वसुधां याचते ।

(३५) नगरं अजां नयति ।
(३६) अलं श्रमस्य ।
(३७) गणेशं नमः ।
(३८) एतं मुनिं धनं यच्छ ।
(३९) बालकं पुस्तकं रोचते ।
(४०) शिष्ये कुप्यति ।
(४१) स मित्रात् पुस्तकं याचति ।
(४२) धिक् तस्यै पापिने ।
(४३) मुनिः नृपमसूयति ।
(४४) सिंहेन भीतो बालिका ।
(४५) बालकस्य सह बालिका गच्छति ।
(४६) माता पुत्रं स्निह्यति ।
(४७) दण्डेन मम शिरः ताडितवान् ।
(४८) अहं धर्माय उत्सुकः ।
(४९) पुत्रः मातरं स्मरति ।
(५०) कृष्णात् तुल्यः कश्चित् नास्ति ।
(५१) ग्रामेण अन्तिकम् ।
(५२) शतेन पणस्व ।
(५३) गुरोः निन्दति ।
(५४) त्वं नृपस्य सेवसे ।
(५५) विद्या सत्यात् शोभते ।
(५६) मुनिः नृपात् अन्नं भिक्षते ।
(५७) सुखात् वहति ।
(५८) प्रश्नं तस्मात् बालकात् पृच्छ ।
(५९) बालकः चोरेण बिभेति ।
(६०) धनेन ज्ञानं गुरुतरः ।
(६१) अनेन पापेन निवारयति ।
(६२) सर्वाभ्यो नदीभ्यो भागीरथी श्रेष्ठा ।

अष्टादश सोपान

हिन्दी-संस्कृत-अनुवाद के उदाहरण

(१)

१—मैं समझता हूँ कि यह बात उसको स्वीकार होगी। २—जो दुष्ट का सत्कार करता है, वह 'जल में लकीर खींचता है। ३—रोगी की सावधानी से सेवा करो। ४—श्रम से यह कार्य सिद्ध नहीं होगा। ५—तुमने उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। ६—चन्द्रमा के राहु से ग्रस्त होने पर भी रोहिणी उसके पीछे चलती है।

एषां वाक्यानां संस्कृतानुवादः—

१—यथाहं पश्यामि तथा तस्यानुमतं भवेत्। २—रचयति रेखाः सलिले यस्तु खले चरति सत्कारम्। ३—यत्नादुपचर्यतां रुग्णः। ४—अलं श्रमेण। ५—तस्मिन् त्वं साधु नाचरः। ६—अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा।

(२)

१—पढ़ते हुए को पाप नहीं लगता। २—उद्योगी पुरुष को लक्ष्मी प्राप्त होती है। ३—वह मुझ पर विश्वास करता है। ४-जो स्पर्धा करता हुआ सामने आवे, उसे नष्ट कर दो। ५—मुझे ऋषियों के तुल्य समझो। ६—दरिद्रता से मनुष्य लज्जा को प्राप्त होता है। ७—सूर्य लाल ही उदय होता है और लाल ही अस्त होता है।

एषां वाक्यानां संस्कृतानुवादः

१—पठतो नास्ति पातकम्। २—उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः। ३—स मयि प्रत्येति। ४—यः स्पर्धमानोऽभ्येति, तं जहि। ५—विद्धिमामृषिभिस्तुल्यम्। ६—दारिद्र्याद् ह्रियमेति। ७—उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च।

(३)

१—यह बात उस समय मुझे नहीं सूझी। २—वह तृप्त नहीं हुआ। ३—तुम्हारी दुष्टता की शिकायत मैंने आचार्य से कर दी है। ४—तुम्हारे दुःख का

क्या कारण है। ५—मैं राष्ट्रपति जी से मिलना चाहता हूँ। ६—शीघ्र करना तो आसान है, पर गुप्त रूप से करना कठिन है।

एषां वाक्यानां संस्कृतानुवादः

१—इति मम बुद्धौ नापतितम्। २—न तृप्तिमाययौ। ३—तवाविनयमन्तरेण परिगृहीतार्थः कृत आचार्यः। ४—किं निमित्तं ते सन्तापः। ५—राष्ट्रपतिदर्शनानुग्रहमिच्छामि। ६—शीघ्रमिति सुकरम्, निभृतमिति दुष्करम्।

(४)

१—मैं राजा को कुछ नहीं समझता। २—क्यों गोलमाल बात करते हो? ३—बेकार कहाँ जा रहे हो? ४—आपने यहां आने का कष्ट क्यों उठाया? ५—मेरे चार प्रश्नों का उत्तर दो। ६—आप अपनी थकान दूर कीजिए।

एषां वाक्यानां संस्कृतानुवादः

१—राजेति का गणना मम। २—किमिति असंबद्धम् अनुसन्धीयते। ३—क्वानिर्दिष्टकारणं गम्यते। ४—किमिति भवताऽऽत्मा अत्रागमनक्लेशस्य पदमुपनीतः। ५—ब्रूहि मे चतुरःप्रश्नान। ६—परिश्रमविनोदं करोत्वार्यः।

(५)

१—इसने मेरे साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। २—उसको अपने पद से हटा दिया गया है। ३—प्रत्येक पात्र की देखभाल करो। ४—तू ने स्वयं अपना सत्यानाश किया है। ५—बड़ी कठिनाई से जान छूटी।

एषां वाक्यानां संस्कृतानुवादः

१—अनेन मयि नोचितं कृतम्। २—च्युताधिकारः कृतोऽसौ। ३—प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः। ४—त्वया स्वहस्तेनाङ्गाराः कर्षिताः। ५—कथं कथमपि मुक्तः।

(६)

१—यह बात समाप्त करो। २—आगे की बात समझ ली। ३—मौका हाथ से न जाने दे। ४—वह मुझे पिता मानता है। ५—वह बार-बार काम करता है। ६—विद्वान् ही विद्वानों के परिश्रम को समझता है। ७—एकता से

कार्य सिद्ध होते हैं। ८—और कोई चारा नहीं है। ९—प्रसन्नता के स्थान पर दुःख न करो।

एषां वाक्यानां संस्कृतानुवादः

१—संह्रियतामियं कथा। २—परस्तादवगम्यते। ३—न कार्यकालमतिपातयेत्। ४—मां पितेति मानयति। ५—स कार्यं चरीकर्ति। ६—विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्। ७—संहतिः कार्यसाधिका। ८—नान्या गतिः। ९—हर्षस्थाने अलं विषादेन।

(७)

१—अपने बड़ों के उपदेश की अवहेलना न करो। २—पुलिस उसका पीछा कर रही है। ३—वह सदैव मेरी उन्नति के मार्ग में रोड़ा अटकाता रहा है। ४—उसने रमेश को खूब उल्लू बनाया। ५—उसकी मुट्ठी गरम करो, फिर तुम्हारा काम हो जायगा। ६—चार दिन की चाँदनी, फिर अँधेरी रात।

एषां वाक्यानां संस्कृतानुवादः

१—गुरूणामुपदेशान् माऽवमंस्थाः। २—रक्षिवर्गस्तमनुसरति। ३—स मे समुन्नतिपथं सदैव प्रतिबध्नाति। ४—स रमेशं मातृमुखमुपदर्श्य व्याडम्बयत्। ५—उत्कोचं तस्मै देहि तेन तव कार्यं सेत्स्यति। ६—अहः कतिपयानि सम्पदस्ततो व्यापदः।

(८)

१—दूसरे के गुणों को जानने वाले बहुत कम होते हैं। २—पाणिनि के सूत्रों की रचना विचित्र है। ३—बेटा, तुम लोक व्यवहार को नहीं जानते। ४—दुष्ट से किसको डर नहीं लगता है। ५—तुम्हारा हथियार पीड़ितों की रक्षा के लिए है, न कि निर्दोषों को मारने के लिए। ६—सुनार सोने से आभूषण बनाता है। ७—चाँदनी चाँद के साथ जाती है।

एषां वाक्यानां संस्कृतानुवादः

१—न हि परगुणानां विज्ञातारो बहवो भवन्ति। २—विचित्रा हि सूत्राणां कृतिः पाणिनेः। ३—पुत्र, लोकव्यवहाराणाम् अनभिज्ञोऽसि। ४—असज्जनात् कस्य भयं न जायते। ५—आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि। ६—स्वर्णकारः स्वर्णेन अलङ्कारान् निर्माति। ७—शशिना सह याति कौमुदी।

(९)

१—आयु मर्मस्थलों की रक्षा करती है। २—भाग्य से विपत्ति टल गई। ३—यह सारा संसार ही नश्वर है। ४—जले पर नमक डालता है। ५—सबके मन को रुचिकर बात कहना कठिन है। ६—हवा सुखद बहने लगी। ७—इसमें ईर्ष्या नाम मात्र को नहीं है। ८—रोगी से पूछो, सुख से सोया या नहीं। ९—जब आँखें चार होती हैं, मुहब्बत हो ही जाती है।

एषां वाक्यानां संस्कृतानुवादः

१—आयुर्मर्माणि रक्षति। २—दिष्ट्या प्रतिहतं दुर्जातम्। ३—निखिलं जदेव नश्वरम्। ४—क्षारं क्षते प्रक्षिपति। ५—सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः। ६—मरुतो ववुः सुखाः। ७—अदत्तावकाशो मत्सरस्य। ८—रुग्णं सुखशयितुं पृच्छ। ९—तारामैत्रकं चक्षूरागः।

(१०)

१—कहने से करना अच्छा है। २—झगड़ालू झगड़े से बाज नहीं आता है। ३—भूख मुझे खा जाएगी। ४—इससे मेरा काम चल जायगा। ५—उन्होंने लड़ाई के लिए कमर कस ली है। ६—बहू की ननद से नहीं पटती है। ७—बहुत कष्ट न कीजिए। ८—सीधी बात कहिए।

एषां वाक्यानां संस्कृतानुवादः

१—वाचः कर्मातिरिच्यते। २—कलहकामः कलहान्न निवर्तते। ३—बुभुक्षया खादितव्योऽस्मि। ४—इदं मे इष्टसिद्धये कल्पेत। ५—युद्धाय बद्धपरिकरास्ते। ६—वधूर्ननान्दा न संगच्छते। ७—कृतमत्यायासेन। ८—प्रकृतमेवानुसंधीयताम्।

(११)

१—वृक्ष अपने ऊपर तीक्ष्ण गर्मी को सहन करता है। २—भाग्य बलवान् है। ३—यह मूर्ख बकवाद करता है। ४—मैं तुमसे हँसी नहीं कर रहा हूँ। ५—अपना काम करो। ६—मेघरहित चन्द्रमा को चाँदनी प्राप्त हुई। ७—अनुचरों को चाहिए कि स्वामी को धोखा न दें। ८—दुःखित न होइये। ९—घर जाने का समय हो रहा है, जल्दी करो। १०—धन कम होने पर भूख

अधिक लगती है। ११—मुझे लोकनिन्दा से भय है। १२—भाग्य भी पुरुषार्थ की अपेक्षा करता है।

एषां वाक्यानां संस्कृतानुवादः

१—अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णम्। २—प्रभवति विधिः। ३—प्रलपत्येष वैधेयः। ४—नाहं परिहसामि। ५—अनुतिष्ठात्मनो नियोगम्। ६—शशिनमुपगतेयं कौमुदी मेघमुक्तम्। ७—न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः। ८—मा विषीदत। ९—प्रत्यासीदति गृहगमनकालः, त्वर्यताम्। १०—धनक्षये वर्धते जाठराग्निः। ११—लोकापवादाद् भयं मे। १२—दैवमपि पुरुषार्थमपेक्षते।

(१२)

१—तुम सदा मन में लड्डू खाते हो। २—ईश्वर जब देता है तब छप्पर फाड़कर देता है। ३—उसके मुँह न लगना वह बहुत चलता पुरजा है। ४—विष वृक्ष को भी पाल करके स्वयं काटना उचित नही। ५—रात्रि समाप्त हुई। ६—किस के साथ मैं अपने दुःख को बँटा सकता हूँ। ७—मैं तुम्हारी जरा भी परवाह नहीं करता, तुम यों ही बड़े बनते हो।

एषां वाक्यानां संस्कृतानुवादः

१—मनोरथस्य मोदकप्रायानिष्टानर्थां नित्यं भुङ्क्ते। २—भाग्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र। ३—तेन साकं नातिपरिचयः कार्यः, कितवोऽसौ। ४—विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्। ५—रात्रिर्गता। ६—केन साधारणी करोमि दुःखम्। ७—अहं त्वां तृणाय मन्ये, अकारणं गुरुतां धत्से।

(१३)

१—कोयल की बोली कानों को सुखद होती है। २—आपको न दीखे हुए बहुत दिन हो गए। ३—मेरी बात झूठी नहीं हो सकती है। ४—आप की विजय हो। ५—क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, बड़ी विपत्ति में पड़ा हूँ। ६—मैं तुम्हारा और अधिक उपकार क्या करूँ? ७—उसके पास कुछ भी पैसा नहीं है। ८—तुम से क्या कहें? ९—जवानी टल जाती है। १०—तुम्हारी बुद्धि मारी गई। ११—बड़ों की बात बड़ी है। १२—किस को ताना दिया जा सकता है। १३—तुम अपनी तरह ही सबको समझते हो।

एषां वाक्यानां संस्कृतानुवादः

१—कोकिलस्य व्याहृतं कर्णौ सुखयति। २—कापि महती वेला तवादृष्टस्य। ३—न मे वचनमन्यथाभवितुमर्हति। ४—विजयते भवान्। ५—किं करोमि क्व गच्छामि, पतितो दुःखसागरे। ६—किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि। ७—नहि तस्यास्ति किंचित् स्वम्। ८—कि त्वां प्रति ब्रूमहे। ९—यौवनमवगतिं याति। १०—यातस्तवापि च विवेकः। ११—अपूर्वं महतां वृत्तम्। १२—कतम उपालभ्यते। १३—आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यसि।

(१४)

१—उसका मन कहीं और है। २—उसने यह शर्त लगाई। ३—घर में आग लग गई। ४—उत्तर की ओर सिर करके न सोवे। ५—तुम चाहो तो जा सकते हो और चाहो तो ठहर सकते हो। ६—मुझ गरीब पर दया कीजिए। ७—निर्धनों की इच्छाएँ चित्त में उठकर लीन हो जाती हैं। ८—सुबह से शाम तक तुम यहीं ठहरो। ९—क्या यह चोर तो नहीं है। १०—उसकी बात पर दुर्भाव का आरोप न लगाओ। ११—यह शरीर बिना कृत्रिमता के ही सुन्दर है। १२—बिस्तरे पर बैठकर न खावे।

एषां वाक्यानां संस्कृतानुवादः

१—स हृदयेनासंनिहितः। २—इति तेन समयः कृतः। ३—ज्वलनमुपगतं गेहम्। ४—उदक्शिरा न स्वप्यात्। ५—अपि याहि अपि तिष्ठ। ६—दीने मयि दयां कुरु। ७—उत्थाय हृदि लीयन्ते दरिद्राणां मनोरथाः। ८—प्रातः आरभ्य सायं यावत् त्वमत्रैव तिष्ठ। ९—अपि चौरो भवेत्। १०—तस्य वचसि दुराशयं मा आरोपय। ११—इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः। १२—शयनस्थो न भुञ्जीत।

अनुवादार्थ गद्यसंग्रह

(१) महामना मदनमोहन मालवीय

पण्डित मदनमोहन मालवीय हमारे देश के रत्न थे। इनका जन्म २५ दिसम्बर १८६१ ई० को प्रयाग में हुआ था। ये बचपन से ही धार्मिक, सत्यवादी, देशानुरागी और माता-पिता के भक्त थे। इन्होंने बी० ए०, एल०

एल० बी० परीक्षा पास करने के बाद प्रयाग के राजकीय विद्यालय में अध्यापन-कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु देश-प्रेम के कारण समस्त कार्यों को त्याग कर इन्होंने अपने को देश सेवा में लगा दिया। सन् १९१७ ई० में इन्होंने काशी में हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की, जो इनका कीर्ति-स्तम्भ है।

(२) भारतीय गाँव

हम भारतीय हैं। कृषि हमारा मुख्य व्यवसाय है। हमारे देश की भूमि उपजाऊ, पशु दूध देने वाले और वृक्ष फल देने वाले हैं। जो खेती करता है और गाँव में रहता है, उसे कृषक कहते हैं। कृषक पशु पालते हैं, भूमि जोतते हैं, बीज बोते हैं, खेत सींचते हैं और बहुत प्रकार के अन्न पैदा करते हैं। गाँव के चारों ओर हरे-भरे खेत होते हैं। इन हरे-भरे खेतों को देखकर मन प्रसन्न हो जाता है। गाँवों में स्वच्छ वायु, निर्मल जल एवं दूध और दही आसानी से मिल जाता है जिसके कारण ग्रामवासी स्वस्थ रहते हैं। गाँव में कुम्भकार, बढ़ई, जुलाहा, नाई और धोबी आदि रहते हैं। कुम्भकार मिट्टी से घड़ा बनाता है। जुलाहा सूत से कपड़ा बुनता है। नाई कैंची से बाल काटता है। इसी प्रकार धोबी समय पर कपड़ा धोता है। ये सब किसान के भाई हैं। आजकल गांवों की उन्नति के लिए हमारे शासक तत्पर हैं। अब गांवों में विद्यालयों और चिकित्सालयों का अभाव नहीं है। आजकल गांवों में सुप्रबन्ध के लिए समितियाँ स्थापित हैं। इसीलिए थोड़े ही दिनों में हमारे गाँव उन्नतिशील हो जायेंगे।

(३) सुकन्या और च्यवन

प्राचीन काल में शर्याति नामक एक राजा थे। उनके सुकन्या नामक एक कन्या थी। एक बार राजा उसके साथ वन गये। वहाँ महर्षि च्यवन का आश्रम था। महर्षि च्यवन समाधि में मग्न थे। वल्मीक से ढंका हुआ उनका सारा शरीर मिट्टी के स्तूप के समान हो गया था। आश्रम के मनोहर पशुओं और फूलों से युक्त वृक्षों को देखती हुई सुकन्या ने उस स्तूप को भी देखा। तदनन्तर कुतूहलवश उस स्तूप के पास जाकर उसने खद्योत के समान दो प्रकाशों को देखा और देखकर एक काँटे से उन दोनो प्रकाशों को छेद दिया।

इस घटना के बाद ही राजा के सैनिकों के पेट में बड़ी भयानक पीड़ा होने लगी। सैनिकों के कष्टों को सुनकर धार्मिक शर्याति बहुत दुःखी और विस्मित हुए। राजा को चिन्तित देखकर सुकन्या ने अपने कृत्य को पिता से बतला दिया। तदनन्तर डरे हुए राजा महर्षि के समीप गये। सुकन्या के अपराध से अन्धीभूत मुनि के साथ राजा ने सुकन्या का विवाह करके उन्हें प्रसन्न किया। सरल व्यवहार, विनीत स्वभाव और मधुर वाणी से सुकन्या ने भी थोड़े ही दिनों में मुनि को सन्तुष्ट कर लिया।

(४) दरिद्र सुदामा

दरिद्र सुदामा कृष्ण के मित्र थे। एकदिन धनाभाव से पीडित उनकी पत्नी ने कहा—ब्रह्मन्! साक्षात् लक्ष्मी के पिता श्री कृष्ण तुम्हारे मित्र हैं। आजकल वे द्वारिकापुरी में राजा हैं। तब आप क्यों नहीं उनके पास जाते? वे दुःखित परिवार के लिए तुम्हें अपार सम्पत्ति प्रदान करेंगे। इस प्रकार पत्नी के द्वारा प्रार्थित उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के पास जाने का विचार किया।

बहुत समय के बाद आये हुए मित्र को देखकर श्रीकृष्ण ने अत्यधिक आनन्द के कारण दोनों भुजाओं से उनका आलिङ्गन किया। मित्र को सिंहासन पर बैठाकर भगवान् ने स्वयं ही उनके पैरों को धोया। विभिन्न प्रकार की बातें करते हुए भगवान् ने सुदामा से पूँछा—हे ब्रह्मन्! तुम घर से क्या भेंट लाये हो? मुझे दो। भेंट के लिए लाये हुए तण्डुलों को सुदामा देना नहीं चाहते थे। किन्तु श्रीकृष्ण ने स्वयं ही उसे लेकर बड़े प्रेम से खाया।

मित्र के यहाँ एक रात बिता कर प्रातः सुदामा अपने घर लौटे। निःस्पृह सुदामा ने श्रीकृष्ण से कुछ भी नहीं माँगा। किन्तु अपने घर आने पर अपनी कुटिया के स्थान पर महल देखकर इन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। तदनन्तर पत्नी के द्वारा प्रविष्ट कराये जाते हुए सुदामा ने घर के अन्दर प्रचुर धन-धान्य देखकर यह जान लिया कि यह सब श्रीकृष्ण का ही प्रसाद है।

(५) महर्षि व्यास

महाभारत जैसे अनुपम ग्रन्थ की रचना करने वाले महान पुरुष का नाम व्यास है। प्राचीन काल में हस्तिनापुर के निकट यमुना नदी में एक द्वीप था।

इसी द्वीप में यमुनातीर-वासी धीवर-राज की कन्या सत्यवती के गर्भ से इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम पराशर ऋषि था। व्यास का बचपन का नाम कृष्ण था। हस्तिनापुर के निकट ही सरस्वती नदी के तट पर इनका आश्रम था। कुछ दिनों के बाद भागीरथी के तट पर विशाला बदरी नामक स्थान में व्यास ने अपना आश्रम बना लिया। बदरी आश्रम में ही रहने के कारण इनका दूसरा नाम बादरायण मुनि भी पड़ा। जन-कोलाहल से दूर इसी आश्रम में निवास करते हुए इन्होंने वेदों का अध्ययन कर उनका वर्गीकरण किया। इसीलिए जन-समूह इन्हें वेदव्यास भी कहने लगा। यहीं पर ही इन्होंने 'महाभारत' की भी रचना की। महाभारत वेद, उपनिषद एवं इतिहास आदि का सार है। इसमें धर्म एवं सदाचार के उपदेश हैं। व्यास जी का यश-शरीर अमर है। वे त्रिकाल वेत्ता थे।

(६) कालिदास

कालिदास संस्कृत भाषा के महान् कवि थे। किन्तु यह खेद की बात है कि हमें महान् भारतीय कवि कालिदास के व्यक्तिगत जीवन के विषय में विश्वसनीय सामग्री उपलब्ध नहीं है। इनके सम्बन्ध में अनेक मनोरञ्जक घटनायें प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए एक स्थान पर उनको नवयुवावस्था में पूर्ण रूप से मूर्ख कहा जाता है और बाद में देवी काली की कृपा से उन्हें ज्ञान प्राप्ति हुई। तब से ये कालिदास के नाम से विख्यात हुए। दूसरी कहानी यह है कि अपनी स्त्री द्वारा उन्हें कवित्वशक्ति प्राप्त हुई। तीसरी कहानी यह है कि वह जन्म से गड़ेरिया थे और धारा नगरी के राजा भोज के समकालीन थे।

कहा जाता है कि कालिदास ने लगभग ४१ पुस्तकें लिखी हैं लेकिन यह बात अत्यन्त संदिग्ध है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि कुछ निम्न श्रेणी के लेखकों ने अपनी रचनाओं को सर्वप्रिय बनाने के लिए उनके साथ कालिदास का नाम जोड़ दिया है। इनके प्रमुख ग्रन्थ ये हैं—(१) काव्य—रघुवंश और कुमारसम्भव। (२) नाटक—शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्र। (३) मुक्तककाव्य—मेघदूत और ऋतुसंहार।

सरस्वती के मुकुट में कालिदास सबसे प्रकाशवान रत्न हैं। निःसंदेह ये संस्कृत साहित्य के सर्वोत्तम कवि हैं। भवभूति संस्कृत नाटक लिखने में तथा

भारवि, माघ और श्रीहर्ष संस्कृत काव्य लिखने में उनकी समता के हैं, परन्तु ऐसा कोई कवि नहीं है जो नाटक और काव्य दोनों में अकेला ही इनकी बराबरी कर सकता हो। इनकी शैली सरल, शुद्ध और सुन्दर है। यह संक्षिप्त और स्पष्ट है। इनकी भाषा में प्रवाह है और वह दीर्घ सामासिक पदों से रहित है। भाषा सरल है लेकिन उसमें अलङ्कारों की कमी नहीं। इन्होंने प्राकृतिक दृश्य और प्राकृतिक पदार्थों का सजीव और स्पष्ट वर्णन किया है। इसलिए वे 'प्रकृति के कवि' कहे जाते हैं। प्रकृति का वर्णन करते समय वे हमें ऐसे प्रतीत होते हैं मानों कि उसके एक अङ्ग हों। इन्हीं गुणों के कारण भारतीय तथा विदेशीय समालोचकों और कवियों ने इनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

(७) सम्राट् अशोक

इस सार रहित संसार में बहुत से मनुष्यों ने जन्म प्राप्त किया और प्राप्त करते हैं किन्तु वस्तुतः जन्म वे ही प्राप्त करते हैं जो नाना प्रकार के अच्छे कार्यों द्वारा संतप्त विश्व को सुख प्रदान करते हैं। दया की मूर्ति सम्राट् अशोक ने विश्व की शान्ति के लिए नाना प्रकार के कार्य किये हैं। वीरवरचन्द्रगुप्त के पौत्र तथा बिन्दुसार के पुत्र अशोक मौर्यवंश के महान् शासक हुए। इस सम्राट् ने ईसा से २७० वर्ष पूर्व मगध के सिंहासन को सुशोभित किया था। इसके नौ वर्ष पश्चात् इन्होंने कलिङ्ग के राजा के साथ युद्ध आरम्भ किया था। इस युद्ध में कई लाख सैनिक मारे गये और कई लाख घायल हुए। इसके पूर्व अशोक का स्वभाव कठोर था। परन्तु इस युद्ध में मृतकों को देखकर तथा मरने वालों के विलाप को सुनकर इनका हृदय अचानक बदल गया। इन्होंने सोचा—मानव का स्वार्थ भयङ्कर है। स्वार्थ के लिए ही मैंने युद्ध किया। तदनन्तर इन्होंने बौद्ध धर्म धर्म स्वीकार कर लिया। संसार में बौद्धधर्म के प्रचार के लिए, प्रजा में अत्याचार को रोकने के लिए तथा सभी हित करने के लिए इन्होंने सुयोग्य अधिकारियों की नियुक्ति की। सम्पूर्ण राज्य में स्तूपों, खम्भों और पर्वत की शिलाओं पर धर्म और न्याय के नियमों को लिखवा दिया। सत्य की ही विजय होती है—यह इनका सुनिश्चित मत था।

(८) भगवान् बुद्ध

प्राचीन काल में नेपाल देश में कपिल वस्तु नगर में शाक्य क्षत्रियों के वंश में

शुद्धोदन नामक राजा हो चुके हैं। इन्हीं की पत्नी मायादेवी के गर्भ से सिद्धार्थ का जन्म हुआ था। ये वंश के नाम से गौतम कहलाये। सातवें दिन ही माता से वियोग को प्राप्त सिद्धार्थ का पालन पोषण उनकी मौसी गौतमी ने किया। युवा होने पर इनका विवाह यशोधरा नाम की शाक्य जाति की कन्या के साथ कर दिया गया। बाद में इनके राहुल नामक बच्चा भी पैदा हुआ।

ये मनुष्य योनि में भोगे जाने वाले भोगों में अत्यन्त दृढ़ नाश की भावना से राज्य भोगों से उदास होकर किसी दिन रात को सोने के समय घर से विरक्त होकर चल दिये। इसके पश्चात् ज्ञान प्राप्त होने पर ये 'बुद्ध' कहलाये। इन्होंने अहिंसा पर विशेष बल दिया। महर्षि बुद्ध देव ने स्थिर कीर्ति को जगत् में स्थापित करके दो हजार छः सौ चौबीसवें कलियुग सम्वत् में मोक्ष को प्राप्त कर लिया। पुराण इस मुनि को विष्णु का अवतार कहते हैं।

(९) सरदार वल्लभभाई पटेल

सरदार उपाधि धारण करने वाले तथा भारत के प्रिय वल्लभ का जन्म गुजरात प्रान्त के करद नामक ग्राम में ३१ अक्तूबर सन् १८७५ ई० हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा नाडियाद नगर के विद्यालय में हुई। जिले की वकालत परीक्षा उत्तीर्ण करके यह मिडिल टैम्पिल नामक विद्यालय में विधिशास्त्र का अध्ययन करने के लिए इङ्गलैण्ड गये। इन्होंने सन् १९१३ में अहमदाबाद में वकालत आरम्भ कर दी थी। पुनश्च सन् १९१६ ई० में साबरमती के तट पर सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की थी। इन्होंने ही सन् १९२४ में बारदोली नामक ग्राम में स्वराज्य-आश्रय की स्थापना की थी। उसी वर्ष आपने किसानों का संगठन करके करविरोधी आन्दोलन भी चलाया था। अखिल भारतीय कांग्रेस महासभा के सदस्य इनको लौहपुरुष मानते थे। ये अनुशासनप्रिय, स्पष्टवक्ता तथा वचन का पालन करने वाले थे। स्वतन्त्रता के आन्दोलन में ये राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के दाहिने हाथ थे।

(१०) आत्मसंयमन

आत्मसंयम का अर्थ है—अपने मन, इन्द्रियादि को वश में रखना। यह तीन प्रकार का होता है—मन का, शरीर का और वाणी का। मन का संयम इस प्रकार करना चाहिए कि हृदय में दुष्ट संकल्प उठने ही न पावें। इस बात का

हमें दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए कि दुष्ट विचारों से अपने मन की शान्ति भंग नहीं होने देंगे। तत्काल ही बुरे विचारों का नियमन करना चाहिए। मानवी शरीर का उपयोग सत्कार्य करने में ही होना चाहिए। परोपकार से इस नश्वर शरीर की शोभा है। इसके विरुद्ध यदि हम अपने शरीर का दुरुपयोग करेंगे तो अवश्य ही परमेश्वर हम पर कुपित होंगे। वाणी का भी संयमन तुरन्त ही करना चाहिए। ईश्वर ने मनुष्य को वाणी का सामर्थ्य इसी लिए दिया है कि वह इसके उपयोग से मनुष्य-जाति में प्रेम की वृद्धि करे। हमें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए कि जिससे किसी के हृदय को धक्का लगे। प्रिय बोलना चाहिय, अप्रिय नहीं। शस्त्र की मार को एक बार मनुष्य सह सकता है; किन्तु शब्द की मार सहन करना कठिन है। अतएव जब कभी कठोर वचन बोलने का अवसर आ जाय तब वाणी संयम करना चाहिए।

(११) समय का सदुपयोग

मनुष्य के सभी कार्य और सभी इच्छित वस्तुएँ समय के सदुपयोग से से ही सिद्ध होती हैं। इसलिए मानव-जीवन में समय का कितना महत्त्व है, यह नहीं कहा जा सकता है। इस विश्व में कार्य अनन्त हैं और आयु अत्यन्त अल्प है। अत एव विद्वानों ने जीवन का जल चंचल तरंग के समान अत्यन्त क्षणभंगुर बताया है। फिर भी मनुष्य समय का सदुपयोग नहीं करता है। धन आदि पदार्थ नष्ट हो जाने पर भी फिर से प्राप्त किये जा सकते हैं। परन्तु नष्ट हुआ समय तो पूरी तरह से नष्ट हो जाता है। नष्ट हुये समय की पुनः प्राप्ति किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है। जीवन का प्रत्येक क्षण जीवन यात्रा को सफल बनाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अवकाश के समय का भी सदुपयोग करने वाले व्यक्ति बिना परिश्रम के आसानी से बड़े बड़े कार्य कर लेते हैं। इसलिए समय के सदुपयोग में सदा सावधान रहना चाहिए।

(१२) संत विनोबा

संत बिनोबा भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं। भारतीय संस्कृति, भारतीय विचारधारा, भारतीय तत्त्वज्ञान, भारतीय साहित्य, ये सब विनोबा में मानों प्रस्फुटित और पल्लवित हो उठे हैं। इनकी एक-एक बात में मौलिकचिन्तन के

दर्शन होते हैं। ये कष्ट सहने के आदी हैं। मस्ती और फक्कड़पन इनका स्वभाव है। इसीलिए हमारे देश के अशिक्षित किसान भी शिव और उदात्त के प्रतीक विनोबा को देखकर मंत्र-मुग्ध से उनके पीछे हो लेते हैं। तपस्वी विनोबा में अहंभाव एवं अतिशयोक्ति का नितान्त अभाव है। इनका सिद्धान्त है कि नारायण की सेवा तुलसी, बेल-पत्र या फूल से नहीं होगी, वरन् दुःख-ग्रस्तों को सन्तोष पहुंचाने से ही भगवान को सन्तोष पहुँचेगा। मैं ऐसा सोचता हूँ कि गाँधी जी ने जो काव्य अधूरा छोड़ा था, उसे विनोब पूरा कर रहे हैं।

(१३) विश्व-प्रेम

प्रेम का अर्थ है—व्यक्तित्व का त्याग। प्रेम की कोई सीमा नहीं है। इसके शुद्ध स्रोत की कोई थाह नहीं ले सकता है। इस प्रेम की स्वाभाविक वृत्ति विश्व-प्रेम द्वारा सम्भव है। जो अपनी आत्मा को पंच महाभूतों का ही गुण मानते हैं, उन्हीं के लिए विश्व-प्रेम कठिन है। विश्व-प्रेम देश और जाति के के संकुचित बन्धनों को स्वीकार नहीं करता है। इस प्रेम भी पवित्र ज्वाला में जातीयता आदि की रेखाएँ जल कर भस्म हो जाती हैं। 'वसुधा' ही परिवार हैं मानने वालों के लिए शत्रु मित्र का भेद नहीं रहता है। दरिद्र, अपाहिज एवं लूले-लँगड़े ही विश्व-प्रेमी के सहोदर बन जाते हैं। विश्व-प्रेम द्वारा ही परमपिता परमेश्वर का साक्षात्कार किया जा सकता है। विश्व-प्रेमी के लिए संसार उसका शरीर हो जाता है। वह अपने शरीर को संसार के दूसरे लागों के शरीर से भिन्न नहीं समझता है।

(१४) रामायण एवं महाभारत

रामायण संसार का सर्वप्रथम महाकाव्य है। यह एक ऐतिहासिक ग्रंथ है। इसमें भगवान् रामचन्द्र जी की जीवन-गाथा है और साथ ही यह भी बताया गया है कि वैदिक धर्म का पालन कैसे करना चाहिए। इसके रचयिता वाल्मीकि मुनि हैं। महाभारत भी एक विशाल महाकाव्य, इतिहास और राजनीति एवं धर्म का ज्ञान कराने वाला ग्रन्थ है। महाभारत में अठारह पर्व हैं। इसकी मूल कथा कौरवों-पाण्डवों के युद्ध की कथा है। इस कथा के साथ अनेक कथाएँ और भी हैं; अनेक आख्यान हैं; धर्म, ज्ञान, नीति और सदाचार के अनेक श्लोक हैं। गीता भी इसी का अङ्ग है। गीता का संसार में बडा आदर है।

सारा महाभारत ही ज्ञान का भण्डार है। महाभारत साक्षात् वेद स्वरूप है। यह पाँचवाँ वेद कहलाता है। हिन्दू सभ्यता में जो सुन्दर और श्रेष्ठ है, उसमें से अधिकांश महाभारत की देन है।

(१५) धर्म

धर्म ईश्वर का रूप है। किसी वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। धर्महीन वस्तु का कोई रूप नहीं। जैसे आग का धर्म 'ताप' है। विना 'ताप' के आग का कोई अस्तित्व नहीं। आचार्य कौटिल्य अहिंसा को धर्म कहते हैं। जीवमात्र पर दया करना, सत्य बोलना, दुर्व्यसनों से बचना, पुण्यकर्म करना आदि धर्म के अन्तर्गत आते हैं। धर्म का पालन कर मनुष्य स्वस्थ, सुखी और सम्पन्न होकर मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है। हमारा देश धर्मप्रधान देश है। यहाँ के सभी निवासी धर्म की ओर स्वाभाविक अभिरुचि रखते हैं। भौतिक सुखों के साथ ही साथ आत्मा के चिर सुख की खोज करना भी भारतीयों का प्रथम कार्य रहा है। इन्होंने समस्त जीवधारियों में ईश्वर की सत्ता का आभास पाया है। जब-जब धर्म की हानि हुई, स्वयं भगवान ने अवतार लेकर धर्म की रक्षा की है। आजकल धर्म की ओर लोगों की रुचि कम होने लगी है। इसीलिए जन-समुदाय दुःखी भी है। हमें अपने जीवन में धर्म का आचरण करना चाहिए।

(१६) शिवरात्रि

हिन्दू धर्म के व्रत और त्योहारों के इतिहास में शिवरात्रि का बडा महत्त्व है। यह व्रत फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी को मनाया जाता है। इस व्रत को स्त्री, पुरुष, बाल एवं वृद्ध सभी बड़े उत्साह और श्रद्धा से मनाते हैं। इस व्रत में शिव जी की पूजा होती है। इस व्रत की कथा अत्यन्त प्राचीन है। व्याध अनजाने में ही दिन भर उपवास करके और शिवजी पर वेलपत्र चढ़ा कर इसके प्रभाव से स्वर्गलोक को गया था। प्रातः स्नानादि से निवृत होकर शिवालय में जाकर धूप, दीप एवं नैवेद्य से पूजा करके शिवलिङ्ग पर जल चढ़ाना चाहिए। तदनन्तर घर आकर श्रद्धा-भक्ति से ब्राह्मणों को यथाशक्ति दान देना चाहिए। रात भर मन्दिर में जागरण करना चाहिए। इस अवसर पर यज्ञ एवं रात्रिपूजन का भी विधान करना चाहिए। ईश्वर के सच्चे स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। तभी सच्चे शिव की प्राप्ति संभव है।

(१७) व्यायाम

धर्म का प्रथम साधन शरीर है। नीरोग शरीर से ही सब सुख सम्भव है। शरीर को कार्यशील बनाये रखने के लिए व्यायाम की आवश्यकता होती है। व्यायाम करने से सारा शरीर दृढ़ बन जाता है। हृदय की गति में वेग उत्पन्न हो जाता है तथा पाचनशक्ति भी अपना कार्य सम्यक् प्रकार से करती है। व्यायाम का सबसे अधिक प्रभाव व्यक्ति के मस्तिष्क पर पड़ता है। व्यायाम द्वारा मस्तिष्क का विकास होता है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क रहता है। व्यायाम द्वारा मनुष्य में मानवोचित गुणों की वृद्धि होती है। आत्मा की रक्षा करने के लिए हमें नित्य-प्रति व्यायाम करना चाहिए। हमारे देश की उन्नति तभी सम्भव है जब कि व्यायामशील पुरुषों का अभाव न हो।

(१८) अनुशासन

अनुशासन शब्द का निर्माण 'अनु' और 'शासन' इन दो शब्दों से हुआ है। 'अनु' शब्द का प्रयोग पीछे के अर्थ में किया जाता है। शासन का अर्थ अत्यन्त विस्तृत है। इसका कार्य क्षेत्र पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन है। अनुशासन के विना जीवन में एक क्षण भी काम नहीं चल सकता है। इसका महत्त्व जीवन में उसी प्रकार है जिस प्रकार भोजन और पानी का का। अनुशासन के बल पर ही किसी राष्ट्र की उन्नति सम्भव है। अतएव स्वयं को अनुशासन में रखना मनुष्य का परम पुनीत कर्त्तव्य है। इससे अनेक लाभ हैं। स्वार्थपरता इसी से दूर भागती है। चरित्र का निर्माण भी इसी से होता है। नागरिकता का विकास भी इसी से ही होता है। अनुशासन के विकास के अनेक साधन हैं। इसके बिकास के लिए समाज में शिक्षा-प्रसार अत्यन्त आवश्यक है। उत्तरदायित्व, स्वदेश-प्रेम आदि की भावनाओं को प्रोत्साहन देना भी इसके विकास का भाग है। यदि हम अपना जीवन सुखमय एवं सरस बनाना चाहते हैं, तो हमें शीघ्र ही अनुशासन के व्रत का पालन करना चाहिए।

(१९) शिष्टाचार

किसी भी कार्य को सुन्दर ढंग से करने का नाम शिष्टाचार है। शिष्टाचार से हमारे प्रतिदिन के कार्य सुन्दर और आकर्षक लगते हैं। शिष्टाचार का तत्त्व

अग्नि के समान छिपाये से भी नहीं छिपता। इसका प्रभाव समस्त व्यक्तियों पर पड़ता है। शिष्टाचार में परस्पर एक दूसरे को आकर्षित कर लेने का एक विचित्र गुण होता है। किसी भी उच्चाभिलाषी युवक का शिष्टाचार ही उस युवक के भाग्य का निर्माण कर देता है। साधारणतः यह देखने में आता है कि शिष्टाचार-निष्ठ व्यक्ति स्त्रियों को शीघ्रता से अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं और इस प्रकार उनको पत्नियाँ मिल जाती हैं। इसी प्रकार अच्छे आचार-व्यवहार की स्त्रियाँ भी पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करके पति प्राप्त कर लेती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिष्टाचार का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है।

(२०) जीवन-स्तोत्र

जीवन एक वास्तविक और गम्भीर वस्तु है। मृत्यु इसका अन्त नहीं कर सकती है। 'मिट्टी से हम उत्पन्न हुये हैं और मिट्टी ही में मिल जाते हैं' यह कथन इस शरीर के लिए है, न कि आत्मा के लिए। तात्पर्य यह है कि यद्यपि मानव शरीर नश्वर है, तथापि इस शरीर में निवास करने वाली आत्मा अजर और अमर है। अतएव हमारे जीवन का यह उद्देश्य कदापि नहीं हो सकता कि हम जीवन-भर भौतिक आनन्दों का उपभोग करते रहें अथवा सदैव दुःख ही उठाते रहें। इसके विपरीत हमारे जीवन का उद्देश्य है कि हम प्रतिदिन अपने कर्त्तव्यों का पालन करें और नित्य-प्रति उन्नतिशील होते चले जायँ। यह नितान्त सत्य है कि हमारा हृदय प्रबल और साहसी है; परन्तु यह वस्त्र से आच्छादित ढोल के सामन धीरे-धीरे धड़क रहा है और अपनी प्रत्येक धड़कन के साथ हमें चिता की ओर ले जा रहा है। हमें अनिश्चित भविष्य पर विश्वास नहीं करना चाहिए, वह चाहे कितना ही आनन्दप्रद क्यों न हो। हमें भूतकाल की भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए क्योंकि वह बीत चुका है और अब पुनः वापस नहीं आ सकता। हमें तो केवल वर्तमान की ही चिन्ता करनी चाहिए क्योंकि इसी का महत्व हमारे जीवन में सर्वाधिक है। महान व्यक्तियों के जीवन से हमें यही शिक्षा मिलती है कि हम भी अपने जीवन को उन महान् पुरुषों के जीवन के समान पवित्र और महान् बना सकते हैं। फिर, मरने के बाद हम भी अपने बाद आने वालों के लिए ऐसे पदचिह्न छोड़ जायेंगे, जो अकेले, निस्सहाय एवं जीवन में निराश हो उठे हों, परन्तु हमारे

उदाहरणों से जिनमें फिर साहस एवं शक्ति का सञ्चार हो उठे और अपने जीवन-पथ पर वे सुचारु रूप से अग्रसर हो सकें।

(२१) क्षमा

क्षमा धर्म का प्रधान अङ्ग है। धीर पुरुष को ही क्षमा ग्रहण करतो है धैर्य के अभाव में क्षमाशील होना कठिन ही नहीं, असम्भव है।

एक गृहस्थ के लिए क्षमा अत्यावश्यक है। यदि गृहस्थ क्षमाशील न हो तो दिन-रात उसे लड़ाई-झगड़ा करना पड़े और उसका सुख मिट्टी में मिल जाय। जिसके हाथ में क्षमा रूपी तलवार है, उसका दुर्जन क्या कर सकता है। इस संसार में क्षमा से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है। क्षमावान का दोनों लोक सुधारता है। मृदुता से मनुष्य कठोर काट सकता है और कोमल को भी काट सकता है। संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जो क्षमा से साध्य न हो। कहावत है 'ठंडा लोहा गर्म को काट सकता है; गर्म ठंडे को नहीं।

(२२) वर्षा-ऋतु

यद्यपि ऋतुओं में वसन्त ऋतु सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है, तथापि वर्षा ऋतु का भी महत्त्व कम नहीं है। भारतवर्ष ऐसे कृषि-प्रधान देश के लिए तो इस ऋतु का और भी महत्त्व है। वर्षा ऋतु में बादल गरज गरजकर हमें अपना संगीत सुनाते हैं, हरी-भरी सन्ध्या हमें उन्मत्त बना देती हैं। इसी ऋतु मे सूखो सरिताओं को फिर से सुन्दर नव-जीवन मिलता है। वर्षा की प्रथम बूँदों के पड़ते हो वन-उपवन पनप जाते हैं, पीले-पीले पल्लव फिर से हरे-भरे हो जाते हैं। घनघोर घटाओं को देखकर मयूर प्रसन्न होकर नाचने लगते हैं। हम कृषक भी वर्षा ऋतु में अपने छोटे से घर में सुख का संसार बसा लेते हैं।

(२३) बालचर

बालचर-संस्था अब प्रायः प्रत्येक विद्यालय में है। सर्व प्रथम यह संस्था अफ्रीका में प्रारम्भ हुई थी। जब लड़का बालचर बनता है, तब उसे निम्न प्रतिज्ञा करनी पड़ती है—

(१) मैं ईश्वर, राष्ट्र के प्रधान और अपनी मातृभूमि के प्रति कर्त्तव्य पालन करूँगा।

(२) मैं दूसरों की सेवा करता रहूँगा।

(३) मैं बालचर-धर्म का पालन करूँगा।

बालचर की बात पर विश्वास किया जाता है। यह परमेश्वर, माता-पिता, अपने बड़े अधिकारो का भक्त तथा अपने अधीन लोगों का शुभचिन्तक होता है। इसका कर्त्तव्य है कि वह दूसरों की सहायता और सेवा करे।

यह सबका मित्र होता है एवं प्रत्येक बालचर को अपना भाई मानता है। यह नम्र और विनयी होता है। बालचर-संस्था का मुख्य उद्देश्य है—प्राणिमात्र की सेवा।

(२४) तीन बातें

मनुष्य को अपने जीवन में तीन बातों को प्रधानता देनी चाहिए। प्रथम बात है—उद्योग। बिना उद्योग के बैठना अनुचित है। जिस देश में उद्योग की शिक्षा नहीं है, उस देश के लड़के शीघ्र ही देश का नाश कर देंगे। उद्योग के अतिरिक्त संसार को सुखमय बनाने का अन्य उपाय नहीं है। जब मन उद्योग में लग जाता है, सब दुःख भूल जाता है। आलस्य के कारण ही भारतवर्ष निर्धन हो गया है, अतएव हमें उद्योग करना चाहिए।

दूसरी बात है—भक्ति। दिन भर उद्योग करने के बाद शाम को और प्रातः काल परमेश्वर का स्मरण करना चाहिए। भगवान ने स्वयं कहा है कि मैं योगियों के हृदय में न मिलूँ और कहीं भी न मिलूँ, तो जहाँ कीर्तन चल रहा है, वहाँ तो अवश्य मिलूँगा। लेकिन यह भक्ति उद्योग करने के बाद ही करने की वस्तु है।

तीसरी बात है—सीखना और सिखाना। जीवन में जो-जो सिखाने योग्य हो वह सिखाते रहना चाहिए और सीखते रहना चाहिए। इन सबके अतिरिक्त दूसरा सुख का उपाय नहीं है।

(२५) मां !

माँ! न तो मैं मन्त्र जानता हूँ, न यन्त्र; अहो! मुझे स्तुति का भी ज्ञान नहीं है। न मुझे आवाहन का ज्ञान है और न ध्यान का ही। स्तोत्र एवं कथा का भी ज्ञान नहीं है। न तो मैं तुम्हारी मुद्रायें जानता हूँ और न मुझे विलाप

करना ही आता है। परन्तु मैं एक बात जानता हूँ—केवल तुम्हारा अनुसरण, तुम्हारे पीछे चलना।

माँ! मैं पूजा की विधि नहीं जानता हूँ। मेरे पास धनाभाव भी है। मैं स्वभाव से आलसी हूँ। इन सब कारणों से तुम्हारे चरणों की सेवा में जो त्रुटि हो गई है, उसे क्षमा करना क्योंकि कुपुत्र का होना सम्भव है, किन्तु कुमाता कहीं भी नहीं होती है।

शशिमुखि! अब मुझे मोक्ष की इच्छा नहीं है, संसार के ऐश्वर्य की भी इच्छा नहीं है, विज्ञान की भी अपेक्षा नहीं है, सुख की भी तनिक इच्छा नहीं है। अतः तुमसे मेरी यही याचना है कि मेरा जन्म 'मृडानी', 'रुद्राणी', 'शिव', 'शिव', 'भवानी' इन नामों का जप करते हुए बीते। माँ! मेरे समान कोई पातकी नहीं है और तुम्हारे समान कोई पाप-हारिणी नहीं है ऐसा जानकर जो उचित जान पड़े, वह करो।

(२६) भारत का संविधान

"हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने

तथा

उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक, न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने

तथा

उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुरक्षित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए।

दृढ़ संकल्प होकर

अपनी इस संविधान सभा में एतद्-द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

भारत ने अपने इस संविधान के द्वारा घोषणा की है कि वह अब पूर्णरूप से स्वतंत्र है; उस पर किसी विदेशी का अधिकार नहीं। इस संविधान के द्वारा भारत में ऐसी शासन-व्यवस्था कायम की गई है, जिससे सभी वयस्क

स्त्री-पुरुषों को मत देने का अधिकार है। पुनश्च इस संविधान के द्वारा भारत में संघात्मक सरकार की स्थापना की गई है। संविधान ने संघ के केन्द्र एवं राज्यों में संसदात्मक प्रणाली की सरकार को स्थापित किया है।

(२७) संयुक्त राष्ट्रसंघ

पिछले विश्वयुद्ध के भीषण संहार से जब संसार के सारे देश काँप उठे थे तब संयुक्त राष्ट्रसंघ का जन्म हुआ। इस समय संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्य-संख्या तिरासी है। संयुक्तराष्ट्र के लोगों ने निश्चय किया है कि आने वाली सन्ततियों को युद्ध की आवृति से बचायेंगे जिसने हमारे जीनव-काल में दो वार मानव-जाति पर असीम कष्ट ढाए हैं और मूल मानव-अधिकारों में आस्था, व्यक्ति के व्यक्तित्व का आदरयुक्त मूल्य, स्त्री-पुरुष एवं छोटी-बड़ी जातियों के समानाधिकार को दुहरायेंगे और स्वतन्त्रता के विस्तृत क्षेत्र में सामाजिक उत्थान एवं जीवन-स्तर को उत्साहित करेंगे और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए भले पड़ोसियों की भाँति एक दूसरे के प्रति सहनशील बनने एवं शान्ति से रहने की भावना अपनायेंगे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा को स्थिर करने के लिए अपनी शक्ति को संगठित करेंगे तथा नियमों की स्वीकृति एवं विधानों की स्थापना द्वारा विश्वास दिलायेंगे कि साझे हित के अतिरिक्त शस्त्र-बल का प्रयोग नहीं करेंगे और सबकी आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संस्था स्थापित करेंगे।

(२८) पंचशील

आजकल के आणविक युग में विश्व के राष्ट्रों को साथ-साथ रहने के मन्त्र की दीक्षा देने का मुख्य श्रेय भारत को है। सह-अस्तित्व के वे पाँच सिद्धान्त, जो अब पंचशील के नाम से प्रसिद्ध हैं, निम्नलिखित हैं।

(१) एक दूसरे की क्षेत्रीय एकता एवं सार्वभौमिकता का परस्पर सम्मान।
(२) अनाक्रमण।
(३) एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना।
(४) समानता और पारस्परिक लाभ।
(५) शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व।

(२९) कठिनाइयाँ

न तो सुख का जीवन और न यत्न व आराम का जीवन ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है। कठिनाइयों से ही मनुष्य मनुष्य बनता है। कठिनाइयाँ हमारी सर्व-

श्रेष्ठ गुरु हैं। हम सफलता की अपेक्षा असफलता से अधिक शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। बड़े-बड़े अनुभव तथा ज्ञान दुःखों के समय ही प्राप्त हुए हैं। संकट ही हमको हमारी शक्तियों का अनुमान कराते हैं। कठिनाइयाँ दुर्बल और मनोबल से हीन पुरुष को ही डरा सकती हैं परन्तु वे वीर पुरुष के लिए अधिक उत्साह बढ़ाने वाली होती हैं।

(३०) कुशल गृहिणी

गृहिणी परिवार की आधार-शिला है। वस्तुतः उसी पर परिवार की श्री एवं समृद्धि निर्भर करती है। अर्थ-संकट के इस युग में गृहिणी का दायित्व और महत्त्व बहुत बढ़ गया है। किन्तु आजकल जैसे कई वस्तुओं का अभाव हो रहा है, उसी प्रकार गृहिणियों की एकसम्पत्ति भी छिनती नजर आ रही है। नयी चकाचौंध में उन्हें अपने कर्त्तव्यों की ओर ध्यान नहीं है। महिला-समाज को अपने कर्त्तव्यों की ओर पूरा ध्यान देना चाहिए। तभी उसका पूर्व गौरव उसे प्राप्त होगा। यही नहीं, देश, जाति और परिवार का जीवन सुखी होगा।

संस्कृत-निबन्ध

निबन्ध से तात्पर्य ऐसे लेखों से है जिनमें विचार-परम्परा के साथ-साथ लेखक अपने विचारों, भावों और मनोवृत्तियों का प्रकाशन अपनी भाषा एवं शैली में करता है। निबन्ध के मुख्यतया चार भेद हैं:—

(१) वर्णनात्मक निबन्ध—इनमें नदी, पर्वत, नगर, ग्राम, यात्रा एवं त्यौहार आदि का विवेचन होता है।

(२) विवरणात्मक निबन्ध—इनके अन्तर्गत ऐतिहासिक घटनाओं, महापुरुषों के जीवन-चरित्रों एवं यात्राओं आदि के निबन्ध आते हैं।

(३) विचारात्मक निबन्ध—इनके अन्तर्गत ऐसे निबन्ध आते हैं जिनमें किसी अमूर्त विषय पर विचार प्रकट किया गया हो। क्रोध, धैर्य, दया, परोपकार एवं स्वदेश-प्रेम आदि इसी कोटि में आते हैं।

(४) आलोचनात्मक निबन्ध—इसके अन्तर्गत सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक लेख आते हैं।

निबन्ध-सामग्री एकत्र करने के तीन साधन हैं—(१) निरीक्षण—इससे हमारे ज्ञान-कोष की वृद्धि होती है। इसमें हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, कान, नाक,

जिह्वा, त्वचा) सहायक होती हैं। अतः लेखक को अपनी ज्ञानेन्द्रियाँ सदैव जागरूक रखनी चाहिए। (२) भ्रमण—भ्रमण और निरीक्षण कार्य दोनों साथ-साथ चलते हैं। जहाँ हम भ्रमण करने जाते हैं, वहाँ ज्ञानेन्द्रियों द्वारा नई चीजें ग्रहण करते हैं। (३) स्वाध्याय—इसके लिए हमें भाषा और भाव की दृष्टि से उच्चकोटि के साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। इससे हमारे ज्ञान की वृद्धि होती है।

निबन्ध की शैली के विषय में विद्यार्थियों को निम्न बातों का सदैव ध्यान रखना चाहिए :—(१) बोर्ड-परीक्षा में सामान्य विषयों पर ही संस्कृत में लगभग १५ वाक्य लिखवाये जाते हैं। (२) वाक्य सरल संस्कृत में लिखना चाहिए। (३) भावों को पहले हिन्दी में सोचने के उपरान्त ही उन्हें संस्कृत में संक्षिप्तरूप से लिखना चाहिए। (४) यथावसर श्लोकों का उद्धरण देना अच्छा है। (५) दृष्टान्तरूप में प्रसिद्ध कथानकों का केवल नामोल्लेख ही करना चाहिए। (६) सन्धियों का ज्ञान न होने पर उनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। (७) लेख में विरामादि चिह्नों का उचित प्रयोग करना चाहिए। (८) व्याकरण-सम्बन्धी भूलें परीक्षा की दृष्टि से अत्यन्त हानिकर हैं।

अब कुछ आवश्यक निबन्ध आगे दिये जा रहे हैं।

१. उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः। (उद्योगः)

अस्मिन् संसारे समस्तजनाः सुखमिच्छन्ति परन्तु विरला एव सुखं प्राप्नुवन्ति। आलस्यमेव जनस्य शत्रुरस्ति येन जनः अनिष्टं प्राप्नोति। नरस्य मित्रम् उद्यमः अस्ति येन नरः दुःखसागरं तरति। उक्तं च—

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः यं कृत्वा नावसीदति॥

पुरुषार्थेन जनाः सुखमधिगच्छन्ति। उद्यमेनैव निर्धना धनिनो भवन्ति। सर्व-मुद्योगेनैव सिध्यति। उद्योग-बलेनैव पाण्डवा नष्टमपि राज्यमुपलब्धवन्तः। कालि-दासः उद्योगमाश्रित्य कविकुलगुरुः बभूव। लोकमान्यतिलक—गोखले—महात्मा-गान्धिप्रभृतिभिः देशभक्तैः पुरुषार्थेनैव वैदेशिक-पारतन्त्र्यात् इयं मातृभूमिः विमुक्ता कृता। कार्याणि उद्यमेनैव सिध्यन्ति। लक्ष्मीः उद्योगिनं पुरुषमुपैति। अत एवोक्तम्—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या, यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः॥

भाग्यवादिनः कथयन्ति यत् सर्वत्र भाग्यं फलति परन्तु अनुद्यमेन ते दुःखमेव प्राप्नुवन्ति। ते न जानन्ति यत् यथा एकेन चक्रेण रथस्य गतिर्न भवेत्, तथैव उद्यमेन विना दैवं न सिध्यति। अस्माकमधीनं पौरुषम्, फलं तु दैवाधीनम्। अतएव फलाशां परित्यज्य कर्माणि कर्त्तव्यानि। भगवद्गीतायां श्रीकृष्णः एतद् एव उपादिशत्—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥
कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्॥

यथा सुप्तस्य सिंहस्य मुखे मृगाः न प्रविशन्ति, तथैव मनोरथैरेव कार्याणि न सिध्यन्ति। ईश्वरोऽपि उद्योगिनः साहाय्यं करोति। अतः सर्वैः उद्योगः करणीयः। उक्तं च—

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥
उद्यमः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।
षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र देवः सहायकृत्॥

२. हिमालयः

भारतवर्षस्योत्तरस्यां दिशि उच्चतमः पर्वतः हिमालयोऽस्ति। अस्य शिखरप्रदेशाः सदा हिमेनाच्छादिताः। अस्मात् कारणात् अयं 'हिमस्य आलयः हिमालयः' इति कथ्यते। अयं सर्वेषां पर्वतानामुच्चतमः, अतएव नगाधिराजः अपि कथ्यते। प्रजापतिः यज्ञांगयोनित्वमवेक्ष्य कल्पितयज्ञभागं तं शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत्। हिमालयस्य लांगूलविक्षेपविसर्पिशोभैः चन्द्रमरीचिगौरैः वालव्यजनैः चमर्यः गिरिराजशब्दमर्थयुक्तं कुर्वन्ति। अनन्तरत्नप्रभवस्य हिमालयस्य हिमं सौभाग्यविलोपि न जातम्। यतः एको दोषो गुणसन्निपाते निमज्जति यथा इन्दोः किरणेषु अङ्कः निमज्जति। अस्य हिमालयस्य आमेखलं सञ्चरतां घनानां छायामधः वृष्टिभिः उद्वेजिता ऋषयः आश्रयन्ते। तत्र स्थिताः वन्यकरिणः कपोलकण्डूः विनेतुं

सरलवृक्षेषु कपोलस्थलानि घर्षन्ति, तदा वृक्षेभ्यः क्षरितेन क्षीरेण संजातः गन्धः हिमाद्रेः सानूनि सुरभीकरोति। हिमालयस्य गह्वराः दिवाभीतमिवान्धकारम् दिवाकराद्रक्षति। यस्मिन्नदृष्ट्वापि हतद्विपानाम् केसरिणां तुषारस्रुतिधौतरक्तं पदं नखरन्ध्रमुक्तैः मुक्ताफलैः किराताः मार्गं विदन्ति।

अयं पर्वतः भारतवर्षस्य मुकुटः अस्ति। अयं भारतवर्षस्य प्रहरी अप्युच्यते यतः अस्य मेघमण्डलादप्युन्नतानि शृङ्गाणि दुर्लङ्घ्यानि सन्ति। सर्वेषां तुङ्गतमम् एवरेष्टाख्यमस्य शृङ्गम्। हिमालयः भारतवर्षस्य परमोपकारी अस्ति। अयं गङ्गायाः, सिन्धोः, ब्रह्मपुत्रस्य, अन्यासाञ्च बहूनां नदीनां प्रभवस्थानम्। संसार-विमुखानां अस्य गुहाः आश्रयस्थानानि। हिमालये बहूनि रत्नानि विद्यन्ते। तस्मिन् नानाविधाः ओषधयोऽपि सम्भवन्ति। अयमेव नगः भारतवर्षस्य उत्तर-प्रदेशेषु वर्षायाः हेतुरस्ति। अयमेव गिरिः शत्रुभ्यः अस्माकं देशं रक्षति यतः अस्यातिक्रमणमतिदुष्करम्। नैनीताल–मंसूरी–अल्मोड़ा–शिमलादीनि नगराणि अस्योपत्यकायाम् विराजन्ते। ग्रीष्मर्तौ धनिकाः स्वास्थ्यलाभाय तत्र गच्छन्ति, आनन्दातिरेकेण इतस्ततः परिभ्रमन्ति च। महाकवि, कालिदासेन कुमार-सम्भवस्य आद्ये सर्गे लिखितम्—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

३. जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

(मातृभक्तिः देशभक्तिश्च)

माता, मातृभूमिश्च द्वे एवैते सर्वोत्तमे स्तः। जननीमृते न काऽपि निः-स्वार्थ-स्नेहमयी, स्वदेशादन्यत् न किमपि स्थानं सुखकरम्। मानवः कदाचिदपि मातुरनृणतां गन्तुं न समर्थः। पुत्रस्य कृते माता निजं कष्टं नैव चिन्तयति। सा सदा तस्य सुखचिन्तामेव करोति। अतएव पुत्रस्यापि मातुरुपरि नैसर्गिकमसाधारणं च प्रेम वर्तते। माता बालकस्य कृते सर्वस्वमपि त्यक्तुं शक्नोति। अतएव जनैः मातृपूजा सर्वदा करणीया।

अस्माकं जननी यथा अस्मान् लालयति तथैव इयम् अस्माकं जन्मभूमिरपि अस्मान् पालयति। अस्या एव जलेन, वायुना मृत्तिकया च वयं निरन्तरं परि-पुष्टिं गच्छामः। अस्या एवाङ्के वयं स्वबालमित्रैः सह स्वच्छन्दं क्रीडामः। अतएव स्वदेशं प्रति अस्माकं हृदये सम्मानः आदरश्च स्वाभाविक एव। यत्र कुत्रापि

गतो मनुष्यो जन्मभूमेः सदा स्मरत्येव। स्वदेशादन्यत्र न किमपि स्थानं सुखकरम्। उक्तं च—

अस्ति यद्यपि सर्वत्र नीरं नीरजराजितम्।
रमते न मरालस्य मानसं मानसं विना ॥

अस्माकं जन्मभूमिः भारतवर्षमस्ति। आसीत् पुरा भरतो नाम चक्रवर्ती राजा। तेन शासितो देशो 'भारतवर्ष' इत्यभिधानं प्राप्तः। प्रधानः पर्वतः हिमालयः अस्य देशस्य मुकुटः अस्ति। रत्नाकरः अस्य चरणौ प्रक्षालयति। भारतवर्षेऽस्मिन् पुराणमहाभारतादिरचयिता वेदव्यासः, रामायणप्रणेता महर्षिवाल्मीकिः, भक्तप्रवराः प्रह्लाद, ध्रुवादयः, अशोकादयः चक्रवर्तिनृपतयः, वराहमिहिरादयः ज्योतिर्विदः, धन्वन्तरि-सुश्रुतजीवकादयः आयुर्वेदज्ञाः, कणादादयः नैयायिकाः, पतञ्जलि-पाणिनिप्रभृतयः वैयाकरणाः, श्रीशङ्कराचार्य-रामानुजादयः वेदान्तशास्त्रकुशलाः, बुद्धदेव-महावीरादयः धर्मप्रवर्तकाः, माघ-भवभूति-कालिदासादयः कवयः, चाणक्यादयः राजनीतिज्ञाः, लीलावती-गार्गीप्रमुखानि स्त्रीरत्नानि इमं देशमलञ्चक्रुः।

प्रकृतिदेव्या अनुगृहीतोऽस्माकं देशः। अत्र गङ्गा–यमुना–नर्मदा–कावेरी-प्रभृतयः महानद्यः सन्ति। द्राक्षा–दाडिम–जम्बू–आम्रादिप्रचुरैः फलैः इयं सुफला अस्ति। वयं भारतीयाः देवेभ्योऽपि श्रेष्ठाः यतः देवा अपि अस्माकं जन्मभूमौ जन्मग्रहणाय स्पृहयन्ति। उक्तं च विष्णुपुराणे—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥

अस्माकं पराधीनतायाः मुख्यकारणम् एकतायाः अभावः आसीत्। अतः अस्माभिः यथाशक्ति कलहः परिहर्तव्यः। जन्मभूमेः गौरववर्धनाय सर्वैः चेष्टितव्यम्। एतादृशदेशस्य गौरववृद्धये प्राणा अपि परित्याज्याः। वयं भारतमातरम् नमामः।

सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्
सस्य-श्यामलाम् मातरम्।
वन्दे मातरम्।

४. वसन्तः

एकस्मिन् वर्षे षड् ऋतवः सन्ति। सर्वेषु समयेषु बसन्तर्तुः सर्वोत्तमः अस्ति। अतएव एष ऋतुराजः कथ्यते। बसन्तः कामदेवस्य सखा अस्ति। कृष्णः ऋतूनां कुसुमाकरः (बसन्तः) एव अस्ति। बसन्ते मृगदृशां मानतन्तुच्छिदः, परभृत-वयसां कण्ठे पञ्चमं रागं लोलयन्तः स्मरविजयमहासाक्षिणः समीराः स्वैरं वान्ति।

लताकुञ्जं गुञ्जन् मदवदलिपुञ्जं चपलयन्,
मरुन्मदं मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्।
रजोवृन्दं विन्दन् किरति मकरन्दं दिशि दिशि ॥ इत्यादि।

महाकविमाघेन लिखितम्—

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ॥

वसन्ते सौन्दर्यस्याभिनवं साम्राज्यं समुल्लसति। बसन्ते खगकुलम् दिशि दिशि धावति, कूजति नृत्यति च। चतुरो मधुकरनिकर इतस्ततः अविरामम् गुञ्जति। सहकारपादवाः मञ्जरीभिः शोभन्ते। पलाशे रक्तपुष्पाणि विकसन्ति। तरुषु कोमलानि किसलयानि विकसितानि पुष्पाणि च दृष्ट्वा मनः प्रसीदति। आम्रवृक्षेषु सञ्जाताः मञ्जरीः दृष्ट्वा पिका हर्षातिरेकेण कूजन्ति गायन्ति च। भ्रमराः पुष्पाणि विलोक्य इतस्ततो भ्रमन्ति। कृषकाः नवसस्यानि दृष्ट्वा प्रसन्नाः भवन्ति। आर्याणाम् मुख्योत्सवः बसन्तोऽस्यि। अयमुत्सवः माघमासस्थ शुक्ल-पक्षस्य पञ्चमीतः प्रारभ्यते। अस्मिन् दिने जनाः शारदां पूजयन्ति। बहवः जनाः पीतवस्त्राणि धारयन्ति। अस्मिन् ऋतौ होलिकोत्सवः सम्पद्यते। अनन्तरं नवरात्रे समागते जनाः भगवतीम् अम्बिकां पूजयन्ति। बसन्ते भ्रमणेन स्वास्थ्य-लाभो भवति। उक्तं च आयुर्वेदशास्त्रे—

बसन्ते भ्रमणं पथ्यम्।

अयं बसन्तकालः सर्वश्रेष्ठः, अतएव अस्माभिः वृथा न यापनीयः।

५. सन्मित्रम्

कराविव शरीरस्य नेत्रयोरिव पक्ष्मणी।
अविचार्य प्रियं कुर्यात्तन्मित्रं मित्रमुच्यते ॥

उक्तश्लोके संक्षेपेण सन्मित्रस्य लक्षणानि निरूपितानि सन्ति। सुखे, दुःखे,

सम्पत्तौ विपत्तौ च यः कस्यामप्यवस्थायां स्वमित्रं न त्यजति, स एव सन्मित्रमस्ति। उक्तं च—

उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥

इह जगति सन्मित्रप्राप्तिः सुदुर्लभा । यः सुहृदो दुःखेन स्वयं दुःखी भवति, सः सुहृत् । उक्तं च—

सुखिते सुखी सुहृदि यः दुःखिनि दुःखी स च बन्धुर्भवति ।
उदिते मुदितः सिन्धुः शशिन्यस्तमयति सुक्षीणः ॥

विपत्समये ये पलायन्ते, समृद्धिसमये च सन्निहिता भवन्तीदृशाः सुहृदो बाहुल्येन भवन्ति, सम्पत्तौ विपत्तौ च सहायभूताः सुहृदस्तु विरला एव । मित्रमापत्सु जानीयात् । सत्यमुक्तम्—

मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतसः
पात्रं यत्सुखदुःखयोः सह भवेन्मित्रेण तद्दुर्लभम् ।
ये चान्ये सुहृदः समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुला-
स्ते सर्वत्र मिलन्ति तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत् ॥

दुग्धसम्भृतं विषपूर्णं घटमिव दुग्धवन्मधुरभाषिणं परोक्षे च कार्यहन्तारं मित्रं वर्जयेत् । मित्रस्य लक्षणानि परीक्ष्यैव मित्राणि कर्त्तव्यानि । येन केनचित् मैत्री नोचिता । तथाहि—

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥

अपि च—

औरसं कृतसम्बन्धं तथा वंशक्रमागतम् ।
रक्षितं व्यसनेभ्यश्च मित्रं ज्ञेयं चतुर्विधम् ॥

सन्मित्रम् पापान्निवारयति, हिताय योजयते, गुह्यानि गूहति, गुणान्प्रकटीकरोति, काले ददाति, आपद्गतं च जहाति न। संसारस्य अमूल्यं रत्नं मित्रमस्ति। मित्रप्रशंसायाम् सत्यमेवोक्तम्—

शोकारातिभयत्राणं प्रीतिविश्रम्भभाजनम् ।
केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ॥

६. विद्या धनं सर्वधनप्रधानम् । (विद्या)

इह जगति विद्यैव सर्वप्रधानं धनमस्ति । विद्या माता इव रक्षति, पिता इव हिते नियुङ्क्ते, कान्ता इव खेदमपनीय अभिरमयति । विद्या कल्पलता इव सर्वकार्यसाधिका अस्ति । विद्या नरस्य समुन्नतिपथं विशदीकरोति, बुद्धिं प्रखरीकरोति, कर्त्तव्यपालनपरां धियमादधाति । अतएव इह लोके विद्या सर्वश्रेष्ठं धनमस्ति । सुखस्य परमं कारणं विद्यैव । विद्यया यावज्जीवं तृप्तिर्भवति । विद्या विनयं ददाति, विनयात् पात्रताम् याति, पात्रत्वाद् धनमाप्नोति, धनाद् धर्मं, ततः च सुखं प्राप्यते । विद्या व्ययतो वृद्धिमायाति, सञ्चयात् क्षयमायाति । उक्तं च

विद्याधनं श्रेष्ठधनं तन्मूलमितरद्धनम् ।
दानेन वर्धते नित्यं न भाराय च नीयते ॥

चन्द्रः नक्षत्रभूषणं, पतिः नारीणां भूषणं, राजा पृथिव्या भूषणम् परन्तु विद्या सर्वस्य भूषणमस्ति । विद्यया जनः अमृतमश्नुते । विदुषः पुरुषस्य सर्वत्रैव सम्मानः भवति । राजा तु स्वदेशे पूज्यते परन्तु विद्वान् सर्वत्र । रूपयौवनसम्पन्नोऽपि विद्याविहीनः नरः न शोभते । सर्वे नराः स्वपुत्रान् पुत्रीश्च पाठयेयुः । केनचित् उक्तम्—

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥

अपि च—

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥

विद्याधनं चौर्यहार्यम् भ्रातृभाज्यम् वा नास्ति । उक्तं च
अहार्यत्वादनर्घ्यत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा । अतएव विद्यैव सर्वद्रव्येषु अनुत्तमम् द्रव्यमाहुः । सत्यमुक्तम्—

धनं धनं नैव मतं बुधानां विद्यैव वित्तं मतमस्ति तेषाम् ।
चौरो न यां चोरयितुं समर्थो भूपोऽपहर्तुं न च यां समर्थः ॥

विद्या नरस्य अधिकं रूपम्, गुप्तं धनं, गुरूणां गुरुः, विदेशगमने बन्धुजनोऽस्ति । राजसु विद्या एव पूज्यते, धनं न । अतोऽस्माभिः स्वाध्यायपरैर्भवितव्यम् ।

७. सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति । (धनम्)

इह जगति सर्वे जनाः सुखमिच्छन्ति । सुखकारणं धनमेवास्ति । अतः संसारे धनमेव सर्वश्रेष्ठं वस्तु अस्ति । धनेन विना कार्याणि न सिध्यन्ति, जीविकानिर्वाहश्च कथमपि न भवति । धनम् विना किमपि कार्यं न सरति । धनं विना विद्योपार्जनं कर्तुं न शक्यते, न्यायालये न्यायोऽपि न भवितुं शक्नोति । धनं विना नरः उत्सवेषु सावज्ञमालोक्यते । धनं विना सर्वमपि वस्तु नीरसं प्रतिभाति । उक्तं च—

बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते, पिपासितैः काव्यरसो न पीयते ।
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं, हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः गुणाः ॥

धनैः अकुलीनाः कुलीना भवन्ति । संसारे समस्तगुणाः धनमेवाश्रयन्ति । उक्तं च—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः सश्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः, सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥

अपि च—

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमांल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥

यस्य पार्श्वे धनं नास्ति तस्य कश्चिदपि अभिलाषो न पूर्तिमेति । धनैः मानवाः शोकसागरं तरन्ति । निर्धनता समस्तापदाम् गृहमस्ति । अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम् । नष्टधनाश्रयस्य न कोऽपि मित्रम् भवति । धनहीनस्य सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति । तस्य स्वकीयोऽपि परकीयः भवति । धनेन विना शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते, सुस्निग्धाश्च विमुखीभवन्ति । धनेन विना बान्धवः वाक्ये न विश्वसिति । धनहीनस्य जनस्य जीवनं व्यर्थमिव प्रतिभाति । धनं विना वनं गन्तुं बुद्धिर्भवति, कलत्रादपि परिभवः भवति ।

प्राचीनैः मुनिभिरपि धनस्यावश्यकता उपयोगिता च स्वीकृता । चतुर्वर्गफलप्राप्तिरपि धनेनैव संभवति । धनेनैव धर्मोऽपि प्रसरति । अतः सर्वैः धनोपार्जनं कर्त्तव्यम् ।

८. परोपकाराय सतां विभूतयः । (परोपकारः)

परेषाम् उपकारः परोपकारः कथ्यते । परोपकारः एकः दिव्यः गुणोऽस्ति । अस्मिन् संसारे नानाविधा मानवाः दृश्यन्ते । यस्य यादृशः स्वभावः सः तादृशम्

आचारमाचरति। केचित् परोपकारिणः भवन्ति, केचित् स्वार्थिनश्च। परोपकारिणः परोपकारेणैव प्रसन्नाः भवन्ति। परोपकारेणैव कायः विभाति। सत्यमुक्तम्—

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन दानेन पाणिर्न तु कंकणेन।
विभाति कायः करुणापराणां परोपकारैर्न तु चन्दनेन॥

न केवलं मानवेष्वेव परोपकारभावना वर्तते, देवेषु पशुपक्षिवृक्षादिष्वपि च विद्यते। प्रकृतिः परोपकारस्यैव शिक्षां ददाति। नद्यः स्वयमेव जलं न पिबन्ति, वृक्षाश्च स्वयमेव फलानि न खादन्ति। किन्तु तासां जलं, तेषां फलानि च परोपकाराय। उक्तं च—

स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः पिबन्ति नाम्भः स्वयमेव नद्यः।
धाराधरो वर्षति नात्महेतोः परोपकाराय सतां विभूतयः॥

परोपकाराय शरीरं प्रयच्छतः एतच्छरीरं श्लाघ्यम्। स्वोदरम्भराः केवलं पशवः जीवन्ति। यः परार्थे जीवति तस्यैव जीवितं श्लाघ्यम्। तथाहि—

पशवोऽपि हि जीवन्ति केवलं स्वोदरम्भराः।
तस्यैव जीवितं श्लाघ्यं यः परार्थे स जीवति॥

परोपकारे न केवलं परेषामेव लाभः, आनन्दमपि संजायते। परोपकारिणः अन्तःकरणे संतोषः संजायते। परोपकारेण जनः सर्वाः सम्पदः प्राप्नोति। सत्यमुक्तम्—

परोपकारव्यापारः पुरुषो यः प्रजायते।
सम्पदं स समाप्नोति परत्राऽपि परं पदम्॥

शास्त्रेषु परोपकारस्य बहुमहत्त्वं वर्णितमस्ति। "अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्। परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥" दिवंगतोऽपि परोपकारी यशःशरीरेण सदैव जीवति। परोपकारभावनयैव नरपतिः शिविः परार्थं स्वमांसमपि छित्वा ददौ। रन्तिदेवः क्षुधार्त्तोऽपि स्वभोजनं चाण्डालाय समर्पितवान्। अतः सर्वे जनाः परोपकारं कुर्युः। उक्तं च—

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति॥
परोपकारः कर्त्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि।
परोपकारजं पुण्यं न स्यात् क्रतुशतैरपि॥

९. सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् । (सत्सङ्गतिः)

सतां सङ्गतिः सत्सङ्गतिः कथ्यते । इह जगति नानाविधा मानवाः दृश्यन्ते । केचित् सज्जनाः भवन्ति, केचित् दुर्जनाश्च । सज्जनानां सङ्गतिः सुखकरी भवति । दुर्जनानां संगतिः दुःखकरी भवति । दुर्जनानां संसर्गेण नरोऽसद्वृत्तो भवति, तस्य बुद्धिर्दूषिता भवति, सर्वत्राप्रतिष्ठाभाजनं च भवति । अतः दुर्जनसंसर्गः हेयः ।

जनस्योपरि संगतेः महान् प्रभावो भवति । जनाः यादृशानां पुरुषाणां संगतौ वसन्ति, ते तादृशाः एव भवन्ति । संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति । बाल्यकाले विशेषतो बालकस्योपरि सङ्गत्याः प्रभावः प्रबलतरो भवति । बालको यादृशैर्बालकैः सह संगतिं करिष्यति स तादृश एव भविष्यति । सत्सङ्गत्या मानवः उन्नतिपदं प्राप्नोति । सज्जनैः सह मित्रत्वं कुर्वाणः कदापि नावसीदति । अत एवोच्यते—

सद्भिरेव सहासीत सद्भिः कुर्वीत संगतिम् ।
सद्भिर्विवादं मैत्रीं च नासिद्भिः किंचिदाचरेत् ॥
पण्डितैः सह सांगत्यं पण्डितैः सह संकथाः ।
पण्डितैः सह मित्रत्वं कुर्वाणो नावसीदति ॥

सत्सङ्गतिः धियो जाड्यं हरति, वाचि सत्यं सिञ्चति, पापम् दूरीकरोति, कीर्तिं च दिक्षु तनोति । अतएव सत्संगतिरेव जनानां सर्वकार्यसाधिका अस्ति । पुनश्च सतां सङ्गः कुमतिं दूरीकरोति, चेतः विमलीकरोति, चिरन्तनं पापं च चुलुकीकरोति । सज्जनानां सङ्गतिः किमु न मङ्गलमातनोति । सत्यमुक्तम्—

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥

अपि च—

दूरीकरोति कुमतिं विमलीकरोति, चेतश्चिरन्तनमघं चुलुकीकरोति ।
भूतेषु किं च करुणां बहुलीकरोति, सङ्गः सतां किमु न मङ्गलमातनोति ॥

सत्संगतिप्रभावेण दुष्टाः साधवः भवन्ति, मूर्खश्च प्रवीणतां याति । ऋषीणां संगत्या व्याधः बाल्मीकिः महान् ऋषिः अभवत् । काञ्चनसंसर्गात् काचोऽपि मारकतीं द्युतिं धत्ते । पुष्पसंगत्या कीटोऽपि सतां शिरः आरोहति । अतएवोच्यते—

कीटोऽपि सुमनःसङ्गादारोहति सतां शिरः ।
अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः ॥

अयमेव सत्सङ्गतेर्महिमा ।

१० दीपमालिका

रक्षाबन्धनम् , विजयादशमी, दीपमालिका होलिकोत्सवश्च भारतवर्षस्य चत्वार एव मुख्योत्सवाः सन्ति । परन्तु दीपावल्यां नराणां हृदयेषु यादृशः उत्साहः जायते, तादृशः न अन्येषु उत्सवेषु । अयमार्याणां पवित्रतमः उत्सवः अस्ति । अयमुत्सवः कार्तिकमासस्य कृष्णत्रयोदशीतः शुक्लपक्षस्य द्वितीयां यावत् प्रचलति । इयं त्रयोदशी धन्वन्तरित्रयोदशी-नाम्ना प्रख्याता अस्ति । त्रयोदश्यां जनाः पात्राणि क्रीणन्ति । द्वितीयदिने नरकचतुर्दशी जायते । नरकचतुर्दश्यां हनुमतः जन्ममहोत्सवः यमराजस्य च पूजा भवति । अस्योत्सवस्य मुख्यो दिवसोऽमावस्या वर्तते । इयं जनश्रुतिः यत् अद्यैव श्रीरामचन्द्रः रावणं हत्वा अयोध्यां प्रत्यागतः । चतुर्दशसमाः अनन्तरं सीतया लक्ष्मणेन च सहितं रामचन्द्रं प्राप्य तत्रत्याः वासिनः दीपानां मालया तेषाम् स्वागतमकुर्वन् । ततः प्रभृति एव अस्योत्सवस्य प्रचारोऽभवत् । अस्मिन् दिवसे जनाः स्वस्वगृहान् गोमयेन लिम्पन्ति, सुधया च धवलं कुर्वन्ति । सायङ्काले च ते स्वस्वगृहेषु पंक्तिबद्धान् दीपकान् प्रज्वालयन्ति । अमायां रात्रौ इन्द्रवरुणकुवेरादिभिः सह गणपतेः महालक्ष्म्याः च पूजनं गेहे गेहे भवति, लक्ष्म्याः कामनया च बहवः जनाः रात्रौ जागरणम् कुर्वन्ति । अस्मिन् एव रात्रौ जनाः श्रीसूक्तस्य पाठमपि कुर्वन्ति ।

अमायां रात्रौ कृषकाः क्षेत्रेषु दीपान् स्थापयन्ति । तुलसीवृक्षोऽपि दीपमालाभिः शोभते, मन्दिराणि च दीपैः प्रकाश्यन्ते । नरा नार्यश्च आत्मानं विभूषयन्ति । प्रसन्नाः बालकाः विविधानि क्रीडनकानि प्राप्य, मिष्टान्नानि च भुक्त्वा इतस्ततः हर्षातिरेकेण उच्छलन्ति । एष महालक्ष्म्याः एव महिमा यत् अस्मिन् पर्वणि जने जने महानुल्लासो विलसति ।

केचन मूर्खाः अस्मिन् दिवसे अक्षैर्दीव्यन्ति, द्यूतेन अस्य उत्सवस्य पवित्रताम् दूषयन्ति । बहवः उन्मत्ताः द्यूतेन स्वकीयं सर्वं धनं विलोपयन्ति, मद्यमपि सेवन्ते । अतिनिन्द्यं कर्म तत् । द्यूतक्रीडया देशस्य महान् अपकारो भवति । सुदुर्निवार्यो ह्येष दोषो जनानाम् । अन्यथा दीपमालिका अस्य देशस्य महत्तमः पर्वदिनमस्ति ।

११. सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम् । (सन्तोषः)

इह जगति गजाः, अश्वाश्च बहूनि धनानि सन्ति । परन्तु सन्तोषं विना तेऽपि सुखं न ददाति । सन्तोषः सर्वश्रेष्ठं धनमस्ति । सुखशान्तिलाभाय सन्तोषस्य पर-

मावश्यकता अस्ति। संतोषामृतसागरे चिरं मग्नः जनः सुखमनुभवति। संतोषेण विना जनः पराभवपदं प्राप्नोति। उक्तं च—

गन्धाढ्यां नवमल्लिकां मधुकरस्त्यक्त्वा गतो यूथिकां
तां दृष्ट्वांशुगतः स चन्दनवनं पश्चात्सरोजं गतः।
बद्धस्तत्र निशाकरेण सहसा रोदित्यसौ मन्दधीः
संतोषेण विना पराभवपदं प्राप्नोति सर्वो जनः॥

असन्तुष्टो जनोऽर्थलाभेऽपि अधिकं धनं प्राप्तुमिच्छति। शती सहस्रं वाञ्छति, सहस्री च लक्षमिच्छति किन्तु लब्ध्वाऽपि मनोवाञ्छितं धनम् इतस्ततः परिभ्रमति। न कदापि सुखमनुभवति। एवं तस्य जीवनं दुःखमयं भवति। सन्तोषहीनः जनः चरित्रहीनः भवति। वृत्ततः क्षीणः नरः शान्तिं नाधिगच्छति। अतः सर्वे सन्तोषिणः भवेयुः। उक्तं च—

अकृत्वा परसंतापमगत्वा खलनम्रताम्।
अनुत्सृज्य सतां वर्त्म यत्स्वल्पं हि तद्बहु॥

यस्य पार्श्वे तु सन्तोषः विराजते सः सामान्योऽपि जनः राजानं तृणवत् मन्यते। करप्राप्तेऽप्यर्थे तस्य आदरः न भवति। तथाहि—

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः।
स हि भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान्को दरिद्रः॥

अपि च—

न योजनशतं दूरं बाध्यमानस्य तृष्णया।
संतुष्टस्य करप्राप्तेऽप्यर्थे भवति नादरः॥

केचन सन्तोषस्य इममर्थं गृह्णन्ति यत् मानवः सर्वं कर्म त्यजेत्। सन्तोषस्य केवलमयमेवार्थः यत् यत् किञ्चिद्वयस्य परिश्रमेण प्राप्नुमाम तत्रैव सन्तोषं कुर्याम। अनुचितैः प्रकारैः धनस्योपार्जने प्रयत्नो न विधेयः। धनमस्माकम् कृते अस्ति, न वयं धनार्थे स्मः। असन्तोषः दुःखमूलम्, सन्तोषश्च सुखमूलमस्ति। सर्पाः पवनं पिबन्ति, वनगजाः शुष्कैस्तृणैः बलिनो भवन्ति। मुनिवराः कन्दैः फलैः कालं क्षपयन्ति। अस्माकम् सुखशान्तिप्राप्त्यर्थं सन्तोष उपादेयः। यतः सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम्। अतः सर्वे सन्तोषिणः भवेयुः।

१२. धृतिः (धैर्यम्)

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

मनुना निर्दिष्टेषु दशसु धर्मेषु धृतिः आद्यः धर्मः, यस्य अभिप्रायः—धैर्यम्, धारणा, सन्तोषः, सहजशीलतेति ।

नीतिनिपुणा निन्दन्तु स्तुवन्तु वा, लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा, अद्यैव मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्याय्यात्पथः धीराः न प्रविचलन्ति । कार्याणां साफल्यार्थं धैर्यमावश्यकं भवति । धीराः महत्तरसंकटान् सरलतया तीर्त्वा सुखिनः भवन्ति । समुपस्थितेषु सङ्कटेषु धैर्यं न त्याज्यम् । उक्तं च—

त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले धैर्यात् कदाचित् स्थितिमाप्नुयात् सः ।
जाते समुद्रेऽपि हि पोतभङ्गे सांयात्रिको वाञ्छति तर्तुमेव ॥

दुःखागमः कल्याणायैव जायते इमं सिद्धान्तमाश्रित्य धैर्य धुरन्धराः धीराः निरन्तरं समुन्नत्यै प्रयतन्ते ।

धैर्यमेव सत्यं रक्षति । धैर्यं विना न मनोनिग्रहः, मनोनिग्रहं विना परमात्म-प्राप्तिः सुदुर्लभा । अतः लोकेऽस्मिन् ये साफल्यमिच्छन्ति तैः सर्वैः धैर्यं धार्यम् । प्रत्येकेप्सितकार्यस्य संपादनाय धैर्यस्य महत्युपयोगिता । कदाचित् कृषकस्य फलवती कृषिः विनष्टा भवति, कदाचित् वृष्टेः अभावे कृषिः शुष्यति । किन्तु एवं दैवकृतेन व्याघातेन किं सः कृषिकर्म त्यजति ? सः सूर्यतापं, वृष्टिं चाविगणय्य चिराय कृतपरिश्रमः सफलमनोरथो भवितुमिच्छति । सः धैर्यं न परित्यजति । धैर्यमाश्रित्यैव एको विद्यार्थी अध्ययनतत्परो भवति । धैर्येणैव मानवः शोकसागरं तरति । अतएव जनैः धैर्यधारणे यत्नो विधेयः ।

१३. सत्यमेव जयते नानृतम् । (सत्यम्)

यद् वस्तु यथा वर्तते तस्य तथैव कथनं लेखनं प्रकाशनं वा सत्यमित्युच्यते। अस्मिन् भारतवर्षे विविधधर्मसम्प्रदायाः सन्ति । तेषां विभिन्नाः मताः सन्ति, परं सत्ये सर्वेषामैकमत्यमस्ति । सर्वाणि शास्त्राणि एकस्वरेण सत्यस्य महिमानं गायन्ति । 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इति श्रुतौ ब्रह्मणः स्वरूपं सत्यमिति प्रति-पादितम् । तैत्तिरीयोपनिषत् कथयति यत् सत्यान्न प्रमदितव्यम् ।

त्रिषु लोकेषु नहि सत्यात् परः धर्मः । मिथ्या पापमस्ति अतः सत्यं ब्रूयात् । सत्यं सर्वश्रेष्ठम् तपः अस्ति । अत एवोक्तम्—

नहि सत्यात् परो धर्मस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
पापं मिथ्यासमं नास्ति तस्मात् सत्यं सदा वद ॥ अपि च—
अश्वमेधसहस्रञ्च सत्यञ्च तुलया धृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥

यः सत्यं वदति सः निर्भीको भवति । सत्यव्रती पापकर्मसु न प्रवर्तते । सत्यवादिनः पुरुषाः समाजे आदरं प्राप्नुवन्ति । मिथ्यावादिनः पुरुषाः कुत्रापि न पूज्यन्ते । सत्यवादिनः कीर्तिः दिक्षु प्रसरति । समाजस्य देशस्य लोकस्य च मिथ्याभाषणेन नाशः भवति । सत्यभाषणेन विद्या गौरवं च वर्धते । सत्यमेव लोकस्याधारोऽस्ति । अत एवोच्यते—

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः ।
सत्येन वायवो वान्ति सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ अपि च—
गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः ।
अलुब्धैर्दान-शूरैश्च सप्तभिर्धार्यते मही ॥

सत्यवचनात् नरस्य कल्याणं भवति । यथा ऊषरे बीजवपनं व्यर्थमस्ति तथैव सत्यहीना पूजापि वृथा अस्ति । तथाहि—

सत्यहीना वृथा पूजा सत्यहीनो जपो वृथा ।
सत्यहीनन्तपो व्यर्थमूषरे वपनं यथा ॥

सत्यस्य महिमानं देवाः अपि गायन्ति । सत्यवादी हरिश्चन्द्रः सत्यार्थं स्वकीयां धर्मपत्नीमपि विक्रीय सत्यमपालयत् । जाबालोऽपि सत्यवचनात् ब्रह्मज्ञानी अभवत् । सत्यस्य पालनार्थमेव महाराजो दशरथः प्रियं पुत्रं रामं महावनं प्रेषयामास । युधिष्ठिरः सत्यप्रभावेणैव विजयं लेभे । सत्यस्य प्रतिष्ठयैव लोककल्याणस्य सम्भवः । अतः सर्वैरपि सदा सत्यमेव भाषणीयम् ।

१४. संस्कृतभाषायाः महत्त्वम्

व्याकरणसम्बन्धिदोषादिरहिता भाषा संस्कृतभाषेति कथ्यते । सर्वविधदोषशून्यत्वादियं संस्कृतभाषा 'देवभाषा' इति जनैः कथ्यते । उक्तं च—

संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः ।

पुरा सर्वे जनाः संस्कृतभाषाम् एव वदन्ति स्म। अतः समग्रमपि प्राचीन-साहित्यं संस्कृतभाषायामेव उपलभ्यते। सर्वप्राचीनग्रन्थाः चत्वारो वेदाः देवभाषा-यामेव निबद्धाः सन्ति।

तथा हि—

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥

वेदेषु मनुष्याणां कर्त्तव्याकर्त्तव्ययोः निर्धारणमस्ति। ततो वेदानां व्याख्यान-भूता ब्राह्मणग्रन्थाः सन्ति। ततश्च उपनिषदः सन्ति। ततोऽस्माकं गौरवभूताः षड्दर्शनग्रन्थाः सन्ति।

संस्कृतभाषायां लिखितानाम् काव्यानाम् नाटकानाम् च अध्ययनेन हृदयम् आनन्दसिन्धौ निमज्जति। संस्कृतभाषायाः काव्यानां माधुर्यं संसारप्रसिद्धं वर्तते। इयं संस्कृतभाषा सर्वोत्कृष्ट-साहित्य-संयुक्ता वर्तते। पुरा आदिकविः वाल्मीकिः संस्कृतभाषायामेव रामस्य चरित्रं विस्तरेणालिखत्। व्यासोऽपि विश्वविख्यातं महा-भारतग्रन्थं संस्कृते एव अलिखत्। अष्टादश-पुराणानां रचनां व्यासः संस्कृत-भाषायामेव अकरोत्। कालिदास-भारवि-माघ-श्रीहर्षादयः अनेके महाकवयः संस्कृते सुन्दराणि काव्यानि अलिखन्। धन्येयं सुरभारती। मैक्समूलर—मैकडानल-कीथादयः विदेशीयाः विद्वांसः संस्कृतभाषया अत्यन्तं प्रभाविताः अभवन्। स्वधर्मस्य ज्ञानाय संस्कृतज्ञानमावश्यकमस्ति। संस्कृतभाषैव भारतवर्षस्य प्राणभूता भाषा अस्ति। संस्कृतभाषा एव भारतवर्षमेकसूत्रे बध्नाति। अतः सर्वे भारतीयाः संस्कृतभाषां पठेयुः।

१५. विश्वसंघः

युद्धप्रियः खलु मानवः। किन्तु किं युद्धं मानवस्य हितकरम्? प्रायेण दुःखकर-एव युद्धस्य परिणामः। युद्धेन बहूनां प्राणिनां नाशो भवति, अनाचारस्य च वृद्धिर्भवति। पत्या विरहिता कापि स्त्री रोदिति, सुतेन विरहितः कोऽपि वृद्धः कष्टे-न जीवनं यापयति। राजकोषोऽपि अर्थेन शून्यो भवति। भयङ्करः मानवस्य स्वार्थः। तथापि गर्वेण युक्तानि बुद्ध्या हीनानि राष्ट्राणि युद्धं कारयन्ति। किन्तु किं हिंसया हिंसानिवृत्तिः भवति? नहि नहि—

नहि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन।

अवैरेण च शाम्यन्ति, एष धर्मः सनातनः ॥

संघर्षेण संघर्षस्य वृद्धिरेव भवति, न तु शान्तिः। अतो युद्धं त्याज्यम्। विश्वसंघस्थापनेन एव स्वार्थपरायणमाक्रमणं वारयितुं वयं शक्नुमः। प्रथममहायुद्धादनन्तरं १९१९ खीष्टाब्दे 'लीग आफ नेशन्स' इत्याख्या अन्ताराष्ट्रीयसंस्था स्थापिता। किन्तु स्वार्थबुद्धिपरिगृहीताः अस्याः सदस्याः तां संस्थामनाशयन्। पुनः द्वितीयमहायुद्धस्य पश्चात् 'यू० एन० ओ०' इत्यभिहिता विश्वसंस्था स्थापिता। यद्यस्याः सदस्याः स्वार्थबुद्धिं परित्यज्य मानवकल्याणाय चेष्टेरन् तर्हि सदा शान्तिर्भवेत्। अतएव समस्तैरपि विश्वसंघस्य रक्षा कर्त्तव्या विश्वसंघेन 'इण्डोनेशिया' इत्याख्यस्य देशस्य समस्यायाः सन्तोषजनकं समाधानं कृतम्। अधुना काश्मीरसमस्या विश्वसंघस्य विचाराधीना। न केवलं युद्धविरतिर्विश्वसंघस्य कार्यम्, अपि तु दलितवर्णानाम् अर्थनीतिक्रोन्नतिविषये अपि सोऽवहितः। समस्तवर्णानाम् भेदभावं दूरीकृत्य सांस्कृतिकैकतास्थापनमपि अस्त्युद्देश्यम्। अनेन विश्वसंघेन संसारस्याशिक्षितान् जनान् शिक्षयितुमपि प्रयासः क्रियते।

१६. ग्राम्यजीवनम्

ग्राम्यजीवनमतीव सरलं भवति। ग्रामीणानां सर्वं कार्यं कपटरहितं भवति। ग्रामे सदैव शान्तिः वसति। ग्रामेषु नगराणां कृत्रिमशोभा न भवति अपितु प्राकृतिकशोभा भवति। ग्रामं परितः सस्यैः श्यामलानि क्षेत्राणि भवन्ति। श्यामलानि क्षेत्राणि दृष्ट्वा चेतः प्रसीदति। ग्रामे स्वच्छः वायुः, निर्मलं कूपजलम्, सद्यः नवनीतं दुग्धं दधि च मिलति येन ग्रामवासिनः नीरोगाः पुष्टाश्च भवन्ति। ग्रामीणाः स्वयमेव समये समये मनोरञ्जनार्थकम् अभिनयादिकं कुर्वन्ति, आनन्दमनुभवन्ति। ग्रामाधिदेवताया गुणानुवर्णनाय, महापुरुषस्य चरित्रश्रवणाय वा ग्रामीणाः एकत्र सम्मिलन्ति।

ग्रामे कृषकः, कुम्भकारः, वर्धकिः, तन्तुवायः, नापितः रजकश्च वसति। ग्रामे प्रायशः समस्तकार्यमन्नेन भवति। अतएव क्षौरकर्ता नापितोऽपि कस्मैचिदपि कार्याय द्रव्यं न गृह्णाति किन्तु अन्नमेव। ग्रामेषु पुरुषाः सदैव उद्यमशीला भवन्ति। ग्रामीणाः स्वादिष्टं भोजनं सुन्दराणि वस्त्राणि वा नाभिलषन्ति। स्वभावेन ते सौम्याः भवन्ति। ते न जानन्ति विविधाः कला विद्याश्च। एवं साहित्यसंगीतकला-

विहीनाः अपि ते समादरणीयाः अस्माभिः यतः ग्रामीणाः बहुविधम् अन्नं शाकं च उत्पादयन्ति येन जनाः जीवन्ति ।

अधुना स्वतन्त्रे भारते ग्रामाणाम् उन्नतये अस्माकं शासकाः तत्पराः सन्ति । पञ्चवर्षीययोजनानुसारेण बहवः ग्रामाः विद्युदादिभिः नवीनसुखसामग्रीभिः युक्ताः अभवन् । क्षेत्राणां सेचनाय जलनालिकानां प्रसारः सर्वत्र यथा स्यात् तथा शासकानामुद्योगः प्रचलति । ग्रामकलहानां निर्णयाय सर्वत्र ग्रामे समितयः स्थापिताः भविष्यति काले भारतवर्षस्य ग्रामाः प्रशस्ताः भविष्यन्ति ।

१७. अहिंसा परमो धर्मः । (अहिंसा)

हिंसानां परित्यागोऽहिंसेति । अहिंसा त्रिविधा भवति । जनः यदि कस्यचित् मानवस्य अनिष्टं न चिन्तयति, सा मानसिकी अहिंसा । यदि कटुभाषणेन अनृतवचनेन वा कमपि दुःखितं न करोति, अपितु मधुरालापेन सुखं ददाति सा वाचिकी अहिंसा भवति । यदि जनः कस्यापि जीवस्य हननं न करोति, प्रहारादिना दुःखं न ददाति तर्हि सा कायिकी अहिंसा भवति ।

अहिंसा धर्मः परमप्राचीनोऽस्ति । वेदेषु अहिंसायाः महत्त्वं बहुवर्णितमस्ति । मनुना निर्दिष्टेषु दशलाक्षणिकधर्मेषु आद्यः धर्मः अहिंसा एव अस्ति ।

"अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

अहिंसाधर्मपालकाः कारुणिकाः दयावन्तश्च भवन्ति । मानवस्य आत्मा अहिंसयैव सुखमनुभवति, मनः सदैव प्रसन्नं तिष्ठति । अहिंसया रिपवोऽपि मित्राणि भवन्ति । अहिंसापालनेन उत्तमं कार्यं कर्तुम् शक्नुवन्ति । सर्वाणि कार्याणि अहिंसाव्रतेनैव सरलतया सिद्ध्यन्ति । अत एव मुनिभिः महर्षिभिश्च 'अहिंसा परमो धर्मः' इति स्वीकृतः । उक्तं च—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥ अपि च—
आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ॥

× × × ×

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति ॥

अस्माकं देशे अहिंसायाः अतीव महत्त्वपूर्णं स्थानमस्ति। बौद्धाः जैनाश्च कस्यचिदपि जीवस्य हिंसायै न आदिशन्ति। भगवान् बुद्धः महावीरश्च अहिंसायाः प्रचारं सर्वत्रैव चक्रतुः। भगवान् बोधिसत्त्वः, अशोकः, महात्मा गान्धि-महोदयश्च अहिंसाधर्मस्य पालनेनैव सर्वेषां मनुष्याणां पूजापात्रमभवन्। अधु-नापि ते यशःशरीरेण जीवन्ति। न केवलं धार्मिकक्षेत्रे अहिंसाधर्मस्य पालनं हितकरमपि तु राजनीतिकक्षेत्रेऽपि अहिंसाधर्मस्य पालनं हितकरम्। एष अहिंसाया एव महिमा अस्ति यद् अधुना भारतवर्षः पराधीनतापाशं छित्वा स्वतन्त्रोऽस्ति।

हिंसाकरणं महत्पापं वर्तते। हिंसया मानवः क्रूरः भवति। कस्यचिदपि हिंसनम् ईश्वरद्रोहोऽस्ति। हिंसया ईश्वरः मानवाय क्रुध्यति। अतएव सर्वैरपि अहिंसाधर्मः पालनीयः।

१८. आचारः परमो धर्मः। (सदाचारः)

सताम् आचारः सदाचार इति कथ्यते। सदाचारयुक्तः जनः स्वकीयानि इन्द्रियाणि वशीकृत्य सर्वैः सह शिष्टतापूर्वकमाचारमाचरति। सः सत्यं वदति, मातापितरमुत्थाय नित्यमेवाभिवादयति, गुरुजनानामादरं करोति, नित्यमग्निं परिचरति, परोपकारम् च करोति। मानवः तद्वत् आचरणेन सदाचारी, धार्मिकः विनीतश्च भवति।

सदाचारयुक्तः जनः सर्वत्र आदरं लभते। समस्तगुणयुक्तोऽपि सदाचार-रहितः जनः समाजे आदरं न लभते। सदाचारेण बुद्धिः वर्धते, कीर्तिः दिक्षु प्रसरति, दुर्गुणोऽपि दूरीभवति, कुविचाराणाम् प्रादुर्भावो न भवति, हृदये सद्भावः जागर्ति, आयुश्च वर्धते। सदाचारेणैव जना ब्रह्मचारिणो भवन्ति। सदा-चारः मानवमुच्चपदे स्थापयति। सदाचारयुक्तस्य जनस्य पापकर्मणि प्रवृत्तिर्न अतएव तस्य बुद्धिर्निर्दोषा भवति। निर्दोषबुद्धिश्च लोकस्य शुभचिन्तने प्रवृत्ता भवति। अतएव पूर्वैः महर्षिभिः 'आचारः परमो धर्मः' इत्यङ्गीकृतः। सदाचारः विश्वस्य प्रतिष्ठा, सदाचारे सर्वं प्रतिष्ठितम्। तस्मात् सदाचारं परमं वदन्ति। अतएव जनैः सदा स्ववृत्तस्य रक्षाः कार्या। सदाचारेण हीनः जनः पतितः पशु-तुल्यश्चास्ति। उक्तं च—

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च ।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥

सदाचारस्य महिमानं कोऽपि वर्णयितुम् न शक्नोति । समस्तधर्मग्रन्थेषु सदाचारस्य महिमा विभिन्नप्रकारैः वर्णितोऽस्ति । महाभारतेपि उक्तम्—

आचाराल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते श्रियम् ।
आचारात् कीर्तिमाप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च ॥
आचारलक्षणो धर्मः सन्तश्चारित्रलक्षणाः ।
साधूनाञ्च यथावृत्तमेतदाचार-लक्षणम् ॥

दुराचारी नास्तिकः, निष्क्रियः अधर्मज्ञश्च भवति । अतएव सः अल्पायुः भवति । अतएव वयं सदाचारिणः भवेम । सच्चरित्रः मनुष्यः मातृवत् परदारेषु व्यवहारं करोति, कन्या बालिकाश्च स्वभगिनीवत् पश्यति, परद्रव्याणि लोष्टवत् पश्यति । सदाचारेणैव लोकस्य उन्नतिर्भवति '(सदाचारपालनेनैव हरिश्चन्द्रः, दधीचिः, गान्धिमहोदयश्च यशःशरीरेण अद्यापि जीवन्ति । अतः समस्तैः मानवैः सदाचारः पालनीयः ।

१९. विज्ञानं वैज्ञानिका आविष्काराश्च

आवश्यकता आविष्काराणां जननी भवति । इदं युगं विधान-प्रधानं नास्त्यत्र कोऽपि सन्देहः । वैज्ञानिकैः आविष्कारैः जगतो महानुपकारो जातः । वैज्ञानिकेन मानवेन लोकहितार्थं प्राकृतिकशक्तीनां वशीकरणे यत्साफल्यं प्राप्तं तत् न विस्मर्तुं शक्यते ।

प्राचीनकाले वाहनानि अश्वरथः, गजः घोटकाश्च आसन् । श्रेष्ठिनो, महाजना, धनिकाश्च पुष्परथैः, शकटैः शकटीभिश्च चलन्ति स्म । सामान्यजनास्तु पद्भ्यामेव जग्मुः । साम्प्रतं तु नानाविधान्यद्भुतयानानि वैज्ञानिकैः निर्मितानि सन्ति । धूम्रयानेन स्थले वयं वेगेन गच्छामः । धूम्रयानेन अस्माकं दूरयात्रायां जायमानमसौख्यमपि दूरीकृतम् । वयं पोतेन समुद्रांश्च तरामः, वायुयानेन च आकाशेऽपि स्वच्छन्दं विचरामः । परं विमानानां, समुद्रपोतानां जलान्तर्गामिनीनां नौकानाम् चाविष्कारेण युद्धं नितरां भीषणं जातम् ।

अद्य चित्रपटस्य समाजे यादृशः प्रभावः न तादृशोऽन्यस्य कस्यापि वस्तुनः । सम्प्रति चित्रपटस्य महान् प्रचारोऽस्ति । एवं किमपि नगरं नास्ति यत्र चित्रपट-

भवनं न भवेत्। अद्य मुद्रणयन्त्र-प्रभावेण अतिदुर्लभमपि ग्रन्थरत्नमल्पमूल्येन लब्धुं शक्यते। समाचारपत्राणि अधुना गेहे गेहे पठ्यन्ते। समाचारपत्रेण संसारस्य महान् उपकारः भवति। अनेनैव सर्वं स्थानं निकटे स्थितमिव वर्तते। 'रेडियो' इत्याख्येन ध्वनिप्रसारकयन्त्रेण पर्वतानां सागराणां गहनानां वनानां च व्यवधानम् अविगणय्य जनः उच्चारणसमकालमेव सहस्रक्रोशेभ्योऽपि वृत्तं गीतादिकं च शृणोति। 'टेलीविजन' इति नाम्ना प्रसिद्धेन यन्त्रेण दविष्ठस्यापि जनस्य आकृतिरपि दृष्टिपथमायाति। अहो विज्ञानस्य विस्मयावहः महिमा। कृषियन्त्राणामाविष्कारेण इह विज्ञानप्रधाने युगे उत्पादनकर्मणि महती प्रगतिः दृश्यते। अधुना प्रत्येकं कार्यं विद्युच्छक्तिप्रयोगेण सरलतया सुष्ठुतया च सम्पादयितुं शक्यते। दूरवीक्षणयन्त्राणाम् आविष्कारेण सूक्ष्मतरा अपि कीटाणवः द्रष्टुं शक्यन्ते। प्रचण्डेऽपि निदाघे ग्रीष्मभयमथवा कठिनेऽपि शीते शीतभयम् इदानीं नास्ति। वयम् उभयोः अपि कालयोः विद्युद्व्यजनसाहाय्येन विद्युच्चुल्लिप्रयोगेण वा सुखपूर्वकं शेमहे। सर्वमेतद् अन्यच्च वा सुखं वैज्ञानिकानां महतः श्रमस्य परिणामः। परमतीव खेदस्यायं विषयो यदियं विज्ञानस्योन्नतिः जनानां विध्वंसात्मकप्रवृत्त्या। अतः विध्वंसात्मकं विज्ञानं परित्यज्य रचनात्मकविज्ञानमङ्गीकृत्य जनाः सुखं लभेरन्।

२०. गीताया उपदेशामृतम्

"गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।"

महाभारतस्य युद्धक्षेत्रे संशयालुमर्जुनं दृष्ट्वा तस्य कर्त्तव्यपालनार्थं भगवता कृष्णेन य उपदेशो दत्तः स एव 'श्रीमद्भगवद्गीता' इति नाम्ना प्रसिद्धोऽस्ति। श्रीमद्भगवद्गीतायां भगवता कृष्णेन मनुष्यस्य आवश्यकं कर्त्तव्यं प्रतिपादितमस्ति। ये उपदेशा गीतायां सन्ति, तेषां मुख्या एते सन्ति :—

(अ) अयमात्मा अजरः, अमरः, नित्यः, शाश्वतः पुराणश्च। शरीरे हन्यमाने अयमात्मा न हन्यते।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

(ब) मर्त्यः स्वकर्मानुसारमेव म्रियते पुनर्जन्म च प्राप्नोति। अतएवास्मिन् विषये शोको न कर्त्तव्यः।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

(स) इदं जगत् कर्मक्षेत्रमस्ति। पौरुषमस्माकमधीनम्, फलं तु दैवाधीनम्। फलाशां परित्यज्य कर्माणि कर्त्तव्यानि।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(द) मनुष्यैः स्वधर्मो न त्याज्यः। सदा स्वकर्म पालनीयम्।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

(य) मरणं वरमस्ति परन्तु कीर्तिनाशः न। अतःजनैः कीर्तिरक्षा करणीया।

सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।

(फ) शुभाशुभकर्मणः नाशो न भवति।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।

गीताया उपदेशः जनानाम् अखिलमलप्रक्षालनक्षमम् अजलं स्नानम्। अस्मिन्नेकस्मिन् ग्रन्थे मानवजीवने साफल्यजुषां जनानामभीष्टाः सर्वेऽपि विषयाः समुपलभ्यन्ते। अतो गीतायाः पठनं पाठनञ्च कार्यम्।

२१. अस्माकं विद्यालयः

अस्माकं विद्यालयः नगराद् बहिः एकान्ते सुरम्ये स्थले स्थितोऽस्ति। विद्यालयस्य भवनानि दर्शकानां चेतांसि हरन्ति। विद्यालयोऽस्माकं कृते न केवलं पाठशालाऽस्ति, अपि तु अस्माकं सर्वस्वमस्ति। अत्र पुस्तकानामेव पठनं पाठनञ्च न भवति, अपि तु सदाचारस्य पाठोऽपि पाठ्यते, विनयस्यानुशासनस्य शिक्षणं भवति, समाजसेवाया देशभक्तेश्च, शिक्षां छात्रा गृह्णन्ति। अतएव विद्यालयोऽयम् अस्माकं कृते 'विद्यामन्दिरम्' अस्ति।

अस्माकं विद्यालयेऽध्यापकानां प्राध्यापकानां च संख्या षष्टिः, तथा छात्राणां संख्या पञ्चाशदधिकं सहस्रं वर्तते। प्रायः शतत्रयी बालिकानामपि वर्तते। विद्यालयस्याध्यापकाः विविधविद्यापारंगता विद्वांसः सन्ति। सर्व एव शिक्षणकलानिपुणाः सन्ति। छात्रा अपि प्रायो व्युत्पन्नधियः सन्ति। शिक्षाविषयेऽस्माकं विद्यालयः

समस्तप्रदेशे ख्यातिं गतः; अतएव अन्यप्रान्तेभ्योऽपि छात्रा अत्रैवाध्ययनार्थमागच्छन्ति। प्रतियोगिता-परीक्षासु विशिष्टं स्थानम् अस्मद्विद्यालयीयाः छात्रा लभन्ते। ते खलु न केवलं पठने एव योग्यतमाः सन्ति, अपि तु क्रीडने, धावने, तरणे, भाषणप्रतियोगितासु चापि। अनुशासने संयमे समाजसेवायां देशसेवायामपि च तेषां स्थानं सर्वप्रथममेव विद्यते। अस्माकं विद्यालये छात्राणां क्रीडनार्थं सुविस्तृतं क्रीडाक्षेत्रं विद्यते। अत्र सैनिकशिक्षाया अपि प्रबन्धोऽस्ति। ये क्रीडनादिप्रतियोगितासु प्रथमस्थानं लभन्ते, ते पुरस्कारादिकमपि लभन्ते। ये शोभनं कर्म कुर्वन्ति, ते सदा पुरस्कृता भवन्ति। छात्राणां स्वास्थ्यवृद्धयै व्यायामस्य, मल्लयुद्धस्यापि प्रबन्धोऽस्ति। अतएव छात्राः हृष्टपुष्टशरीरा विकसितवदना भद्रवेषाश्च सन्ति। विविधभाषासु भाषणपाटवार्थं विविधाः परिषदः सन्ति।

साम्प्रतमस्माकमेतत् कर्तव्यं भवति यत् सर्वथा वयं विद्यालयस्य कीर्तिं चतुर्दिक्षु विस्तारयितुं प्रयतेय। एवमस्माकमपि यशोवृद्धिं प्राप्स्यति।

२२. संघे शक्तिः कलौ युगे (एकता)

एकमुद्देश्यं लक्ष्यीकृत्य बहूनां जनानाम् एकत्वभावनया कार्यकरणम् 'एकता' इति कथ्यते। एकतया मानवो बलवान् भवति। एकतयैव समाजः, राष्ट्रं, लोकश्च उन्नतिपथमधिरोहति।

अद्यत्वे संसारे एकतायाः अतीवावश्यकता वर्तते। यस्मिन् राष्ट्रे एकताया अभावोऽस्ति, तद् राष्ट्रं परतन्त्रतापाशबद्धं भवति। अस्माकं देशोऽपि एकताया अभावात् कतिपयवर्षपूर्वं यावत् पारतन्त्र्यपाशबद्ध आसीत्। परं यदा भारतीयेषु एकताभावनाया जागर्तिरभूत्, तदा ते स्वातन्त्र्यमलभन्त। अतएवोच्यते 'संघे शक्तिः कलौ युगे'।

ऋग्वेदस्यान्तिमे सूक्ते एकताया आवश्यकता महत्त्वं च प्रतिपादितमस्ति। सर्वे मानवा एकत्वभावनया युक्ताः स्युः। तेषां गमनं, विचाराः, मनांसि, भाषणं, सङ्कल्पाश्चैकत्वभावेनैव प्रेरितानि स्युः। इत्थं संसारे सुखस्य शान्तेश्च प्राप्तिः संभवति। तथा हि—

> संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ॥ १ ॥
> समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
> समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ २ ॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ३ ॥

एकताया अद्भुत एव प्रभावः । हितोपदेशे मित्रलाभप्रकरणे एकताया लाभाः प्रतिपादिताः सन्ति । क्षुद्राणि तृणानि यदा रज्जुरूपं धारयन्ति, तदा गजोऽपि तेन बध्यते । जलबिन्दुसमूहेन नदी सागरश्च भवति । मृत्तिकाकणसमूह एव पर्वतो भवति । तन्तुसमूहेन पटो जायते । अत एवोक्तम्—'संहतिः श्रेयसी पुंसाम्' ।

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका ।
तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः ॥

यत्रैकताया अभावो वर्तते तत्र क्षयो नाशो हानिश्च दृश्यते । अतः सुखसमृद्धि-प्राप्त्यै एकता धारणीया । उक्तं चापि महाभारते—

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मं, न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः ।
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति, न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति ॥

संक्षिप्त धातुकोष

प्रस्तुत पुस्तक में जिन धातुओं का प्रयोग हुआ है, उनके संक्षिप्त रूप यहाँ दिए गए हैं। प्रचलित लट् आदि ५ लकारों के ही रूप दिए गए हैं। प्रत्येक लकार के प्रथम पुरुष एकवचन का रूप दिया गया है। जो धातु जिस गण की है, उस धातु के रूप उस गण की धातुओं के समान चलेंगे। परस्मैपद में ही अधिक प्रचलित उभयपदी धातुओं के रूप परस्मैपद में ही दिए गए हैं।

प्रत्येक धातु के रूप लुट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् और लृट्, इस क्रम से दिए गए हैं। अन्त में कर्मवाच्य या भाववाच्य का प्रथम पुरुष एकवचन का रूप दिया गया है।

संक्षेप के लिए निम्नलिखित संकेत प्रयुक्त हैं—प० = परस्मैपदी। आ० = आत्मनेपदी। उ० = उभयपदी। १—भ्वादिगण। २—अदादिगण। ३—जुहोत्यादिगण। ४—दिवादिगण। ५—स्वादिगण। ६—तुदादिगण। ७—रुधादिगण। ८—तनादिगण। ९—क्र्यादिगण। १०—चुरादिगण। ११—कण्ड्वादिगण।

धातु के साथ उपसर्ग होने पर लङ् में शुद्ध धातु से पहले अ या आ जोड़ें उपसर्ग से पूर्व नहीं।

अद् (२ प०, खाना) अत्ति, अत्तु, आदत्, अद्यात्, अत्स्यति । अद्यते ।

अर्च् (१ प०, पूजना) अर्चति, अर्चतु, आर्चत्, अर्चेत्, अर्चिष्यति । अर्च्यते ।

अश् (९ प०, खाना) अश्नाति, अश्नातु, आश्नात्, अश्नीयात्, अशिष्यति । अश्यते ।

अस् (२ प०, होना) अस्ति, अस्तु, आसीत्, स्यात्, भविष्यति । भूयते ।

अस् (४ प०, फेंकना) अस्यति, अस्यतु, आस्यत्, अस्येत्, असिष्यति । अस्यते ।

असूय् (११ प०, द्रोह करना) असूयति, असूयतु, आसूयत्, असूयेत्, असूयिष्यति । असूय्यते ।

आप् (५ प०, पाना) आप्नोति, आप्नोतु, आप्नोत्, आप्नुयात्, आप्स्यति । आप्यते ।

आस् (२ आ०, बैठना) आस्ते, आस्ताम्, आस्त, आसीत, आसिष्यते । आस्यते ।

इ (अधि + २ आ०, पढ़ना) अधीते, अधीताम्, अध्यैत, अधीयीत, अध्येष्यते । अधीयते ।

इष् (६ प०, चाहना) इच्छति, इच्छतु, ऐच्छत्, इच्छेत्, एषिष्यति । इष्यते ।

ईक्ष् (१ आ०, देखना) ईक्षते, ईक्षताम्, ऐक्षत, ईक्षेत, ईक्षिष्यते । ईक्ष्यते ।

ईर्ष्य् (१ प०, ईर्ष्या करना) ईर्ष्यति, ईर्ष्यतु, ऐर्ष्यत्, ईर्ष्येत्, ईर्ष्यिष्यति । ईर्ष्यते ।

कथ् (१० उ०, कहना) प०—कथयति, कथयतु, अकथयत्, कथयेत्, कथयिष्यति ।

आ०—कथयते, कथयताम्, अकथयत, कथयेत, कथयिष्यते । कथ्यते ।

कम्प् (१ आ०, काँपना) कम्पते, कम्पताम्, अकम्पत, कम्पेत, कम्पिष्यते । कम्प्यते ।

कुप् (४ प०, क्रोध करना) कुप्यति, कुप्यतु, अकुप्यत्, कुप्येत्, कोपिष्यति । कुप्यते ।

कुर्द् (१ आ०, कूदना) कूर्दते, कूर्दताम्, अकूर्दत, कूर्देत, कूर्दिष्यते । कूर्द्यते ।

कृ (८ उ, करना) प—करोति, करोतु, अकरोत् , कुर्यात् , करिष्यति ।

आ।०—कुरुते, कुरुताम् , अकुरुत, कुर्वीत, करिष्यते । क्रियते ।

कृप् (१ आ० समर्थ होना) कल्पते, कल्पताम् , अकल्पत, कल्पेत, कल्पिष्यते । कल्प्यते ।

कृष् (१ प०, खींचना) कर्षति, कर्षतु, अकर्षत् , कर्षेत् , कर्क्ष्यति । कृष्यते ।

कॄ (६ प०, बिखेरना) किरति, किरतु, अकिरत् , किरेत् करिष्यति । कीर्यते ।

कृत् (१० उ०, नाम लेना) कीर्तयति, कीर्तयतु, अकीर्तयत् , कीर्तयेत् , कीर्तयिष्यति । कीर्त्यते ।

क्रन्द् (१ प०, रोना) क्रन्दति, क्रन्दतु, अक्रन्दत् , क्रन्देत् , क्रन्दिष्यति । क्रन्द्यते ।

क्रम् (१ प०, चलना) क्रामति, क्रामतु, अक्रामत् , क्रामेत् , क्रमिष्यति । क्रम्यते ।

क्री (९ उ०, खरीदना)प०—क्रीणाति, क्रीणातु, अक्रीणात, क्रीणीयात् क्रेष्यति ।

आ०—क्रीणीते, क्रीणीताम् , अक्रीणीत, क्रीणीत, क्रेष्यते । क्रीयते ।

क्रीड् (१ प०, खेलना) क्रीडति, क्रीडतु, अक्रीडत् , क्रीडेत् , क्रीडिष्यति । क्रीड्यते ।

क्रुध् (४ प०, क्रुद्ध होना) क्रुध्यति, क्रुध्यतु, अक्रुध्यत् , क्रुध्येत् , क्रोत्स्यति । क्रुध्यते ।

क्लम् (४ प०, थकना) क्लाम्यति, क्लाम्यतु, अक्लाम्यत् , क्लाम्येत् , क्लमिष्यति । क्लम्यते ।

क्षम् (१ आ०, क्षमा करना) क्षमते, क्षमताम् , अक्षमत, क्षमेत, क्षमिष्यते । क्षम्यते ।

क्षल् (१० उ०, धोना) प०—क्षालयति, क्षालयतु, अक्षालयत् , क्षालयेत् , क्षालयिष्यति ।

आ०—क्षालयते, क्षालयताम् , अक्षालयत, क्षालयेत, क्षालयिष्यते । क्षाल्यते ।

क्षिप् (६ उ०, फेंकना) क्षिपति, क्षिपतु, अक्षिपत्, क्षिपेत् , क्षेप्स्यति । क्षिप्यते ।

क्षुभ् (१ आ०, क्षुभित होना) क्षोभते, क्षोभताम् , अक्षोभत, क्षोभेत, क्षोभिष्यते । क्षुभ्यते ।

खन् (१ उ०, खोदना) खनति, खनतु, अखनत्, खनेत्, खनिष्यति। खन्यते।

खाद् (१ प०, खाना) खादति, खादतु, अखादत्, खादेत्, खादिष्यति। खाद्यते।

गण् (१० उ०, गिनना) गणयति, गणयतु, अगणयत्, गणयेत्, गणयिष्यति। गण्यते।

गम् (१ प०, जानना) गच्छति, गच्छतु, अगच्छत्, गच्छेत्, गमिष्यति। गम्यते।

गर्ज् (१प०, गरजना) गर्जति, गर्जतु, अगर्जत्, गर्जेत्, गर्जिष्यति। गर्ज्यते।

गर्ह् (१० उ०, निन्दा करना) गर्हयति, गर्हयतु, अगर्हयत्, गर्हयेत्, गर्हयिष्यति। गर्ह्यते।

गवेष् (१० उ०, खोजना) गवेषयति, गवेषयतु, अगवेषयत्, गवेषयेत्, गवेषयिष्यति। गवेष्यते।

गाह् (१ आ०, घुसना) गाहते, गाहताम्, अगाहत, गाहेत, गाहिष्यते। गाह्यते।

गुप् (१ आ०, निन्दा करना) जुगुप्सते, जुगुप्सताम्, अजुगुप्सत, जुगुप्सेत, जुगुप्सिष्यते। जुगुप्स्यते।

गै (१ प०, गाना) गायति, गायतु, अगायत्, गायेत्, गास्यति। गीयते।

ग्रह् (९ उ०, पकड़ना) प०–गृह्णाति, गृह्णातु, अगृह्णात्, गृह्णीयात्, ग्रहीष्यति।

आ०—गृह्णीते, गृह्णीताम्, अगृह्णीत, गृह्णीत, ग्रहीष्यते। गृह्यते।

घट् (१ आ० लगना) घटते, घटताम्, अघटत, घटेत, घटिष्यते। घट्यते।

घुष् (१० उ०, घोषित करना) घोषयति, घोषयतु, अघोषयत्, घोषयेत्, घोषयिष्यति, घोष्यते।

घ्रा (१ प० सूँघना) जिघ्रति, जिघ्रतु, अजिघ्रत्, जिघ्रेत्, घ्रास्यति। घ्रायते।

चर् (१ प०, चलना) चरति, चरतु, अचरत्, चरेत्, चरिष्यति। चर्यते।

चल् (१ प०, चलना) चलति, चलतु, अचलत्, चलेत्, चलिष्यति। चल्यते।

चि (५ उ०, चुनना) चिनोति, चिनोतु, अचिनोत्, चिनुयात्, चेष्यति। चीयते।

चिन्त् (१० उ, सोचना) प०—चिन्तयति, चिन्तयतु, अचिन्तयत्, चिन्तयेत्, चिन्तयिष्यति।

आ०—चिन्तयते, चिन्तयताम्, अचिन्तयत, चिन्तयेत, चिन्तयिष्यते। चिन्त्यते।

चुर् (१० उ०, चुराना) प०—चोरयति, चोरयतु, अचोरयत, चोरयेत्, चोरयिष्यति।

आ०—चोरयते, चोरयताम्, अचोरयत, चोरयेत, चोरयिष्यते। चोर्यते।

चेष्ट् (१ आ०, चेष्टा करना) चेष्टते, चेष्टताम्, अचेष्टत, चेष्टेत, चेष्टिष्यते। चेष्ट्यते।

छिद् (७ उ०, काटना) छिनत्ति, छिनत्तु, अच्छिनत, छिन्द्यात्, छेत्स्यति। छिद्यते।

जन् (४ आ०, पैदा होना) जायते, जायताम्, अजायत, जायेत, जनिष्यते। जायते।

जप् (१ प०, जपना) जपति, जपतु, अजपत, जपेत्, जपिष्यति। जप्यते।

जि (१ प०, जीतना) जयति, जयतु, अजयत्, जयेत्, जेष्यति। जीयते।

जीव् (१ प०, जीना) जीवति, जीवतु, अजीवत्, जीवेत्, जीविष्यति। जीव्यते।

जॄ (४ प०, वृद्ध होना) जीर्यति, जीर्यतु, अजीर्यत्, जीर्येत्, जरिष्यति। जीर्यते।

ज्ञा (९ उ०, जानना) प०—जानाति, जानातु, अजानात्, जानीयात्, ज्ञास्यति।

आ०—जानीते, जानीताम्, अजानीत, जानीत, ज्ञास्यते। ज्ञायते।

ज्वल् (१ प०, जलना) ज्वलति, ज्वलतु, अज्वलत्, ज्वलेत्, ज्वलिष्यति। ज्वल्यते।

डी (४ आ०, उड़ना) डीयते, डीयताम्, अडीयत, डीयेत, डयिष्यते। डीयते।

तड् (१० उ०, पीटना) ताडयति, ताडयतु, अताडयत्, ताडयेत्, ताडयिष्यति। ताड्यते।

तन् (८ उ०, फैलाना) प०—तनोति, तनोतु, अतनोत्, तनुयात्, तनिष्यति।

आ०—तनुते, तनुताम्, अतनुत, तन्वीत, तनिष्यते। तायते-तन्यते।

तप् (१ प०, तपना) तपति, तपतु, अतपत्, तपेत्, तप्स्यति। तप्यते।

तर्क् (१० उ०, सोचना) तर्कयति, तर्कयतु, अतर्कयत्, तर्कयेत्, तर्कयिष्यति। तर्क्यते।

तर्ज् (१० आ०, डाँटना) तर्जयते, तर्जयताम्, अतर्जयत, तर्जयेत, तर्जयिष्यते। तर्ज्यते।

तुद् (६ उ०, दुःख देना) तुदति-ते, तुदतु, अतुदत्, तुदेत्, तोत्स्यति। तुद्यते।

तुल् (१० उ०, तोलना) तोलयति, तोलयतु, अतोलयत्, तोलयेत्, तोलयिष्यति। तोल्यते।

तुष् (४ प०, तुष्ट होना) तुष्यति, तुष्यतु, अतुष्यत्, तुष्येत्, तोक्ष्यति। तुष्यते।

तृप् (४ प०, तृप्त होना) तृप्यति, तृप्यतु, अतृप्यत्, तृप्येत्, तर्पिष्यति, तृप्यते।

तृप् (१० उ०, तृप्त करना) तर्पयति-ते, तर्पयतु, अतर्पयत्, तर्पयेत्, तर्पयिष्यति। तर्प्यते।

तॄ (१ प०, तैरना), तरति, तरतु, अतरत्, तरेत्, तरिष्यति, तीर्यते।

त्यज् (१ प०, छोड़ना) त्यजति, त्यजतु, अत्यजत्, त्यजेत्, त्यक्ष्यति। त्यज्यते।

त्रप् (१ आ०, लजाना) त्रपते, त्रपताम्, अत्रपत, त्रपेत, त्रपिष्यते। त्रप्यते।

त्रै (१ आ०, बचाना) त्रायते, त्रायताम्, अत्रायत, त्रायेत, त्रास्यते। त्रायते।

त्वर् (१ आ०, जल्दी करना) त्वरते, त्वरताम्, अत्वरत, त्वरेत, त्वरिष्यते। त्वर्यते।

दण्ड् (१० उ०, दण्ड देना) दण्डयति-ते, दण्डयतु, अदण्डयत्, दण्डयेत्, दण्डयिष्यति। दण्ड्यते।

दह् (१ प०, जलाना), दहति, दहतु, अदहत्, दहेत्, धक्ष्यति । दह्यते ।

दा (३ उ०, देना), प०—ददाति, ददतु, अददात्, दद्यात् । दास्यति ।

आ० —दत्ते, दत्ताम्, अदत्त, ददीत, दास्यते । दीयते ।

दिव् (४ प०, जुआ खेलना) दीव्यति, दीव्यतु, अदीव्यत्, दीव्येत्, देविष्यति । दीव्यते ।

दिश् (६ उ०, देना, कहना) दिशति-ते, दिशतु, अदिशत्, दिशेत्, देक्ष्यति । दिश्यते ।

दीक्ष् (१ आ०, दीक्षा देना) दीक्षते, दीक्षताम्, अदीक्षत, दीक्षेत, दीक्षिष्यते । दीक्ष्यते ।

दीप् (४ आ०, चमकना) दीप्यते, दीप्यताम्, अदीप्यत, दीप्येत, दीपिष्यते । दीप्यते ।

दुह् (२ उ०, दुहना) दोग्धि, दोग्धु, अधोक्, दुह्यात्, धोक्ष्यति । दुह्यते ।

दृश् (१ प०, देखना) पश्यति, पश्यतु, अपश्यत्, पश्येत्, द्रक्ष्यति । दृश्यते ।

द्रुह् (४ प०, द्रोह करना) द्रुह्यति, द्रुह्यतु, अद्रुह्यत्, द्रुह्येत्, द्रोहिष्यति, द्रुह्यते ।

धा (३ उ०, धारण करना) प०—दधाति, दधातु, अदधात्, दध्यात्, धास्यति ।

आ०—धत्ते, धत्ताम्, अधत्त, दधीत, धास्यते । धीयते ।

धाव् (१ उ०, दौड़ना) धावति-ते, धावतु, अधावत्, धावेत्, धाविष्यति । धाव्यते ।

धृ (१० उ०, पहनना, रखना) धारयति, धारयतु, अधारयत्, धारयेत्, धारयिष्यति । धार्यते ।

ध्यै (१ प०, ध्यान करना) ध्यायति, ध्यायतु, अध्यायत्, ध्यायेत्, ध्यास्यति । ध्यायते ।

ध्वंस् (१ आ०, नष्ट होना) ध्वंसते, ध्वंसताम्, अध्वंसत, ध्वंसेत, ध्वंसिष्यते । ध्वस्यते ।

नम् (१ प०, झुकना) नमति, नमतु, अनमत्, नमेत्, नंस्यति । नम्यते ।

नश् (४ प०, नष्ट होना) नश्यति, नश्यतु, अनश्यत्, नश्येत्, नशिष्यति। नश्यते।

निन्द् (१ प०, निन्दा करना) निन्दति निन्दतु, अनिन्दत्, निन्देत्, निन्दिष्यति। निन्द्यते।

नी (१ उ०, ले जाना) प०—नयति, नयतु, अनयत्, नयेत्, नेष्यति।

आ०—नयते, नयताम्, अनयत, नयेत, नेष्यते। नीयते।

नृत् (४ प०, नाचना) नृत्यति, नृत्यतु, अनृत्यत्, नृत्येत्, नर्तिष्यति। नृत्यते।

पच् (१ उ०, पकाना) पचति-ते, पचतु, अपचत्, पचेत्, पक्ष्यति। पच्यते।

पठ् (१ प०, पढ़ना) पठति, पठतु, अपठत्, पठेत्, पठिष्यति। पठ्यते।

पत् (१ प०, गिरना) पतति, पततु, अपतत्, पतेत्, पतिष्यति। पत्यते।

पद् (४ आ०, जाना) पद्यते, पद्यताम्, अपद्यत, पद्येत, पत्स्यते। पद्यते।

पा (१ प०, पीना) पिबति, पिबतु, अपिबत्, पिबेत्, पास्यति। पीयते।

पा (२ प०, रक्षा करना) पाति, पातु, अपात्, पायात्, पास्यति। पायते।

पाल् (१० उ०, रक्षा करना) पालयति-ते, पालयतु, अपालयत्, पालयेत्, पालयिष्यति। पाल्यते।

पीड् (१० उ०, दुःख देना) पीडयति-ते, पीडयतु, अपीडयत्, पीडयेत्, पीडयिष्यति। पीड्यते।

प्रच्छ् (६ प०, पूछना) पृच्छति, पृच्छतु, अपृच्छत्, पृच्छेत्, प्रक्ष्यति। पृच्छ्यते।

प्र+ईर् (१० उ०, प्रेरणा देना) प्रेरयति, प्रेरयतु, प्रैरयत, प्रेरयेत, प्रेरयिष्यति। प्रेर्यते।

बन्ध् (९ प०, बाँधना) बध्नाति, बध्नातु, अबध्नात्, बध्नीयात्, भन्त्स्यति। बध्यते।

बाध् (१ आ०, पीडा देना) बाधते, बाधताम् , अबाधत, बाधेत, बाधिष्यते । बाध्यते ।

बुध् (४ आ०, जानना) बुध्यते, बुध्यताम् , अबुध्यत, बुध्येत, भोत्स्यते । बुध्यते ।

ब्रू (२ उ०, बोलना) ब्रवीति, ब्रवीतु, अब्रवीत् , ब्रूयात् , वक्ष्यति । उच्यते ।

भक्ष् (१० उ०, खाना) प०-भक्षयति, भक्षयतु, अभक्षयत् , भक्षयेत् , भक्षयिष्यति ।

आ०-भक्षयते, भक्षयताम् , अभक्षयत, भक्षयेत, भक्षयिष्यते । भक्ष्यते ।

भज् (१ उ०, सेवा करना) भजति-ते, भजतु, अभजत् , भजेत् । भक्ष्यति, भज्यते ।

भा (२ प०, चमकना) भाति, भातु, अभात् , भायात् , भास्यति । भायते ।

भाष् (१ आ०, बोलना) भाषते, भाषताम् , अभाषत, भाषेत, भाषिष्यते । भाष्यते ।

भास् (१ आ०, चमकना) भासते, भासताम् , अभासत, भासेत, भासिष्यते । भास्यते ।

भिक्ष् (१ आ०, माँगना) भिक्षते भिक्षताम् , अभिक्षत, भिक्षेत, भिक्षिष्यते । भिक्ष्यते ।

भिद् (७ उ०, तोड़ना) भिनत्ति, भिनत्तु, अभिनत् , भिन्द्यात् , भेत्स्यति । भिद्यते ।

भी (३ प०, डरना) बिभेति, बिभेतु, अबिभेत् , बिभीयात् , भेष्यति । भीयते ।

भुज् (७ उ०, पालना) प०-भुनक्ति, भुनक्तु, अभुनक् , भुञ्ज्यात् , भोक्ष्यति ।

(७ आ०, खाना) आ०-भुङ्क्ते भुङ्क्ताम् , अभुङ्क्त, भुंजीत, भोक्ष्यते । भुज्यते ।

भू (१ प०, होना) भवति, भवतु, अभवत् , भवेत् , भविष्यति । भूयते ।

भृ (१ उ०, पालन करना) भरति-ते, भरतु, अभरत् , भरेत्, भरिष्यति । भ्रियते ।

भ्रम् (१ प०, घूमना) भ्रमति, भ्रमतु, अभ्रमत्, भ्रमेत्, भ्रमिष्यति। भ्रम्यते।

भ्रम् (४ प०, घूमना) भ्राम्यति, भ्राम्यतु, अभ्राम्यत्, भ्राम्येत्, भ्रमिष्यति। भ्रम्यते।

भ्रंश् (१ आ०, गिरना) भ्रंशते, भ्रंशताम्, अभ्रंशत, भ्रंशेत, भ्रंशिष्यते। भ्रश्यते।

भ्राज् (१ आ०, चमकना) भ्राजते, भ्राजताम्, अभ्राजत, भ्राजेत, भ्राजिष्यते। भ्राज्यते।

मण्ड् (१० उ०, मंडन करना) मण्डयति, मण्डयतु, अमण्डयत, मण्डयेत्, मण्डयिष्यति। मण्ड्यते।

मथ् (१ प०, मथना) मथति, मथतु, अमथत्, मथेत्, मथिष्यति। मथ्यते।

मद् (४ प०, खुश होना) माद्यति, माद्यतु, अमाद्यत्; माद्येत, मदिष्यति। मद्यते।

मन् (४ आ०, मानना) मन्यते, मन्यताम्, अमन्यत, मन्येत, मंस्यते। मन्यते।

मन्थ् (९ प०, मथना) मथ्नाति, मथ्नातु, अमथ्नात्, मथ्नीयात, मन्थिष्यति। मथ्यते।

मा (२ प०, नापना) माति, मातु, अमात्, मायात, मास्यति। मीयते।

मुच् (६ उ०, छोड़ना) प०—मुञ्चति, मुञ्चतु, अमुञ्चत्, मुञ्चेत, मोक्ष्यति। आ०—मुञ्चते, मुञ्चताम्, अमुञ्चत, मुञ्चेत, मोक्ष्यते। मुच्यते।

मुद् (१ आ०, खुश होना) मोदते, मोदताम्, अमोदत, मोदेत, मोदिष्यते। मुद्यते।

मुष् (९ प०, चुराना) मुष्णाति, मुष्णातु, अमुष्णात्, मुष्णीयात्, मोषिष्यति। मुष्यते।

मुह् (४ प०, मुग्ध होना) मुह्यति, मुह्यतु, अमुह्यत्, मुह्येत्, मोहिष्यति। मुह्यते।

मूर्च्छ् (१ प०, मूर्छित होना) मूर्च्छति, मूर्च्छतु, अमूर्च्छत्, मूर्च्छेत्, मूर्च्छिष्यति। मूर्च्छ्यते।

मृ (६ आ०, मरना) म्रियते, म्रियताम्, अम्रियत, म्रियेत, मरिष्यति। म्रियते।

म्लै (१ प०, मुरझाना) म्लायति, म्लायतु, अम्लायत्, म्लायेत्, म्लास्यति। म्लायते।

यज् (१ उ०, यज्ञ करना) यजति-ते, यजतु, अयजत्, यजेत्, यक्ष्यति। इज्यते।

यत् (१ आ०, यत्न करना) यतते, यतताम्, अयतत, यतेत, यतिष्यते। यत्यते।

या (२ प०, जाना) याति, यातु, अयात्, यायात्, यास्यति। यायते।

याच् (१ उ०, माँगना) प०—याचति, याचतु, अयाचत्, याचेत्, याचिष्यति।

आ०—याचत, याचताम्, अयाचत, याचेत, याचिष्यते। याच्यते।

यापि (या + णिच्, प०, बिताना) यापयति, यापयतु, अयापयत्, यापयेत्, यापयिष्यति। याप्यते।

युज् (१० उ०, लगाना) योजयति, योजयतु, अयोजयत्, योजयेत्, योजयिष्यति, योज्यते।

युध् (४ आ०, लड़ना) युध्यते, युध्यताम्, अयुध्यत, युध्येत, योत्स्यते। युध्यते।

रक्ष् (१ प०, रक्षा करना) रक्षति, रक्षतु, अरक्षत्, रक्षेत्, रक्षिष्यति। रक्ष्यते।

रच् (१० उ०, बनाना) रचयति-ते, रचयतु, अरचयत्, रचयेत्, रचयिष्यति। रच्यते।

रञ्ज् (४ उ०, खुश होना) रज्यति-ते, रज्यतु, अरज्यत्, रज्येत्, रंक्ष्यति। रज्यते।

रम् (१ आ०, रमना) रमते, रमताम्, अरमत, रमेत, रंस्यते। रम्यते।

(वि + रम्, पर०) विरमति, विरमतु, व्यरमत्, विरमेत्, विरंस्यति।

राज् (१ उ०, चमकना) प०—राजति, राजतु, अराजत्, राजेत्, राजिष्यति।

आ०—राजते, राजताम्, अराजत, राजेत, राजिष्यते। राज्यते।

रुच् (१ आ०, अच्छा लगना) रोचते, रोचताम्, अरोचत, रोचेत, रोचिष्यते। रुच्यते।

रुद् (२ प०, रोना) रोदिति, रोदितु, अरोदीत्, रुद्यात्, रोदिष्यति । रुद्यते ।

रुध् (७ उ०, रोकना) प०-रुणद्धि, रुणद्धु, अरुणत्, रुन्ध्यात्, रोत्स्यति । आ०—रुन्धे, रुन्धाम्, अरुन्ध, रुन्धीत, रोत्स्यते । रुध्यते ।

रुह् (१ प०, उगना) रोहति, रोहतु, अरोहत्, रोहेत्, रोक्ष्यति । रुह्यते ।

लंघ् (१ आ०, लाँघना) लंघते, लंघताम्, अलंघत, लंघेत, लंघिष्यते । लंघ्यते ।

लप् (१ प०, बोलना) लपति, लपतु, अलपत्, लपेत्, लपिष्यति । लप्यते ।

लभ् (१ आ०, पाना) लभते, लभताम्, अलभत, लभेत, लप्स्यते । लभ्यते ।

लिख् (६ प०, लिखना) लिखति, लिखतु, अलिखत्, लिखेत्, लेखिष्यति । लिख्यते ।

लिप् (६ उ०, लीपना) लिम्पति-ते, लिम्पतु, अलिम्पत्, लिम्पेत्, लेप्स्यति । लिप्यते ।

लुप् (६ उ०, नष्ट करना) लुम्पति-ते, लुम्पतु, अलुम्पत्, लुम्पेत्, लोप्स्यति । लुप्यते ।

लुभ् (४ प०, लोभ करना) लुभ्यति, लुभ्यतु, अलुभ्यत्, लुभ्येत्, लोभिष्यति । लुभ्यते ।

लोक् (१० उ०, देखना) लोकयति-ते, लोकयतु, अलोकयत्, लोकयेत्, लोकयिष्यति । लोक्यते ।

वद् (१ प०, बोलना) वदति, वदतु, अवदत्, वदेत्, वदिष्यति । उद्यते ।

वन्द् (१ आ०, प्रणाम करना) वन्दते, वन्दताम्, अवन्दत, वन्देत, वन्दिष्यते । वन्द्यते ।

वप् (१ उ०, बोना) वपति-ते, वपतु, अवपत्, वपेत्, वप्स्यति । उप्यते ।

वस् (१ प०, रहना) वसति, वसतु-अवसत्, वसेत्, वत्स्यति । उष्यते ।

वह् (१ उ०, ढोना) वहति-ते, वहतु, अवहत्, वहेत, वक्ष्यति । उह्यते ।

वा (२ प०, हवा चलना) वाति, वातु, अवात् वायात्, वास्यति । वायते ।

विद् (२ प०, जानना) वेत्ति, वेत्तु, अवेत्, विद्यात्, वेदिष्यति । विद्यते ।

विद् (४ आ०, होना) विद्यते, विद्यताम्, अविद्यत, विद्येत, वेत्स्यते । विद्यते ।

विद् (६ उ०, पाना) विन्दति-ते, विन्दतु, अविन्दत्, विन्देत्, वेदिष्यति । विद्यते ।

विद् (१० आ०, कहना) वेदयते, वेदयताम्, अवेदयत, वेदयेत वेदयिष्यते । वेद्यते ।

विश् (६ प०, घुसना) विशति, विशतु, अविशत्, विशेत्, वेक्ष्यति । विश्यते ।

वृ (५ उ०, चुनना) वृणोति, वृणोतु, अवृणोत्, वृणुयात्, वरिष्यति । व्रियते ।

वृत् (१ आ०, होना) वर्तते, वर्तताम्, अवर्तत, वर्तेत, वर्तिष्यते । वृत्यते ।

वृध् (१ आ०, बढ़ना) वर्धते, वर्धताम्, अवर्धत वर्धेत, वर्धिष्यते । वृध्यते ।

वृष् (१ प०, बरसना) वर्षति, वर्षतु, अवर्षत्, वर्षेत्, वर्षिष्यति । वृष्यते ।

वे (१ उ०, बुनना) वयति-ते, वयतु, अवयत्, वयेत्, वास्यति । ऊयते ।

वेप् (१ आ०, काँपना) वेपते, वेपताम्, अवेपत, वेपेत, वेपिष्यते । वेप्यते ।

व्यथ् (१ आ०, दुःखित होना) व्यथते, व्यथताम्, अव्यथत, व्यथेत, व्यथिष्यते । व्यथ्यते ।

व्यध् (४ प०, बींधना) विध्यति, विध्यतु, अविध्यत्, विध्येत्, व्यत्स्यति । विध्यते ।

शक् (५ प०, सकना) शक्नोति, शक्नोतु, अशक्नोत्, शक्नुयात्, शक्ष्यति । शक्यते ।

शंक् (१ आ०, शंका करना) शंकते, शंकताम्, अशंकत, शंकेत, शंकिष्यते । शंक्यते ।

शप् (१ उ०, शाप देना) शपति-ते, शपतु, अशपत्, शपेत्, शप्स्यति । शप्यते ।

शम् (४ प०, शान्त होना) शाम्यति, शाम्यतु, अशाम्यत, शाम्येत, शमिष्यति । शम्यते ।

शास् (२ प०, शिक्षा देना) शास्ति, शास्तु, अशात्, शिष्यात्, शासिष्यति । शिष्यते ।

शिक्ष (१ आ०, सीखना) शिक्षते, शिक्षताम्, अशिक्षत, शिक्षेत, शिक्षिष्यते । शिक्ष्यते ।

शी (२ आ०, सोना) शेते, शेताम्, अशेत, शयीत, शयिष्यते । शय्यते ।

शुच् (१ प०, शोक करना) शोचति, शोचतु, अशोचत्, शोचेत्, शोचिष्यति । शुच्यते ।

शुध् (४ प०, शुद्ध होना) शुध्यति, शुध्यतु, अशुध्यत्, शुध्येत्, शोत्स्यति । शुध्यते ।

शुभ् (१ आ०, अच्छा लगना) शोभते, शोभताम्, अशोभत, शोभेत, शोभिष्यते । शुभ्यते ।

शुष् (४ प०, सूखना) शुष्यति, शुष्यतु, अशुष्यत्, शुष्येत्, शोक्ष्यति । शुष्यते ।

श्रि (१ उ०, आश्रय लेना) श्रयति–ते, श्रयतु, अश्रयत्, श्रयेत्, श्रयिष्यति । श्रीयते ।

श्रु (१ प०, सुनना) शृणोति, शृणोतु, अशृणोत, शृणुयात्, श्रोष्यति । श्रूयते ।

श्लिष् (४ प०, आलिंगन करना) श्लिष्यति, श्लिष्यतु, अश्लिष्यत्, श्लिष्येत्, श्लेषिष्यति । श्लिष्यते ।

श्वस् (२ प०, साँस लेना) श्वसिति, श्वसितु, अश्वसीत्, श्वस्यात्, श्वसिष्यति । श्वस्यते ।

सद् (१ प०, बैठना) सीदति, सीदतु, असीदत, सीदेत्, सत्स्यति । सद्यते ।

सह् (१ आ०, सहना) सहते, सहताम्, असहत, सहेत, सहिष्यते । सह्यते ।

सिच् (६ उ०, सींचना) सिंचति—ते, सिंचतु, असिंचत्, सिंचेत्, सेक्ष्यति सिच्यते ।

सिव् (४ प०, सीना) सीव्यति, सीव्यतु, असीव्यत्, सीव्येत्, सेविष्यति । सीव्यते ।

सृ (१ प०, चलना) सरति, सरतु, असरत्, सरेत्, सरिष्यति । स्रियते ।

सृज् (६ प०, बनाना) सृजति, सृजतु, असृजत्, सृजेत्, स्रक्ष्यति । सृज्यते ।

सेव् (१ आ०, सेवा करना) सेवते, सेवताम्, असेवत, सेवेत, सेविष्यते । सेव्यते ।

स्तु (२ उ०, स्तुति करना) स्तौति, स्तौतु, अस्तौत् , स्तुयात् , स्तोष्यति । स्तूयते ।

स्था (१ प०, रुकना) तिष्ठति, तिष्ठतु, अतिष्ठत् , तिष्ठेत् , स्थास्यति । स्थीयते ।

स्ना (२ प०, नहाना) स्नाति, स्नातु, अस्नात् , स्नायात् , स्नास्यति । स्नायते ।

स्निह् (४ प०, स्नेह करना) स्निह्यति, स्निह्यतु, अस्निह्यत् , स्निह्येत् , स्नेहिष्यति । स्निह्यते ।

स्पन्द् (१ आ०, हिलना) स्पन्दते, स्पन्दताम् , अस्पन्दत, स्पन्देत, स्पन्दिष्यते । स्पन्द्यते ।

स्पर्ध् (१ आ०, स्पर्धा करना) स्पर्धते, स्पर्धताम् , अस्पर्धत, स्पर्धेत, स्पर्धिष्यते । स्पर्ध्यते ।

स्पृश् (६ प०, छूना) स्पृशति, स्पृशतु, अस्पृशत् , स्पृशेत् स्प्रक्ष्यति । स्पृश्यते ।

स्पृह् (१० उ०, चाहना) स्पृहयति, स्पृहयतु, अस्पृहयत् , स्पृहयेत् , स्पृहयिष्यति । स्पृह्यते ।

स्मृ (१ प०, सोचना) स्मरति, स्मरतु, अस्मरत् , स्मरेत् , स्मरिष्यति । स्मर्यते ।

स्रंस् (१ आ०, गिरना) स्रंसते, स्रंसताम् , अस्रंसत , स्रंसेत, स्रंसिष्यते । स्रस्यते ।

स्वद् (१० उ०, स्वाद लेना) आ, आस्वादयति, आस्वादयतु, आस्वादयत् , आस्वादयेत् , आस्वादयिष्यति । आस्वाद्यते ।

स्वप् (२ प०, सोना) स्वपिति, स्वपितु, अस्वपत् , स्वप्यात् , स्वप्स्यति । सुप्यते ।

हन् (२ प०, मारना) हन्ति, हन्तु, अहन् , हन्यात् हनिष्यति । हन्यते ।

हस् (१ प०, हसना) हसति, हसतु, अहसत् , हसेत् , हसिष्यति । हस्यते ।

हा (३ प०, छोड़ना) जहाति, जहातु , अजहात् , जह्यात् , हास्यति । हीयते ।

हु (३ प०, यज्ञ करना) जुहोति, जुहोतु, अजुहोत् , जुहुयात् , होष्यति । हूयते ।

हृ (१ उ०, ले जाना, चुराना) प०—हरति, हरतु, अहरत् , हरेत् , हरिष्यति । आ०—हरते, हरताम् , अहरत, हरेत, हरिष्यते । ह्रियते ।

हृष् (४ प०, खुश होना) हृष्यति, हृष्यतु, अहृष्यत् , हृष्येत् , हर्षिष्यति । हृष्यते ।

ह्वे (१ उ०, बुलाना) आ + , आह्वयति, आह्वयतु, आह्वयत , आह्वयेत् , आह्वयिष्यति । आहूयते ।

१—परिशेष

रोमन अक्षरों में संस्कृत लिखने की विधि

यूरोपीय विद्वान् संस्कृतभाषा को बड़े चाव से पढ़ते हैं। इन विद्वानों ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर उपयोगी ग्रन्थों की रचना की है। प्रायः संस्कृत शब्दों को ये रोमन अक्षरों में लिखते हैं। हम लोगों को भी इस विधि का ज्ञान रखना आवश्यक है। पुरातत्त्व का अन्वेषण करते समय इस ज्ञान की पग-पग पर आवश्यकता पड़ती है।

a	ā	i	ī	u	ū	ṛ	ṝ	l	e	o	ai	au
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	लृ	ए	ओ	ऐ	औ

अनुनासिक (स्वर के ऊपर) अथवा अनुस्वार—ṅ अथवा ṃ विसर्ग—ḥ

क्	ख्	ग्	घ्	ङ्
k	kh	g	gh	ṅ
च्	छ्	ज्	झ्	ञ्
c	ch	g	gh	ñ
ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्
ṭ	ṭh	ḍ	ḍh	ṇ
त्	थ्	द्	ध्	न्
t	th	d	dh	n
प्	फ्	ब्	भ्	म्
p	ph	b	bh	m
य्	र्	ल्	व्	
y	r	l	v	
श्	ष्	स्	ह्	
ś	ṣ	s	h	

यदा-कदा ऋ, ॠ, लृ को क्रमशः ṛi, ṛī, lṛi, च्, छ् को ch, chh, श्, ष् को c, sh भी लिखते हैं।

इस प्रकार इन अक्षरों को जोड़कर शब्द लिखे जाते हैं—

रश्मि—raṣmi, क्लृप्त—klrpta,

प्रद्योत—Pradyota, संस्कृतिः—sānskritiḥ

२—परिशेष

लेखोपयोगी चिह्न

अल्प-विराम-चिह्नम्	,	(Comma)
अर्धविरामचिह्नम्	;	(Semi-colon)
पूर्णविरामचिह्नम्	।	(Full-stop)
प्रसंगसमाप्तिचिह्नम्	॥	
प्रश्नबोधकचिह्नम्	?	(Sign of Interrogation)
विस्मयादिबोधकचिह्नम् (सम्बोधनाऽऽश्चर्यखेदचिह्नम्)	!	(Sign of admiration, surp-rise etc.)
उद्धरणचिह्नम्	" "	(Inverted Commas)
निर्देशचिह्नम्	—	
योजकचिह्नम्	-	(Hyphan)
कोष्ठक (पाठान्तर) चिह्नम्	[ ] ( )	(Parenthesis)
सन्धिविच्छेदचिह्नम्	+	
पर्यायचिह्नम्	=	
त्रुटिनिर्देशचिह्नम्	‸	

परीक्षा-प्रश्नपत्राणि

हाई स्कूल परीक्षा : यू० पी०

१९६४

प्रसंगनिर्देश पूर्वक निम्नलिखित अवतरणों में से किन्हीं दो का हिन्दी में अनुवाद कीजिये।

(क) विनोबाचार्योऽपि राष्ट्रजनकः गांधी इव विशिष्टसत्त्वसम्पन्नः सन् भारतीयानां जनानां कल्याणपरम्परासु दत्तमनोयोगधनः सन् स्वजीवनं सफलयति। राष्ट्रपितुः प्रेयान् शिष्यः अनन्यभक्तश्चायमाचार्यः तदवशिष्टकार्यकलापं पूर्णतां नयति।

(ख) बटुरसावाकृत्या सुन्दरः, वर्णेन गौरः, जटाभिर्ब्रह्मचारी, वयसा षोडशवर्षदेशीयः, कम्बुकण्ठः, आयतललाटः, सुबाहुर्विशाललोचनश्चासीत्।

(ग) अये गणक! तव पुत्रः शास्त्रे कृताभ्यासोऽस्ति किंत्वबुद्धिः। यावद्दूरं शास्त्रानुसारिण्या गणनया कथितं तावत् संवाद एव। अन्यच्च स्वीकीयेन यदुक्तं तत्र विसंवादो वृत्तः। अरे जन्मान्ध! त्वं न जानासि वरट्टकमण्डलं महत् पाषाणमयं मनुष्यमुष्टिगर्भे न सम्भवतीति।

(घ) सर्वथा तमभिनंदति, तमालपति, तं पार्श्वे कुर्वंति, तं संवर्धयति, तस्मै ददाति, तस्य वचनं शृणोति, तं बहु मन्यते, तमाप्ततामापादयति, योऽहर्निशं उपरचिताञ्जलिः अधिदैवतमिव विगतान्यकर्त्तव्यः स्तौति यो वा माहात्म्यमुद्भावयति।

(ङ) कस्मिंश्चिन्नगरे कश्चित् स्वभावकृपणो नाम ब्राह्मणः प्रतिवसति स्म। तेन भिक्षार्जितैः सक्तुभिः भुक्तशेषैः कलशः सम्पूरितः। तं च घटं नागदन्तेऽवलम्ब्य तस्याधस्तात् खट्वां निधाय सततमेकदृष्ट्या तमवलोकयति। अथ कदाचिद्रात्रौ सुप्तश्चिन्तयामास, यत्परिपूर्णोऽयं घटस्तावत् सक्तुभिः वर्तते। तद् यदि दुर्भिक्षं भवति तदनेन रूप्यकाणां शतमुत्पद्यते।

(च) अपरसागराम्भसि पतिते दिवसकरे तारागणमम्बरमधारयत्। अचिराच्च तारकि वियदराजत। अपहाय मुनिहृदयानि सर्वमन्यदन्धकारतां तिमिरमनयत्। क्रमेण च रविरस्तंगत इत्युदन्तमुपलभ्य जातवैराग्यो धौतदुकूलवल्कलाम्बरो गगनतलममृतदीधितिरध्यतिष्ठत्।

(छ) विजयतां विजयतां शूद्रको महाराजः, गृह्यतामयमुपहारः। इत्युक्त्वा पुत्रस्य शिरश्चिच्छेद। ततो वीरवरश्चिन्तयामास, गृहीतराजवर्तनस्य निस्तारः

पूते भारतवर्षे अनेके महात्मानः अतीतकाले प्रादुर्भूताः अद्यापि प्रादुर्भवन्ति च। अधुनैव राष्ट्रपिता महात्मा गांधी एकस्मिन्नेव जन्मनि यं यं कृत्यकलापं सम्पादितवान् तदन्ये महापुरुषाः जन्मशतेष्वपि कर्तुम् न पारयन्ति।

(ग) एकदा सभायां ज्योतिःशास्त्रपारंगतः कश्चिद् ब्राह्मणः समागतः। मुञ्जस्तं ब्राह्मणं भोजस्य जन्मपत्रिकां पप्रच्छ। ततः स दैवज्ञो राजानं प्राह—राजन्! भोजस्य भाग्योदयं वक्तुं विरञ्चिरपि नालम्, कोऽहमुदरम्भरिः ब्राह्मणः। तथापि किञ्चिद् वदामि स्वमत्यनुसारेण।

(घ) द्रोणो मुहूर्तं चिन्तयित्वाऽर्जुनमादायैकलव्यं गतः। जटिलं चीरवाससं धनुष्पाणिमनिशं शरानस्यन्तमेकलव्यं ददर्श। एकलव्यस्तु द्रोणमायान्तमवलोक्य प्रत्युद्गम्य शिरसा प्रणम्यात्मानं शिष्यं निवेद्य द्रोणस्याग्रतः प्राञ्जलिस्तस्थौ। द्रोण-एकलव्यमुवाच यदि मे शिष्योऽसि, वेतनं दीयतामिति।

(ङ) अथ तस्मिन् सेवां कुर्वति तैर्विप्रैः सर्ववस्तूनि विक्रीय बहुमूल्यानि रत्नानि क्रीतानि। ततस्तानि जङ्घामध्ये तत्समक्षं प्रक्षिप्य स्वदेशं प्रति गन्तुमुद्यमो विहितः। ततः स धूर्तविप्रः विशन् तान् गन्तुमुद्यतान् प्रेक्ष्य चिन्ताव्याकुलितमनाः सञ्जातः। अहो! धनमेतस्य किञ्चिन् मम चटितम्, अर्थैभिः सह यामि।

(च) विक्रमार्के राज्यं कुर्वति, एकदा कश्चिद्दिगम्बरः समागत्य राज्ञो हस्ते फलं दत्त्वा आशिषं प्रयुज्य भवति—भो राजन्! अहं मार्गशीर्षे कृष्णचतुर्दशी-दिवसे महाश्मशाने हवनं करिष्यामि। भवान् परोपकारी सत्त्वाधिक इति मे विदितः, तत्र ममोत्तरसाधकेन त्वया भवितव्यम्।

(छ) अथान्यस्मिन् दिवसे ते ब्राह्मणाः परस्परं निश्चयं कृत्वा विद्योपार्जनार्थं कान्यकुब्जं गताः। तत्र च विद्यामठे गत्वा पठन्ति। एवं द्वादशाब्दान् यावदेकचित्ततया विद्याकुशलास्ते सर्वे सञ्जाताः। ततस्तैश्चतुर्भिर्मिलित्वोक्तम्—वयं सर्वे विद्यापारं गताः, तदुपाध्यायमुत्कलापयित्वा स्वदेशे गच्छामः।

निम्नलिखित सूक्तियों में से किसी एक की व्याख्या हिन्दी में कीजिये :—

(क) विक्रमार्जितराज्यस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता।
(ख) सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति।
(ग) नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।
(घ) यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः।
(ङ) सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते।
(च) मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः।
(छ) तस्यैव जीवितं श्लाघ्यं यः परार्थे हि जीवति।

निम्नांकित विषयों में से किसी एक विषय पर २० पंक्ति का निबन्ध संस्कृत में लिखिये—

(क) वर्षर्तुः (वर्षा ऋतुः)।
(ख) उद्योगेन हि सिध्यन्ति कार्याणि।
(ग) अस्माकं विद्यालयः।
(घ) भारतदेशः।

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—
(क) अयोध्या एक सुन्दर नगरी थी।
(ख) अयोध्या में दशरथ नाम के राजा राज्य करते थे।
(ग) दशरथ के चार पुत्र थे।
(घ) राम सब पुत्रों में ज्येष्ठ थे।
(ङ) गुरु ने कहा—'तुम सब अयोध्या को जाओ।'
(च) वह श्रीरामचन्द्रजी की जन्मभूमि है।
(छ) तीर्थस्थानों के दर्शन से पुण्य होता है।
(ज) राम के बिना सब अयोध्या सूनी है।
(झ) अयोध्या की कीर्ति विश्व में सदा रहेगी।
(ञ) हम सब गुरु के साथ वहाँ जायेंगे।

१९६६

प्रसंग दिखलाते हुए किन्हीं दो का हिन्दी में अनुवाद कीजिये।

(क) न जानीषे तावदर्जुनस्य पराक्रमम्। पशुपतिमपि स युद्धेनाप्रीणयत्। इन्द्रादयोऽपि यस्य विक्रमं नितरां प्रशंसन्ति। स महावीरो देवेन्द्रार्तिकरान् निवातकवचान् नाम दैत्यान् लीलयैव व्यनाशयत्। एक एव च विराड् नगरे भीष्मादीन् महारथिनोऽजयत्।

(ख) धर्मस्य लोकोत्तरं महत्त्वमहं भृशम् अवगच्छामि। बहुवर्षेभ्यः धर्मं व्यवहारसरणिं नयामि च। परन्तु अस्मिन् भूदानान्दोलने अहं क्षणे क्षणे धर्मस्य किमपि नवं नवं तत्त्वमनुभवामि हृष्यामि च चिरपुराणमपि चिरनवीनमिदं धर्मतत्त्वं अर्थकाममोक्षरूपं सर्वजनीनं त्रिविधं मङ्गलं साधयिष्यति।

(ग) देव, नैको देशोऽस्माकम्। सकलं भूमण्डलं भ्रमामः। सर्पदष्टविषव्याकुलं शस्त्रभिन्नशिरस्कं तत्क्षणादेव पुनर्जीवितं कुर्मः। राजापि कुड्यान्तर्हित एव श्रुतसकलवृत्तान्तः सभामागतः कापालिकं प्रणम्य, 'योगीन्द्र! मया हतस्य पुत्रस्य प्राणदानेन मां रक्ष' इति प्रार्थितवान्।

(घ) ततो राजा माघं विपन्नं ज्ञात्वा निजनगरात् विप्रशतावृतो मौनी रात्रावेव तत्रागात्। ततो माघपत्नी राजानं वीक्ष्य प्राह—'राजन्, यतः पण्डितवरः स्वदेशे प्राप्तः परमलोकमगात्। ततोऽस्य कृत्यशेषं सम्यगाराधनीयम् भवतेति।' ततो राजा माघं विपन्नं नर्मदातीरं नीत्वा यथोक्तेन विधिना तत्संस्कारमकरोत्।

(ङ) धनादिपदार्था नष्टापि भूयः प्राप्तुं शक्यन्ते, नष्टः समयस्तु सर्वथा नष्ट एव। नहि कथमपि तस्य पुनरवाप्तिः सम्भवति। तथाऽपि लोकाः प्रायेण यथा धनाद्युपार्जने कृतभूरिपरिश्रमाः, नैव तथा समयस्य सदुपयोगे संरक्षणे वा।

(च) स कृतजातकर्मादिसंस्कारः प्रकृतिमेधाविस्वाद् ज्ञानकौतूहलाच्च अचिरेणैव अष्टादशसु विद्यास्थानेषु, सर्वासु कलासु चाचार्यकं पदमवाप। स कामेषु बहुदोषजातं दृष्ट्वा कश्चिद्वनमलञ्चकार। तस्य प्रवेशेन व्यालमृगादयः निवृत्तपरस्परद्रोहाः तपस्विवद् विचेरुः।

(छ) इह हि लक्ष्मीः लब्धाऽपि खलु दुःखेन परिपाल्यते। दृढगुणसंदाननिष्पन्दीकृतापि नश्यति। पञ्जरविधृतापि अपक्रामति। परिलालिताऽपि प्रपलायते। न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति।

(ज) एतैराविष्कारैस्तस्य प्रसिद्धिः पाश्चात्यदेशेषु अभूत्। 'रायलसोसायटी' द्वारा चायमनेकवारं व्याख्यानार्थमाहूतोऽभवत्। शनैः शनैः जर्मनफ्रांसादिदेशेष्वप्ययं स्वकीयैः प्रयोगैः व्याख्यानैश्च स्वकीयाविष्काराणां प्रदर्शनमकरोत्। १९२१ तमे ख्रिष्टाब्दे अयं पुनरेकं यन्त्रं निर्ममौ, यद्धि अत्यन्तसूक्ष्मवस्तूनामपि साक्षात्कारं कारयति। एतस्य नाम 'क्रसकोग्राफ' इत्यस्ति।

(झ) अहो राक्षसस्य नन्दवंशे निरतिशयो भक्तिगुणः। स खलु कस्मिंश्चिदपि जीवति नन्दान्वयावयवे वृषलस्य साचिव्यं ग्राहयितुं न शक्यते। तद्वियोगं प्रति निरुद्योगः शक्योऽवस्थापयितुमस्माभिः। अनयैव बुद्ध्या तपोवनगतोऽपि घातितस्तपस्वी नन्दवंशीयः स्वार्थसिद्धिः।

(ञ) सत्स्वपि विविधयोग्यतासम्पन्नेष्वनुयायिषु महात्मना श्रीगान्धिना श्रीनेहरूः स्वात्मन उत्तराधिकारी घोषित आसीदिति सर्वे जानन्ति। तस्योत्तरोत्तरं प्रवर्धमानः साम्प्रतं प्रकर्षो महात्मनो दूरदर्शिनीं बुद्धिमेव प्रदर्शयति। सोऽयं श्री नेहरूमहोदयो यथार्थतो महात्मनो दूतरूपेण शान्तिं सन्देशं संसारे प्रचारयति।

(ट) अहो प्रभावस्तपसाम्। इयं मुनेः शान्तापि मूर्तिः उत्तप्तकनकावदाता, परिस्फुरन्ती सौदामिनीव चक्षुषः प्रतिहन्ति तेजांसि। सततमुदासीनाऽपि महाप्रभावतया भयमिवोपजनयति प्रथमोपगतस्य।

(ठ) ननु मूर्खाः, पठितमेव युष्माभिस्तत्काण्डे। किं न पश्यथ, प्रत्येकं शतसंख्याः कवचिनो दण्डिनो निषङ्गिणश्च रचितारस्त एव स्वामिनं हतवन्तः। यदि इह न प्रत्ययस्तद्गत्वा पृच्छत।

निम्नाङ्कित विषयों में से किसी एक विषय पर २० पंक्तियों का निबन्ध संस्कृत में लिखिये :—

(क) सदाचारः, (ख) मयूरः, (ग) विद्या धर्मेण शोभते, (घ) राष्ट्रभाषा, (ङ) वसन्त-ऋतुः।

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

(क) अच्छे विद्यार्थी नित्य अपना पाठ याद करते हैं।

(ख) सत्य की सदा विजय होती है।

(ग) मनुष्य को सदा सच बोलना चाहिये।

(घ) जो सच बोलेगा वह सुखी होगा।

(ङ) राजा हरिश्चन्द्र सदा सच बोलते थे।

(च) मरने पर धर्म ही मनुष्य के साथ जाता है।

(छ) सत्पुरुष को सब नमस्कार करते हैं।

(ज) धर्म से हीन मनुष्य पशु के तुल्य होता है।

(झ) धर्म से धन और धन से सुख होता है।

(ञ) भारतवर्ष में प्राचीनकाल में धर्मात्मा पुरुष रहते थे।

१९६७

प्रसंग दिखलाते हुए किन्हीं दो का हिन्दी में अनुवाद कीजिये।

(क) 'स्वामिन्, समस्तमृगैरथ जातिक्रमेण लघुतरस्य मम प्रस्तावं विज्ञाय ततोऽहं पञ्चशशकैः समं प्रेपितः। ततश्चाहम् आगच्छन् अन्तराले महता केनचिद् अपरेण सिंहेन क्षितिविवराद् निर्गत्य अभिहितः—'रे, क्व प्रस्थिता यूयम्। अभीष्टदेवतां स्मरत।'

(ख) अखिलभारतीयमहासभासदस्या इमं लौहपुरुषममन्यन्त। अयमनुशासनपालकः, स्पष्टवादी अंगीकृतस्य परिपालकश्चासीत्। स्वातन्त्र्यान्दोलनेऽयं राष्ट्रपितुर्दक्षिणहस्त आसीत्। देशस्य राजनीतिकजीवने, राष्ट्रियमहासभायाः त्रिंशद्वर्षान्दोलनेषु राज्ये शासकीययोग्यतायाः परिचयं साधु दत्तवान्।

(ग) इदं तु जानन्त्येव सर्वे यदस्माकं युगे विश्वम् एकताभिमुखं प्रवर्तते। अस्मिन् ऐक्यविन्यासे विभिन्नानि राष्ट्राणि सहयोगाय आहूतानि सन्ति, यानि सामान्यविश्वसंस्कृतेः निर्माणकार्ये स्वीयं साहाय्यं वितरिष्यन्ति, स्वापेक्षितं च तत्त्वजातं यथावसरं राष्ट्रान्तरेभ्यो ग्रहीष्यन्ति।

(घ) सागरो गम्भीरो विशालो महासत्त्वोऽपि वात्यया क्षुभ्यति, वीरवरस्तु न कथमपि। किमिदानीं करोमि, यः सपरिवारो जीवनप्रदानेन जीवितवान् केन प्रत्युपकारेण तस्य ऋणादात्मानं मोचयामि, किमपि निश्चेतुं न शक्यते। एवं चिन्तयन् अन्तःपुरं प्रविश्य निशामत्यवाहयत्।

(ङ) एकस्मिन् दिवसे खण्डशो रोहितमत्स्यो मया कल्पितो यावत्। तस्यो-

दराभ्यन्तरे इदं रत्नभासुरमङ्गलीयकं दृष्ट्वा पश्चादहं तस्य विक्रयाय दर्शयन् गृहीतो भावमिश्रैः, मारयत वा मुञ्चत वा। अयमस्यागमनवृत्तान्तः।

(च) अस्मिन्नेवावसरे वीरसुभाषेण भारतमातुर्मुक्त्यै एकाऽद्भुता योजना निर्मिता। एकदा रात्रौ स शाक्यमुनिरिव स्वभवनं परित्यज्य, स्वपरिवारं शोकविधुरं विधाय, स्वदेशवासिनो जनान् व्याकुलीकृत्यैन्द्रजालिक इव कुत्राऽपि विलुप्तः। तमुदन्तं श्रुत्वा सर्वे जनाः स्तब्धा बभूवुः।

(छ) "अहमेतस्य शूद्रकस्य लक्ष्मीः। चिरादेतस्य भुजच्छायायां महता सुखेन विश्रान्ता। इदानीमन्यत्र गमिष्यामि।" वीरवरो ब्रूते—"यत्राऽपायः सम्भवति तत्रोपायोऽप्यस्ति। तत्कथं स्यात् पुनरिहावलम्बनं भगवत्याः।" लक्ष्मीरुवाच—"यदि त्वं शक्तिधरं भगवत्याः सर्वमङ्गलाया उपहारीकरोषि तदाऽहं पुनरत्र सुचिरं सुखं निवसामि।"

(ज) साधु अमात्य राक्षस, साधु। साधु श्रोत्रिय, साधु। मन्त्रिबृहस्पते, साधु। अत एवास्माकं तत्संग्रहे यत्नः, कथमसौ वृषलस्य साचिव्यग्रहणेन सानुग्रहः स्यादिति। तन्मयाऽपि अस्मिन् वस्तुनि न शयानेन स्थीयते। यथाशक्ति क्रियते तद्ग्रहणं प्रति यत्नः।

(झ) "भो महासत्त्व, अत्र शिलायां प्रतिदिनं यः उपविशति, स मदागमनात् पूर्वमेव म्रियते। त्वं पुनः महाधैर्यसम्पन्नः प्रहसितवदनो दृश्यसे। यस्य मरणकालः समायाति, तस्येन्द्रियाणि ग्लानिं प्राप्नुवन्ति; त्वं पुनराधिकां कान्तिं प्राप्य प्रहससि। तर्हि कथय को भवान्?" इति।

(ञ) श्रीगान्धिनो जीवनं सर्वेषां कृते आदर्शरूपेण तिष्ठति। सत्साधनैरेव सदुद्देश्यमधिगन्तव्यमित्येष वै तस्य जीवनस्य मौलिकः सिद्धान्त आसीत्। स सत्यमेव जीवनस्य परमलक्ष्यत्वेनामन्यत। अन्तरात्मनो निर्देशमेव सर्वदाऽन्वसरत्। न केवलं तेन भारतवासिभ्य एव स्वातन्त्र्यं प्रदत्तं; किन्तु अन्येभ्योऽपि स्वतन्त्रतावाप्तेः सर्वथा नूतनो मार्गः प्रदर्शितः।

(ट) अनया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः। सर्वाविनयाधिष्ठनताञ्च गच्छन्ति। तेषां दाक्षिण्यं प्रक्षाल्यते। हृदयं मलिनीभवति। सत्यवादिता अपह्रियते। गुणाश्च उत्सार्यन्ते। केचित् सम्पद्भिः प्रलोभ्यमाना रागावेशेन बाध्यमाना विह्वलतामुपयान्ति।

(ठ) न हि किञ्चिद् गुरवेऽदेयं ममेति। द्रोणस्तमब्रवीत्—दक्षिणाङ्गुष्ठो दीयतामिति द्रोणस्य दारुणं वचः श्रुत्वाऽऽत्मनः प्रतिज्ञां रक्षन् सत्यवादी निषादाधिपतेः सुतोऽदीनमानसोऽङ्गुष्ठं छित्त्वा द्रोणाय प्रादात्। ततः शरमेकलव्योऽङ्गुलीभिरेव व्यकर्षत्। न च तथा शीघ्रोऽभवद्यथा पूर्वमासीत्।

(ङ) एतद्वादस्य निर्णयमहं करिष्ये। तदा सर्वे साश्चर्यं विलोकमानाः स्थिताः। स प्राह—यस्य पित्रा मृत्तिका दत्ता तस्य सर्वा भूमिः। यस्य तुषा दत्तास्तस्य सकलं धान्यम्। यस्यास्थीनि तस्य सर्वे चतुष्पदादिपशवः। यस्य चाङ्गारा दत्तास्तस्य सुवर्णादयः सप्त धातवः। एवं पितृकृतविभागस्य तात्पर्यं वर्णितम्।

(ढ) ब्रह्मन्! अहं मातापित्रोर्भक्तः। तौ हि मम परायणम्। तयोः स्नपितयोः स्नामि। भोजितयोः भुञ्जे। शायितयोश्च शये। तेन मे एतादृशं विज्ञानम्। अन्यहतानां च मृगादीनां मांसानि स्वधर्मं इति वृत्त्यर्थं, न तु अर्थलालस्येन विक्रीणे।

निम्नांकित विषयों में से किसी एक विषय पर २० पंक्तियों का निबन्ध संस्कृत में लिखिये—

(क) व्यायामः। (ख) सत्सङ्गतिः। (ग) देशभक्तिः। (घ) गङ्गानदी। (ङ) संस्कृत भाषा।

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

(क) सब बालकों को प्रातः शीघ्र उठना चाहिए।
(ख) प्रभात वेला में सूर्य का दर्शन होता है।
(ग) सूर्य हमें प्रकाश देता है।
(घ) वही अन्न और फलों को पकाता है।
(ङ) उसकी किरणें रोगों को हरती हैं।
(च) सूर्य के ही ताप से बादल बनते हैं।
(छ) क्या तुमने बादलों का गर्जन सुना?
(ज) अब आकाश से पानी बरसेगा।
(झ) वृष्टि से भूमि सस्यश्यामला हो जायेगी।
(ञ) तुम मेघ की स्तुति करो।

१९६८

निम्नांकित गद्यखण्डों में से किन्हीं दो का प्रसंग बताते हुए हिन्दी में अनुवाद कीजिये।

(क) 'यदा कदाप्युत्पन्नोऽयं महर्षिः निस्सन्देहम् अस्माकं महापुरुष एव न, किन्तु महान् वैज्ञानिकोऽपि, अस्य व्याकरणविज्ञानं समस्तं विश्वं मोहयति, ईदृशी समग्रभाषायाः सारं निष्कास्य लघुकायग्रन्थे उपस्थापनरूपा, व्याकरणप्रणाली नूनम् अपूर्वा।'

(ख) 'महर्षिर्दयानन्दः सत्यस्य धैर्यस्य ब्रह्मचर्यस्य च मूर्तिरासीत्। स्वकर्तव्यपालने परं निर्भय आसीत्। अयं महापुरुषः चिराय उपेक्षितानां वेदानां प्रचारमकरोत्। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका-सत्यार्थप्रकाश—संस्कारविधिप्रभृतिग्रन्थांश्च हिन्दीभाषायामेव अलिखत्।'

(ग) 'सम्पन्ने च विवाहमहोत्सवे राजा रूपधरः पुनस्तं चित्रकरं भिक्षुकौ च वस्त्रालंकारादिना समतोषयत्। जामाता पृथ्वीधरः स्वानुचरैः सह श्वशुरभवने दश दिनानि सुखेन नयन् एकादशेऽहनि प्रियतमया सह स्वां राजधानीं प्रति प्रतस्थे।'

(घ) 'वर्तमानकाले कविकुलगुरोः सुधामधुरायाः कवितायाः विरलविरलः प्रचारः दृश्यते, किन्तु मध्यकाले कालिदासकृतीनां भूयान् समादरः शिक्षितेषु कविवृन्देषु च भविष्यतीति अस्माकं दृढतरा प्रतीतिः।

(ङ) अयं महापुरुषः स्वकर्तव्यपालने दृढनिश्चयो निर्भयश्चासीत्। भारतदेशस्योद्धाराय निरन्तरं यतमानोऽयं सत्यमेव परलोकमान्यो लोकप्रियश्चाजायत। तेन निर्धारितं लक्ष्यमनुसृत्यास्माभिरद्य स्वराज्यसुखमनुभूयते।

(च) 'अथ सर्वाणि भोज्यवस्तूनि यथास्थानं सम्यक् परिवेषितानि, सर्वे ते वयस्यास्तदा भोक्तुमारब्धवन्तः। भोजनसमये सर्वेऽपि ते हसन्तः सुस्वादु भोजनमास्वादयन्। एवं युक्त्या कृपणोऽप्युदारतां नीतः।'

(छ) 'विप्र! प्रणतोऽस्मि। अहमपि ब्राह्मणपुत्रः। त्वामत्र प्रथमरात्रौ शयानं वीक्ष्य प्रदीप्ते च प्रदीपे कमण्डलूपवीतादिभिर्ब्राह्मणं ज्ञात्वा भवदास्तरासन्न एवाहं प्रसुप्तः। इदानीं त्वद्गिरमाकर्ण्य प्रबुद्धोऽस्मि।'

(ज) 'तदेतत्सरः स्वल्पतोयं वर्तते, शीघ्रं शोषं यास्यति, अस्मिन् शुष्के यैः सहाहं वृद्धिं गतः सदैव क्रीडितश्च, ते सर्वे तोयाभावान्नाशं यास्यन्ति। तत्तेषां वियोगं द्रष्टुमहमसमर्थः, तेनैतत् प्रायोपवेशनं कृतम्।'

(झ) 'ततः स्वप्राणरक्षार्थे अपि न वित्तं विनियुङ्क्ते। उपवासेन दिनानि गमयन्तं तमतिदुर्बलं दृष्ट्वा तन्नगरवासिनः कारुणिकाः पुरुषाः कतिचित् प्रोचुः हे कृपण! किं करिष्यसि तेन धनेन? विद्यमानेऽपि धने निजप्राणान् नश्यतोऽनुमन्यसे।'

(ञ) 'रमणीरत्नमूर्धन्या विश्वविख्याता श्रीमती विजयलक्ष्मीः श्रीजवाहरलालस्यैव भगिनीति नैव तिरोहितं कस्यापि। स्वभ्रातेव सापि भारतस्य गौरवमभितः संसारं प्रसारयति। श्रीजवाहरलालस्यैकमात्रमपत्यं श्रीमती इन्दिरागान्ध्यपि स्वमहनीयगुणैर्देशप्रेम्णा च सर्वेषामेव विदिता।'

(ट) 'ध्रुवः प्रत्यवदत् 'अम्ब! मम प्रशमाय यत्त्वयोक्तं तद् धृष्टवचसा भिन्ने मम हृदये नान्तरं लभते। अहं तथा यतिष्ये यथा निखिलस्य जगतः पूजनीयमुत्तमोत्तमस्थानं प्राप्स्यामि। उत्तमो मम भ्राता पित्रा दत्तं राजासनमाप्नोतु, अहं पुनः स्वकर्मणः शाश्वतं स्थानमिच्छामि यन्मम पिताऽपि न प्राप।'

(ठ) 'परमार्थतो हरं न वेत्सि नूनम्, यन्मामेवमात्थ, मंदा अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं महात्मनां चरितं द्विषन्ति। स हरोऽकिञ्चनः सन् सम्पदां प्रभवः।

श्मशानाश्रयः सन् त्रिलोकनाथः, भीमरूपोऽपि शिवः, पिनाकिनो याथार्थ्यविदो न सन्ति।'

(ङ) 'भो मित्राणि! यूयं मामेकाकिनं मुक्त्वा गन्तुमुद्यताः। मम मनो भवद्भिः सह स्नेहपाशेन बद्धं भवद्विरहनाम्नैव आकुलं संजातं यथा धृतिं क्वापि न धत्ते। यूयमनुग्रहं विधाय सहायभूतं मामपि सदैव नयत। तद्वचः श्रुत्वा ते करुणार्द्रचित्तास्तेन सममेव स्वदेशं प्रस्थिताः।

हिन्दी में अनुवाद कीजिये :—

(क) तेन मुक्ता कपोती तस्मिन् पश्यत्येव तमेवाग्निं प्रविवेश, सद्य एव दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता दिव्यतनुना भर्त्रा सह सङ्गता विमानमारूढा दिवं जगाम। एतत् पश्यन् किरातोऽपि विस्मयाविष्टः स्वयमपि दावानलं प्रविश्य निष्कल्मषो भूत्वा स्वर्गलोकं प्रययौ।

(ख) ललाटन्तपेनातपेन प्रतप्तगात्रः तीव्रतरया पिपासया परितः पानीयार्थी इतस्ततः परिभ्रमन् शमीकाख्यस्य महर्षेः पर्णशालामवाप। तस्यां पर्णशालायाम् अन्तरुपविष्टं मौनव्रते स्थितं शमीकं महर्षिं दृष्ट्वैवमुवाच—

'भो भो ब्रह्मन्नहं राजा परीक्षिदभिमन्युजः।
मया विद्धो मृगो नष्टः कच्चित्तं दृष्टवानसि'॥

(ग) एवं स्पष्टमिदं यन्महात्मना प्रदर्शितो मार्गोऽतिव्यापकोऽस्ति। एतस्यैवांशिकानुसरणेन राजनीतिकं स्वातन्त्र्यं पूर्णत एव प्राप्तम्, यद्यपि आर्थिकं सामाजिकं च स्वातन्त्र्यम् अंशत एव। यदि भाविकालेऽपि वयं तत्प्रदर्शितमार्गस्याधिकाधिकमनुसरणं करिष्यामस्तर्हि क्रमशो वयमार्थिकं सामाजिकं चापि स्वातन्त्र्यं निस्सन्देहमेव पूर्णतः प्राप्स्यामः।

(घ) आसीच्च मे मनसि—'अहो, मोहप्रायमेतेषां जीवितं, साधुजनगर्हितं च चरितम्। तथा हि, पुरुषपिशितोपहारे धर्मबुद्धिः, आहारः साधुजनगर्हितो मधुमांसादिः, श्रमो मृगया, शास्त्रं शिवारुतम्, समुपदेष्टारः सदसतोः कौशिकाः, प्रज्ञा शकुनिज्ञानम्, परिचिताः श्वानः।'

निम्नांकित विषयों में से किसी एक पर बीस पंक्तियों का निबन्ध संस्कृत में लिखिये :—

(क) गोपालनम्, (ख) स्वराज्यम्, (ग) श्रीकृष्णजन्माष्टमी, (घ) संस्कृतस्य कश्चित् कविः, (ङ) यात्रावर्णनम्।

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

(क) पक्षी आकाश में उड़ रहे हैं।

(ख) देखो, अब वे वृक्षों पर बैठ गये।
(ग) इनका कलरव चित्त को आनन्द देता है।
(घ) भगवान् की लीला विचित्र है।
(ङ) वही जगत् की सब वस्तुओं को रचता है।
(च) वह सदा सबके साथ रहता है।
(छ) नदियाँ पर्वतों से निकल कर बहती हैं।
(ज) वन में हरे वृक्षों पर लाल और पीले फूल खिले हैं।
(झ) सब एक स्वर से प्रभु के गुण गाते हैं।
(ञ) हमें ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिये।

१९६९

नीचे लिखे गद्य-सन्दर्भों में से किन्हीं दो के प्रसङ्ग बताइये और हिन्दी में अनुवाद कीजिये :—

(क) भो राजन्! मा मैवम्। एवं परस्परविरोधस्य विवर्धनेन कुरुकुलं शीघ्रमेव नामशेषं भविष्यति। अत एव क्रोधं वैरं च अपहाय तदेव भवान् कर्तुमर्हति यत् त्वां युधिष्ठिरमुखाः प्रणयात् कथयन्ति।

(ख) आगम्यतां मन्त्रिप्रवर! एका समस्या समुपस्थिता वर्तते। चतुर्दशसहस्रस्वर्णमुद्राणां याच्चा, कोशे च कपर्दिकाऽपि नास्ति। जीवति च मयि याचको निराशः कथं परावर्त्स्यति?

(ग) आसीत् कौशाम्बी नाम नगरी। तस्यां देवधारनामा गणकः प्रतिवसति स्म। तस्य शान्तिधरो नाम पुत्रो बभूव। स जन्मबर्बरः पित्रा पाठ्यमानः पदार्थं नाधिगच्छति।

(घ) कुमार! कृतमनेन अश्वेन। तर्जयन्ति विस्फुरितशस्त्राः कुमारमायुधीयश्रेणयः, दूरे चाश्रमपदमितः, तदेहि हरिणप्लुतैः पलायामहे।

(ङ) ततोऽहं ब्राह्मणीं कोपाविष्टोऽभिभास्यामि-गृहाण तावद् बालकम्। साऽपि गृहकर्मव्यग्रतयाऽस्मद्वचनं न श्रोष्यति। ततोऽहं समुत्थाय तां पादप्रहारेण ताडयिष्यामि।

(च) ततः हरिशर्माणं महाज्ञानिनं मन्यमानो राजा तस्मै बहून् ग्रामान् ददौ। क्षणाच्च स हरिशर्मा सामन्तसन्निभो जज्ञे। इत्थं दैवेन केचिदर्थाः सहसैव साध्यन्ते।

(छ) अथ तै रासभ उष्ट्रग्रीवायां बद्धः। तत्तु केनचित् तत्स्वामिनो रजकस्याग्रे कथितम्। श्रुत्वा चासौ रजकस्तेषां मूर्खपण्डितानां प्रहारकरणाय समायातः, दृष्ट्वा च तं दूरत एव ते प्रनष्टाः।

(ज) भो वयस्य! अलं संतापेन। प्रणयिजनसंक्रामितविभवस्य सुरजनपीतशेषस्य प्रतिपच्चन्द्रस्येव परिक्षयोऽपि तेऽधिकतरं रमणीयः।

(झ) किं वा शकुन्तलेत्यस्य मातुराख्या। सन्ति पुनर्नामधेयसादृश्यानि। अपि नाम मृगतृष्णिकेव नाममात्रप्रस्तावो मे विषादाय कल्पते।

(ञ) हन्त! अनुत्तरमभिहितम्। समयतस्ते राज्यं परिपालयामि। मम हस्ते निक्षिप्तं तव राज्यं चतुर्दशवर्षान्ते प्रतिग्राहयितुमिच्छामि।

(ट) प्रातर्वणिक् तं महाशङ्खं संपूज्य याचते—महाशङ्ख! देहि मे सहस्रं दीनारान्। स पुनः पूर्ववत् 'अयुतं, लक्षं, नियुतम्' इत्यादि वक्तुमारब्धवान्। तदा वणिजा भणितम्—त्वं तु कथयस्येव, ददासि न, देहि तु किञ्चित्।

(ठ) अहो करुणा तस्य दयानिधेर्दयानन्दस्य! स न केवलं स्वहिंसकस्य कल्याणमेवाचिन्तयत्, अपि तु धनप्रदानेनापि तस्य साहाय्यमकरोत्।

(ड) अस्माकं देशः राजनीतिकीं स्वतन्त्रतां लब्धवान्, सांप्रतमार्थिकं स्वातन्त्र्यमस्माकं प्रथमं लक्ष्यम्, सामाजिकं स्वातन्त्र्यं द्वितीयं लक्ष्यम्, नैतिकं स्वातन्त्र्यं च तृतीयं लक्ष्यम्।

(ढ) संस्कृतवाङ्मयं हि अनादिसिद्धस्य जगत्पावनस्य अस्माकं भारतवर्षस्य गौरवहेतुभूतं विभूषणमेव। अत एव संस्कृतं नाम अस्माकं भारतीयसंस्कृतिप्रणयिनां जीवितसर्वस्वमस्ति।

निम्नाङ्कित विषयों में से किसी एक पर दस पंक्तियाँ संस्कृत में लिखिये—

(क) वर्षा-ऋतुः, (ख) मम विद्यालयः।
(ग) पठनं क्रीडनं च, (घ) परोपकारः। वृक्षस्य आत्मकथा।

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

(क) हमें गुरुजनों की आज्ञा पालनी चाहिये।
(ख) अपने पिताजी के साथ तू घर जा।
(ग) मैंने कृष्ण को एक कलम दी।
(घ) तुम आपस में कलह मत करो।
(ङ) क्या हम पढ़ने के लिये जायें?
(च) मैं अपने हाथों से काम करता हूँ।
(छ) हरे तरुओं पर सुरम्य कुसुम खिलते हैं।
(ज) हम उद्यान में वृक्षों से फल तोड़कर खायेंगे।
(झ) तुम्हारे पास क्या है?
(ञ) क्या आप मुझे जानते हैं?

एडमिशन परीक्षा : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

१९५६

संस्कृत में अनुवाद कीजिये (५६, ५७, ५८, ६०)—

(a) No pains, no gains.
(b) Fortune favours the brave.
(c) Truth is seldom pleasant.
(d) Might is right.
(e) God should be worshipped till death.
(f) It is fame that immortalizes a man.
(g) Do or die.
(h) Misfortune never comes alone.

१९५७

(a) स्वामी सेवक पर क्रोध करता है।
(b) बिच्छू गोबर से उत्पन्न होता है।
(c) कृष्ण माता से छिप रहा है।
(d) मुनि वन में रहता है।
(e) चुल्लू भर पानी में मछली फुदकती है।
(f) पुरुषार्थ के बिना भाग्य सफल नहीं होता।
(g) मेल से काम बनता है।

१९५८

(a) Jayanta is the son of Indrani, the wife of Indra.
(b) The thirsty traveller drank the turbid water of the river.
(c) Why do you punish the innocent men ?
(d) The deer was Killed by the hunter in the forest.
(e) Many trees have no fruits and flowers.
(f) The eyes of the women became red with weeping.
(g) The bird flew up from the branch of the tree.
(h) I shall show you the great market.
(i) Now permit me to go away.
(j) Poor people will eat even the leaves of trees in time of famine.

१९६०

(a) The boy carries two books in two hands.
(b) Water is drawn up from wells by women.
(c) Rama Killed many demons in the Dandaka forest.
(d) The husband of my brother's daughter is a rich man.
(e) If he gets twenty-nine rupees he Will be satisfied.
(f) Should I go to market and bring vegetables for you ?
(g) Hear my advice and then you will succeed in your work.
(h) The twentyfifth boy of the tenth class should get a prize.
(i) The parrots sat on the branches of the trees of their master's garden.
(j) With whom have you come here from school ?

मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा : पटना (बिहार राज्य)

१९३७

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

क-(१) राजा इन्द्रद्युम्न अपने हाथी पर चढ़ा और कई एक देशों में भ्रमण करता हुआ अन्त में जगन्नाथ धाम पहुँचा।

(२) मगध में बहुत दिन पूर्व जरासन्ध, नाम का राजा रहता था और एक समय कृष्ण के साथ भीमसेन वहाँ आये और उसको मार दिया।

(३) उसके दूसरे दिन गुरु अपने शिष्यों के साथ योगी के आश्रम में गये और वहाँ गोदावरी नदी के किनारे ध्यान में बैठ गये।

(४) जो धर्म के अनुकूल काम करते और दूसरों की भलाई करने में लगे रहते हैं केवल वे ही ईश्वर के कृपापात्र होते हैं।

(५) उसकी सेना के शत्रु द्वारा पूरी तरह हराये जाने पर कुछ सिपाही पहाड़ों पर चढ़ गये, कुछ समुद्रों से उतर गये और दूसरे एकान्त कन्दराओं में घुस गये।

ख-(१) सब प्रजाओं को खबर दो कि अब चन्द्रगुप्त अपने ही राजकार्यों को देखेंगे।

(२) अपने माँ-बाप की आज्ञा मानो, विद्वानों का आदर करो; दूसरों की निन्दा का एक शब्द भी कभी मत बोलो; और अपनी अवस्था से सन्तुष्ट रहो।

(३) व्याध को अपनी ओर आते देख सब जानवर डर कर भिन्न-भिन्न दिशाओं में भाग गये।

(४) मुझे आशा है कि आपको उस आदमी का स्मरण होगा जिसके बारे में एक महीना पहले आपसे मैंने कहा था।

(५) पुराने समय में असित नाम का एक मुनि था, जिसने अपने धर्माचरण के लिए देवों के देव से देवल की पदवी प्राप्त की।

1938

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

क-(१) धन से अच्छे और बुरे दोनों काम होते हैं। इसका जैसा व्यवहार करोगे वैसा ही फल मिलेगा।

(२) तुमको उत्तम पुरुष होना चाहिये। इसके लिए सबकी भलाई करो।

(३) अपने बड़े भाई रामचन्द्र की आज्ञा से लक्ष्मण ने सीता को वन में ले जाकर अकेली छोड़ दिया।

(४) जब कोई तुम्हारे घर पर आ जाय तो उसका आदर करो, उसे बैठने के लिए आसन और पैर धोने के लिए जल दो।

(५) धर्म को छोड़कर सुख पाने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसलिए कुछ लोग धर्म के लिए प्राण तक दे देते हैं।

ख-(१) मनमें अत्यन्त उद्विग्न होकर युवा संन्यासी नदी के किनारे टहलने के लिये निकला।

(२) रात बहुत अन्धेरी थी; सब विश्राम कर रहे थे।

(३) जो हो युवा संन्यासी को विश्राम न था। उसने मानसिक शान्ति खो दी थी।

(४) राजा प्रजाओं को पालता है। राजा को चाहिये कि चोर को दण्ड दे।

(५) यदि बदमाशों को दण्ड नहीं दिया जायगा तो सम्पूर्ण समाज विशृङ्खल हो जायगा।

1947

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

(१) मनुष्य किसी के साथ शत्रुता न करे।

(२) आचार्य लोग धर्म का उपदेश देते हैं।

(३) कवि सज्जनों की प्रशंसा करता है।

(४) बालिका वृक्ष को देखकर बैठ गई।

(५) मैंने अति दुर्बल बालक को देखा।

(६) मैंने गोदोहन काल में कृष्ण को देखा।
(a) विष्णु ने क्षीर समुद्र को मथा।
(b) ईश्वर की कृपा का फल सर्वत्र देखा जाता है।
(c) हरिण वन में पानी पीने की इच्छा करता है।
(d) उसने शत्रु से एक सौ गायें जीत लीं।
(e) गुरु छात्रों को पढ़ाते हैं।
(f) तुम कहाँ रहते हो, यह मैं जानना चाहता हूँ।

1948

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

(a) पिता की आज्ञा से रामचन्द्र वन में गये।
(b) कृपया मुझे फल दीजिये।
(c) परमपिता परमेश्वर सर्वत्र है।
(d) श्याम पुत्र के लिए पुस्तक लाता है।
(e) तुम्हारा भाई कहाँ पढ़ता है ?
(f) कब काशी जाओगे ?
(a) कृपया ग्राम चलिये।
(b) तुम्हारा घर कहाँ है ?
(c) पिता आज आवेंगे।
(d) कवियों में कालिदास श्रेष्ठ थे।
(e) रामचन्द्र ने रावण को मारा।
(f) मैं स्वयं कार्य करूँगा।
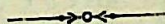
ऐंट्रेंस-परीक्षा : पञ्जाब

१९४९

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

(क) (१) सदा धर्म पर चलो।
(२) धर्म जीवन है।
(३) सत्य धर्म का अङ्ग है।
(४) सत्य से बड़ा कोई दूसरा धर्म नहीं।
(५) तप धर्म का अङ्ग है।
(६) आजकल के विद्यार्थी तप-रहित हैं।
(७) तप में बड़ा सुख है।

(८) सिनेमा मत देखो ।
(९) यह चरित्र को भ्रष्ट करता है ।
(१०) अध्यापक भी तपस्वी हों ।

(ख) अब भारत स्वतन्त्र है। अङ्गरेज यहाँ से चले गये हैं। हिन्दी राष्ट्रभाषा बन रही है। संस्कृत का उत्थान समीप ही दिखाई देता है। अङ्गरेजों की प्रधानता नष्ट हो जायगी। पुराने साहित्य का मूल्य अब बढ़ेगा। हिन्दी, संस्कृत न जानना घृणा का स्थान होगा। रामराज्य का आरम्भ है।

१९५०

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

(क) (१) ईश्वर पाप और पुण्य को देखता है ।
(२) सत्य बोलने से मन शुद्ध होता है ।
(३) प्राचीनकाल में धर्म का राज्य था ।
(४) सब लोग आपस में प्रेम करते थे ।
(५) बलवान् निर्बलों को नहीं सताते थे ।
(६) स्त्रियाँ भी विद्या ग्रहण करती थीं ।
(७) कृपा करके इस पत्र को पढ़ दो ।
(८) हे भाई ! मुझे क्षमा करो ।
(९) अविद्या का अँधेरा दूर हो जायगा ।
(१०) ईश्वर हम सब की रक्षा करें ।

(ख) रामायण हमारी पवित्र पुस्तक है। इसमें श्रीरामचन्द्र जी की कथा है। भारतवर्ष में इसका बहुत आदर है। छोटे-बड़े सब इसको पढ़ते हैं। वाल्मीकि ऋषि ने इसे संस्कृत श्लोकों में लिखा था। वाल्मीकि आदि कवि माने जाते हैं। रामायण से इनका नाम अमर हो गया है।

१९५१

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

(क) (१) इस पाठशाला में केवल तीन कन्याएँ पढ़ती हैं ।
(२) वह अपना काम मुझसे करवाता है ।
(३) मेरे चारों भाई सेना में भर्ती हो गये ।
(४) गङ्गा का जल यमुना की अपेक्षा निर्मल है ।
(५) यह पुस्तक सब पुस्तकों में सरल है ।
(६) मुझसे अब पढ़ा नहीं जाता ।
(७) हे भगवन् ! मुझे वर दो ।

(८) बच्चा आज नहीं रोएगा।
(९) चोर कपड़े चुरा कर भाग गया।

(ख) नदी के किनारे भरद्वाज ऋषि का आश्रम है। कहते हैं एक बार रामचन्द्र जी यहाँ आये थे। आजकल भी यहाँ अनेक ऋषि निवास करते हैं। इनके दर्शन के लिए बहुत लोग यहाँ आते हैं। आश्रम को देखकर प्रत्येक मनुष्य का मन प्रसन्न होता है। जो यहाँ आते हैं, वे पवित्र विचार लेकर लौटते हैं। सच है, आश्रम का जीवन भाग्य से मिलता है।

१९५२

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

(a) 1. आप और हम रविवार को अमृतसर जाएँगे।
2. गोपाल या तुम यह काम करो।
3. इस पाठशाला में बीस लड़कियाँ और सौ लड़के थे।
4. गोबिन्द जन्म से ब्राह्मण है।
5. सब कोई धन की इच्छा करता है।
6. तुम्हारा चित्र इस चित्र से अधिक सुन्दर है।
7. भिखारी ने सेठ से सौ रुपये माँगे।

(b) पंचपुर नगर में एक ब्राह्मण रहता था। उसका पुत्र देवशर्मा था। वह पढ़कर किसी और देश को चला गया और वहाँ भागीरथी के किनारे तप करने लगा। एक दिन वह तपस्वी गंगा के किनारे जप के लिए बैठा था। उस समय किसी उड़ती हुई बलाका ने उसके शरीर पर बीट कर दी। इससे वह क्रुद्ध हो गया और उसने ऊपर देखा। उसके क्रोध की आग से जल कर बलाका भूमि पर आ गिरी, यह देख कर उसे अपने तप पर गर्व हो गया।

१९५३

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

(a) (१) हम और गोपाल कल पाठशाला नहीं गये।
(२) तुम या हम आज नाटक देखेंगे।
(३) वह आँख से काना और पाँव से लँगड़ा है।
(४) गुरु को नमस्कार कर, वे हमें विद्या देते हैं।
(५) मनुष्यों में ब्राह्मण सबसे अच्छा है।
(६) मैं अभी लवपुर से आया हूँ।
(७) उसने गर्म पानी से हाथ-पाँव धोये।
(८) इस श्रेणी में २५ लड़के हैं और राकेश उनमें चौथा है।

(b) राम ने रावण को जीता और सीता को प्राप्त किया। उसने लंका का राज्य विभीषण को दे दिया। वह सीता और लक्ष्मण के साथ पुष्पक विमान से अयोध्या को लौटा, जहाँ भरत उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। अयोध्या पहुँच कर राम ने अपनी माताओं और गुरुओं का अभिवादन किया। यह समाचार पाकर अयोध्या-वासी बहुत प्रसन्न हुए। सारे नगर में दीप जलाये गये। फिर बड़े समारोह से राम का राज्याभिषेक किया गया।

प्राज्ञपरीक्षा : पञ्जाब

१९४८

संस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

(क) किसी वन में मदोत्कट नामवाला सिंह रहता था। चीता, कौआ और गीदड़ उसके नौकर थे। एक बार सिंह ने इधर-उधर घूमते हुए व्यापारी के साथ से बिछुड़े हुए एक ऊँट को देखा। वह बोला, "आश्चर्य है" यह एक अद्भुत प्राणी है। 'पता करो, यह वन का है अथवा गाँव का है।' यह सुनकर कौआ बोला—'हे स्वामी ! ऊँट नामवाला यह गाँव का प्राणि-विशेष आपके खाने योग्य है, अतः इसे मारिए।' सिंह बोला, "मैं घर में आये को नहीं मारूँगा। इसे अभय दान देकर मेरे पास ले आओ, जिससे इसके इधर आने का कारण पूछूँ।"

(ख) जेठ महीने की पूर्णिमा को पतिव्रता स्त्रियाँ वट वृक्ष की पूजा और उपवास करती हैं। इस तिथि को प्राचीन काल में सत्यवान् की भार्या सावित्री ने यम से लिए जाते हुए अपने पति सत्यवान् को छुड़ाया था। तभी से इस व्रत का आरम्भ हुआ है। स्त्रियाँ यह मानती हैं कि इस व्रत के करने से उनके पति की आयु दीर्घ होती है। सब सोहागिन स्त्रियाँ इस व्रत को करती हैं।

(ग) (१) धोबी मैले कपड़ों को गाड़ी में नदी पर ले जायगा ?
(२) तू क्या चाहता है, स्पष्ट क्यों नहीं कहता ?
(३) बारह वर्षों में चारो वेद छः अङ्गों सहित पढ़े जाते हैं।
(४) खेलने के समय खेलना और पढ़ने के समय पढ़ना चाहिये।
(५) ब्रह्मचारी भोग-विलास से सदा डरे और पाप से बचे।
(६) यदि तुम परिश्रम करते तो परीक्षा में अवश्य सफल हो जाते।
(७) प्राचीन काल में राजा लोग विद्वानों की सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझते थे।

(८) संवत् २००३ में इस मकान में एक पुरुष, दो स्त्रियाँ, तीन बालक और चार कन्याएँ रहती थीं।

१९४९

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

(क) कुछ सोच कर वसिष्ठ ने दिलीप से कहा कि महाराज! अब चिन्ता छोड़ो और एक काम करो। मेरे आश्रम में एक गाय है जिसका नाम नन्दिनी है और यह कामधेनु है। अब इसकी सेवा करो। यह तुम्हारे मनोरथ को पूरा करेगी। जहाँ वह जाए जाने दो। जैसा वह करे वैसा ही तुम भी करो।

राजा ने अपने गुरु की बात मान ली और उसकी सेवा बड़े प्रेम और श्रद्धा के साथ की, जिससे वह बहुत प्रसन्न हो गयी।

(ख) नन्दिनी ने मीठे स्वर से कहा—"बेटा! उठ बैठो? यह सब मेरी ही माया थी। ऋषि की तपस्या के बल से यमराज भी मेरी ओर आँख नहीं उठा सकता। साधारण पशुओं की तो बात ही क्या है? मुझे निरे दूध देनेवाली गाय मत समझो। मैं दूध भी देती हूँ और वरदान भी।"

राजा ने कहा कि मैं अपने राज्य का एक उत्तराधिकारी चाहता हूँ, तो नन्दिनी ने कहा कि तुम मेरा दूध पी लो। देखो, तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी।

राजा ने उत्तर दिया कि आपके दूध में सबसे पहले बछड़े का भाग है, फिर गुरु जी का और तब मेरा। क्षमा करना, मैं गुरु की आज्ञा के बिना दूध नहीं पी सकता। इस बात को सुनकर नन्दिनी बहुत ही प्रसन्न हुई और उसे आसीस दी।

सायंकाल को आश्रम में पहुँच कर महाराज दलीप ने वसिष्ठ को सारा संवाद सुनाया और गुरु की आज्ञा से दूध पिया। नन्दिनी की कृपा से रानी सुदक्षिणा से रघु उत्पन्न हुए, रघु से अज और अज से महाराज दशरथ उत्पन्न हुए। महाकवि कालिदास ने रघुवंश में इनका वर्णन किया है।

(ग) (१) भले आदमी सदा भला ही काम करते हैं।

(२) सूर्य की गर्मी से जल सूख जाता है।

(३) लोग सभा में चुपचाप बैठें और भाषण सुनें।

(४) पिताजी! आप जाइये, मैं भी आ जाऊँगा।

(५) यदि वह बात सुननी है तो बैठ जाइये।

(६) विद्या को परिश्रम से पढ़ो, सुख पाओगे।

(७) सन् उन्नीस सौ सैंतालीस में भारत स्वतन्त्र हुआ।

(८) मूर्ख पुत्र को धिक्कार है! वह पढ़ता क्यों नहीं?

(९) माता बच्चे को चाँद दिखाती है।

(१०) हमें सदा सत्य बोलना चाहिये।

(११) इस समय के भारत के प्रधानमन्त्री का नाम पं० जवाहरलाल है।

१९५०

संस्कृत में अनुवाद कीजजिये :

(क) एक समय राजा उशीनर ने यज्ञ करना आरम्भ किया। यज्ञ के लिये सारी सामग्री एकत्र की। जहाँ राजा यज्ञ कर रहे थे वहाँ व्याध बनकर इन्द्र, राजा की परीक्षा लेने गये। राजा की जाँघ पर एक कबूतर आकर बैठ गया। इन्द्र ने कहा, राजन्! यह कबूतर मुझे दे दो। मैं इस कबूतर को खाऊँगा। यह मेरा भोजन है। मैं भूख से व्याकुल हूँ। अतएव तुम धर्म के लोभ से इसकी रक्षा मत करो। तुम्हारा धर्म नष्ट हो चुका। राजा ने कहा, तुम्हारे भय से व्याकुल होकर प्राण बचाने की इच्छा से यह कबूतर हमारे पास आया है। हम इसकी रक्षा क्यों न करें? इसकी प्राण रक्षा करने में क्या तुमको धर्म नहीं दिखाई पड़ता? यह कबूतर तड़पता हुआ मेरे पास आया है। शरणागत की रक्षा करना मनुष्य का धर्म है। जो पुरुष शरणागत की रक्षा नहीं करते वे महापापी है।

इन्द्र ने कहा, राजन्! आहार से जगत् के सब जीव-जन्तु उत्पन्न होते हैं, आहार से बढ़ते हैं और आहार से जीते हैं। अन्य वस्तुओं के त्याग से मनुष्य कई दिन तक जी सकता है, परन्तु भोजन छोड़कर जीना असम्भव है। इसलिये भोजन न पाने से मेरे प्राण शरीर से निकल जायेंगे। मेरे मरने से मेरे स्त्री और पुत्र सब मर जायेंगे। आप एक कबूतर की रक्षा करके सब प्राणियों को मारते हैं। जिस धर्म से धर्म का नाश हो, वह धर्म नहीं, अधर्म है।

राजा ने कहा, तुम ठीक कहते हो। परन्तु हम शरणागत को नहीं छोड़ सकते। जिससे तुम इस पक्षी के प्राण छोड़ो, मैं वही करूँगा।

(ख) (१) गङ्गा हिमालय से निकलती है।

(२) गोपाल गौ का दूध दूहता है।

(३) विद्या सीखने के लिये गुरु की आज्ञा मानना परम आवश्यक है।

(४) विद्यार्थी को सुख कहाँ और सुखार्थी को विद्या कहाँ?

(५) विदुर की कथा शिक्षा से पूर्ण है।

(६) झूठ बोलना सब पापों का मूल है।

(७) विदुर के कहे उपदेश अनमोल हैं।

(८) जुआ खेलना अच्छा काम नहीं है।

(९) कोई न कोई कला सबको सीखना चाहिये।

(१०) मित्र वही है जो सङ्कट में साथ देता है।

(११) दुर्जन सदा दूसरे के छिद्र ढूँढ़ता रहता है।

१९५१

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

(क) एक दिन सुदामा की स्त्री ने पति से विनयपूर्वक कहा—'स्वामिन्! आप कहा करते हैं कि श्रीकृष्णजी आपके सखा हैं। आप इस समय दीन अवस्था में हैं। घर में खाने को कुछ नहीं। अतः आप उनके पास जायें और कुछ ले आयें। सुना है कि वे दीनों पर दया करते हैं। वे अवश्य आपकी सहायता करेंगे। आपको ऐसी अवस्था में मित्र के पास जाते हुए लज्जा नहीं करनी चाहिये। कहते हैं कि विपत्ति में मित्र ही मित्र के काम आता है। आप उनसे सहायता प्राप्त करें, जिससे हमारा निर्वाह भलीभाँति हो सके। आशा है कि आप मेरी प्रार्थना पर ध्यान देंगे और वहाँ जायेंगे।

सुदामा अब कुछ न बोल सका और अपनी पत्नी के कथन को युक्तियुक्त जान कर श्रीकृष्ण के पास जाने को प्रस्तुत हो गया। उसके मनमें विचार उठा कि मैं मित्र से कई वर्षों के पश्चात् मिलने जा रहा हूँ। भेंट में क्या ले जाऊँ? वहाँ था ही क्या जो सुदामा ले जाता?

पर सुदामा की स्त्री ने झट पुराने कपड़े में थोड़े से चावल बाँध कर पति को दिये और वह उन्हें लेकर अपने सखा के पास द्वारिका को चल पड़ा।

(ख) (१) वह क्यों व्यर्थ दुःख सहता है?
(२) मैं तो देश की रक्षा के लिये कष्ट सहूँगा।
(३) हमसे गर्म दूध नहीं पिया जाता।
(४) हे प्रभु! मेरी विपदा हरो।
(५) तू गुणियों के साथ रह।
(६) विद्वानों का सर्वत्र आदर होता है।
(७) हमें गुरुओं की आज्ञा माननी चाहिये।
(८) जो दान देना चाहता है दे।
(९) वर्षा होती तो सुभिक्ष होता।

१९५२

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

(क) धर्म में लगा हुआ अशोक दिन प्रतिदिन अधिकाधिक दान करता रहता था। एक बार जब वह पुनः दान करने लगा तब मन्त्रिमण्डल ने उसे रोक दिया। खिन्न अशोक ने मन्त्रियों से पूछा—अब पृथ्वी का स्वामी कौन है? मन्त्री बोले—देव भूमि के अधिपति हैं। अश्रुपूर्ण नेत्रों से अशोक ने फिर कहा—क्यों आप असत्य कहते हैं? हम राज्य से भ्रष्ट हो चुके हैं। मन्त्रिमण्डल जानता था कि यदि

कोष समाप्त हो गया तो इतना बड़ा साम्राज्य क्षण भर में नष्ट हो जायगा। राजा और मन्त्री दोनों एक दूसरे को समझते थे। राजा ने राज त्यागने का निश्चय कर लिया, परन्तु मन्त्रियों की निर्भयता कितनी विस्मयोत्पादक है। भला संसार के कितने विश्वविजयी राजा इतने महान् हुए हैं ? और कितनों के मन्त्री इतने निर्भीक थे ?

(ख) (१) यह आपका अपना ही घर है।
(२) श्याम खेल रहा होगा।
(३) कथा तो होती है, पर कोई सुने भी।
(४) क्या बाबूजी यहाँ आये थे ?
(५) चलो, मैं अभी आता हूँ।
(६) मुझ में इतनी अक्ल कहाँ ?
(७) क्षमा कीजिये, फिर ऐसा नहीं करूँगा।
(८) तुम्हारे जैसे बहुतेरे देखे हैं।
(९) वह इधर से आया और उधर चला गया।
(१०) आपके बिना यह काम नहीं बनेगा।

इण्टरमीडिएट-परीक्षा : यू० पी० शिक्षा-बोर्ड

१९५५

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

पाण्डु की स्त्री पृथा अथवा कुन्ती के नाम से प्रसिद्ध थी और वह पाँच पाण्डवों की माँ हुई। ये युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा जुड़वाँ नकुल और सहदेव थे। सब लोग उनसे स्नेह करते थे, क्योंकि वे महान् गुणों से पूर्ण थे। भीष्म का हृदय प्रसन्न था, क्योंकि उन्होंने देखा कि सब राजकुमारों में ज्येष्ठ युधिष्ठिर में उत्तम राजा बनने के गुण विद्यमान हैं। उनके पिता महाराज पाण्डु की वन में अकस्मात् मृत्यु हो गयी और धृतराष्ट्र ने घोषित किया कि आज से राजकुमार युधिष्ठिर को दोनों राज्य का उत्तराधिकारी समझना चाहिये।

१९५६

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

इस नाटक ने जिस आदर्श का मुझ पर प्रभाव डाला वह यही आदर्श था कि सत्य का अनुसरण करना और कठोर परीक्षाओं में होकर निकलना, जिनमें से हरिश्चन्द्र निकले। मैं हरिश्चन्द्र की कहानी में पूर्णतया विश्वास करता था। इन

सबका विचार प्रायः मुझे रुला देता था। अब मेरी सामान्य बुद्धि कहती है कि हरिश्चन्द्र ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हो सकते थे। फिर भी दोनों हरिश्चन्द्र और श्रवण मेरे लिये जीवित सत्य हैं और मुझे पूर्ण निश्चय है कि यदि मैं उन नाटकों को आज फिर से पढ़ूँ तो पूर्व की भाँति प्रभावित हो जाऊँगा।

१९५७

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

गोखले सच्चे देश भक्त थे। वे भारतवर्ष से प्रेम करते थे। उनकी प्रबल इच्छा थी कि वे उसे एक महान् देश बनाने में सहायक हों। उनका जीवन अतिसरल और स्वार्थरहित था। वे न तो धन की परवाह करते थे और न ख्याति की। उनकी सबसे बड़ी महत्त्वाकांक्षा थी कि वे अपने कर्त्तव्य का पालन करें। अपने समय में उन्होंने वक्ता के रूप में ख्याति प्राप्त की, किन्तु सर्वोपरि वे क्रियाशील मनुष्य थे। वे केवल शब्दों में विश्वास नहीं करते थे। वे कार्यों को करना चाहते थे। जो काम उन्होंने अपने ऊपर लिया उसे निःस्वार्थ भावना से कार्यान्वित किया और वे अपने देशवासियों के लिये एक उदाहरण बन गये।

१९६०

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

चार ब्राह्मणों ने ज्ञान प्राप्त करने के लिये दूसरे देश को जाने का निश्चय किया। तदनुसार वे सब कन्नौज को गये और वहाँ बारह वर्ष तक अध्ययन किया। उन सबों ने सभी शास्त्रों को पढ़ा और अपने घर को लौटने का निश्चय किया। अपने आचार्य से अनुमति लेकर कन्नौज से वे चल पड़े। रास्ते में उन्हें दो यात्री मिले, उनमें से एक ने कहा—'हे भद्र लोगो, हम लोग अयोध्या जा रहे हैं, किस रास्ते से हम सब जायँ?' उन चारों ब्राह्मणों में से एक ने झट से अपनी पुस्तक को खोला और उत्तर दिया 'आप लोगों को आज अयोध्या न जाना चाहिये। आप सबों को या तो यहीं पाँच दिन ठहरना चाहिये या लौट कर अपने घर को चला जाना चाहिये, क्योंकि आप सबों के ग्रहों की स्थिति आज अच्छी नहीं है।'

१९६१

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

राजा जीमूतवाहन नर्मदा नदी के किनारे पर धर्मपुर में राज्य करता था। एक दिन उसने एक स्त्री का विलाप सुना। जाँच करने पर ज्ञात हुआ कि वह स्त्री सर्पों की माता है। उसके आठ बच्चों को पक्षियों के राजा गरुड़ ने खा लिया है। वह इसलिए रो रही है कि गरुड़ उसके आखरी बच्चे को भी खाना चाहती है। राजा ने उसके बच्चे को बचाने का वचन दिया और बच्चे के बदले अपना शरीर गरुड़

को दे दिया। जब गरुड़ ने उसके शरीर का वाम भाग खा लिया तब राजा ने दाहिना हिस्सा भी उसके सम्मुख कर दिया। यह देख गरुड़ ने अत्यन्त पश्चात्ताप किया और राजा के शरीर को पुनः सर्वाङ्गपूर्ण करने के विचार से अमृत लाने के लिए पाताल लोक गया और अमृत ले आया। ज्योंही गरुड़ राजा के शरीर पर अमृत छिड़कने वाला था कि राजा ने गरुड़ से सर्पों के आठों बच्चों को भी पुनः जीवित करने के लिये कहा जिनको वह पहले ही मार चुका था।

१९६२

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

संस्कृत के सबसे अच्छे व्याकरण के लिखने वाले महर्षि पाणिनि के बारे में हमें अधिक मालूम नहीं है। महाभाष्य के अनुसार उनकी माँ का नाम दाक्षी था। इसी तरह कथासरित्सागर के अनुसार वे उपवर्ष के शिष्य और व्याडि, कात्यायन तथा इन्द्रदत्त के समय के कहे जा सकते हैं। पञ्चतन्त्र के एक पद्य के अनुसार उनकी मृत्यु सिंह के द्वारा बताई जाती है। सुना जाता है कि ये बचपन में बहुत बुद्धिमान् नहीं थे। पढ़ने-लिखने से निराश होकर उन्होंने भगवान् शिव की आराधना की और उनसे चौदह प्रत्याहार सूत्रों को पाया। उन्हीं के आधार पर उन्होंने अष्टाध्यायी की रचना की।

प्रथमा परीक्षा : संस्कृत विश्वविद्यालय

१९६४

१. निम्ननिर्दिष्टगद्यभागेषु केषाञ्चित् त्रयाणां हिन्दीभाषया अनुवादः कार्यः—

(क) यो मनुष्यो यत्र जन्म लभते, सा तस्य जन्मभूमिः। जन्मभूमिः मनुष्यस्य सर्वदैव आदरस्य पात्रं भवति। यत्र कुत्रापि गतो मनुष्यो जन्मभूमिं सदा स्मरत्येव। तद्दर्शनस्याभिलाषः तस्य हृदये वर्तते। भारतवर्षोऽयमस्माकं जन्मभूमिः। भारतवर्षश्चास्माकं देशः। स्वदेशस्य कृते सर्वेषां हृदये सम्मानः आदरश्च भवति।

(ख) सा विद्या अस्ति, यस्याः प्रसादाज्जनो विनीतो भवति। संस्कृतविद्यया हि जनो विनीयते। यथा संस्कृतभाषा विनयमादधाति, न तथाऽपरा भाषा। देववाणीपदाभ्यासपराः पण्डितास्छात्राश्चात्र प्रमाणम्। यावन्तः संस्कृतभाषाऽध्यायिनः विनीताः सत्पथानुगामिनश्च भवन्ति; न तावन्तोऽन्यभाषाध्यायिन इति। विनयः सत्पथानुवर्तिता च प्रधानो गुणः। एतदर्थमपि सर्वप्रकारेण संस्कृतस्य प्रचारः कर्त्तव्यः।

(ग) अस्ति दाक्षिणात्ये जनपदे पाटलिपुत्रं नाम नगरम्। तत्र मणिभद्रो नाम श्रेष्ठी प्रतिवसति स्म। तस्य च धर्मार्थकाममोक्षकर्माणि कुर्वतो विधिवशात् धनक्षयः सञ्जातः। ततो विभवक्षयात् अपमानपरम्परया परं विषादं गतः। अथान्यदा रात्रौ सुप्तश्चिन्तितवान्—'अहो! धिगियं दरिद्रता। उक्तञ्च—शीलं शौचं क्षान्तिर्दाक्षिण्यं मधुरता कुले जन्म। न विराजन्ति हि सर्वे वित्तविहीनस्य पुरुषस्य।'

(घ) (i) रामः—के यूयं वद?

(ii) लक्ष्मणः—नाथ! नाथ! किमिदं, दासोऽस्मि ते लक्ष्मणः।

(iii) रामः—कोऽहं वत्स?

(iv) लक्ष्मणः—स आर्य एव भगवन्!

(v) रामः—आर्यः स कः?

(vi) लक्ष्मणः—राघवः।

(vii) रामः—किं कुर्मो विजने वने तत इतः?

(viii) लक्ष्मणः—देवी समुद्वीक्ष्यते।

(ix) रामः—का देवी?

(x) लक्ष्मणः—जनकाधिराजतनया।

(xi) रामः—हा! हा! प्रिये जानकि!

(ङ) (i) बलवती शिरोवेदना मां बाधते।

(ii) आज्ञा गुरूणामविचारणीया।

(iii) सागरं वर्जयित्वा कुत्र महानद्यवतरति।

(iv) विनाशधर्मेषु विषयेषु मनो मा सन्निवेशय।

(v) अस्मात्स्थानात् पदात्पदमपि न गन्तव्यम्।

(vi) न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे।

(vii) अर्द्धो घटो घोषमुपैति नूनम्।

(viii) महान् महत्येव करोति विक्रमम्।

(ix) पयः पानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्द्धनम्।

(x) एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा।

२. अधोऽङ्कितहिन्दीवाक्येषु केषाञ्चित् अष्टानाम् वाक्यानाम् संस्कृतभाषायाम् अनुवादः विधेयः—

(क) देवदत्त अपने पुत्र के साथ घर जाता है। वहाँ उसके पास आम के पाँच पेड़ हैं।

(ख) दशरथ के चारों पुत्रों में राम बड़े थे। उन्होंने लङ्का जाकर रावण को मारा था।

(ग) मैं आज ही नगर जाऊँगा और वहाँ नाटक देखूँगा।

(घ) जहाँ सत्य रहता है वहाँ विजय होती है। अतः युद्ध में भारतवर्ष की विजय होगी।
(ङ) तुम लोग देखो—घड़ा बनाने वाला आ रहा है।
(च) मित्र! क्या स्मरण करते हो कि हम लोग वन में खाते थे।
(छ) चारपाई पर बैठकर गुरु को प्रणाम नहीं करना चाहिये।
(ज) अरुन्धती ने कहा—सीता! मैं आशीर्वाद दे रही हूँ—तुम पुत्रवती हो।
(झ) क्या मैं जाऊँ? आपकी क्या आज्ञा है?
(ञ) उस अनड्वान् के तीन ही पैर थे।
(ट) हम लोगों को माता का आदर अवश्य करना चाहिये।
(ठ) यहाँ, वहाँ, कहाँ, ऐसा, जैसा आदि शब्द अव्यय हैं।
(ड) सत्य बोलो। स्वच्छ रहो। स्पष्ट लिखो। डरो मत। तुम मनुष्य हो।
(ढ) मैं आऊँगा। वह आज देखता था। यह बढ़ेगा। तुम लोग लिखोगे। दो बालिकायें गायेंगी।

१९६५

१. निम्ननिर्दिष्टसंस्कृतभागस्य हिन्दीभाषयाऽनुवादो विधेयः—

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने शुद्धपटो नाम रजकः प्रतिवसति स्म। यस्य च गर्दभ एकोऽस्ति सोऽपि घासाभावादतिदुर्बलतां गतः। अथ तेन रजकेनाटव्यां परिभ्रमता मृतव्याघ्रो दृष्टः। चिन्तितं च—'अहो! शोभनमापतितम्। अनेन व्याघ्रचर्मणा प्रतिच्छाद्य रासभं रात्रौ यवक्षेत्रेषु उत्सृजयामि। येन व्याघ्रं मत्वा समीपवर्तिनः क्षेत्रपाला एनं न निष्कासयिष्यन्ति। तथानुष्ठिते रासभो यथेच्छया यवभक्षणं करोति। प्रत्यूषे भूयोऽपि रजकः स्वाश्रयं नयति।'

२. अधोलिखितः संस्कृतगद्यांशः हिन्दीभाषया अनूद्यताम्—

सताम् आचारः सदाचार इत्युच्यते। सज्जनाः विद्वांसो यथा आचरन्ति तथैव आचरणं सदाचारो भवति। सज्जनाः स्वकीयानि इन्द्रियाणि वशे कृत्वा सर्वैः सह शिष्टतापूर्वकं व्यवहारं कुर्वन्ति। ते सत्यं वदन्ति, असत्यभाषणात् विरमन्ति, मातुः पितुः गुरुजनानां वृद्धानां ज्येष्ठानां च आदरं कुर्वन्ति, तेषामाज्ञां पालयन्ति, सत्कर्मणि प्रवृत्ताः भवन्ति।

३. अधोऽङ्कितहिन्दीसन्दर्भस्य संस्कृतभाषायामनुवादः कार्यः—

विद्या की शोभा धर्म से होती है। विद्वान् होकर भी जो आचारवान् नहीं होता उसकी विद्या व्यर्थ है। विद्यासे केवल ज्ञान बढ़ता है। क्रिया के बिना ज्ञान भार है। आचार से मनुष्य सत्कार्य में प्रवृत्त होता है। प्राचीन समय में आचार की प्रतिष्ठा थी।

४. संस्कृतभाषयाऽनूद्यताम् निम्नाङ्कितो हिन्दीप्रसङ्गः—

ईश्वर पाप और पुण्य को देखता है। सत्य बोलने से मन शुद्ध होता है। प्राचीन काल में धर्म का राज्य था। सब लोग आपस में प्रेम करते थे। बलवान् निर्बलों को नहीं सताते थे। स्त्रियाँ भी विद्या ग्रहण करती थीं। कृपा करके इस पत्र को पढ़ दो।

५. निम्ननिर्दिष्टविषयेषु कमप्येकमवलम्ब्य संक्षिप्तः निबन्धः लेख्यः—

(क) दाशरथेः रामस्य जीवनम्।

(ख) राणा प्रतापस्य चरितम् (राज्ञः प्रतापस्य)।

(ग) महात्मागान्धिवृत्तम्। (घ) विद्या।

१९६६

१. निम्ननिर्दिष्टसंस्कृतभागस्य हिन्दीभाषयानुवादो विधेयः—

कस्मिंश्चिद्वने चतुर्दन्तो नाम महागजो यूथाधिपः प्रतिवसति स्म। तत्र कदाचित् महत्यनावृष्टिः सञ्जाता प्रभूतवर्षाणि यावत्। तया तडागह्रदपल्वलसरांसि शोषमुपगतानि। अथ तैः सस्तगजैः स गजराजः प्रोक्तः—"देव! पिपासाकुला गजकलभा मृतप्रायाः, अपरे मृताश्च। तदन्विष्यतां कश्चिज्जलाशयो यत्र जलपानेन स्वस्थतां व्रजन्ति।"

२. अधोलिखितः संस्कृतगद्यांशः हिन्दीभाषया अनूद्यताम्—

सतां सङ्गतिः सत्सङ्गतिः कथ्यते। ये सज्जनाः साधवः पवित्रात्मानः सन्ति, तेषां सङ्गत्या मनुष्यः सज्जनः साधुः शिष्टश्च भवति। ये दुर्जनाः सन्ति तेषां सङ्गत्या मनुष्यो दुर्जनो भवति, पतनं विनाशं च प्राप्नोति। ये सज्जनैः सह उपविशन्ति तिष्ठन्ति उत्तिष्ठन्ति खादन्ति पिबन्ति च, ते तथैव स्वभावं धारयन्ति। मनुष्यस्य उपरि सङ्गतेः महान् प्रभावो भवति। यादृशैः पुरुषैः सह स निवसति, तादृश एव स भवति। उक्तश्च—'संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति।'

३. अधोऽङ्कितहिन्दीसन्दर्भस्य संस्कृतभाषायामनुवादः कार्यः—

वे लड़के दौड़ते हुए घर जा रहे हैं। तुम दोनों भोजन करके यहाँ कब आवोगे? सीता और लक्ष्मण के साथ राम वन को गये। श्रीरामचन्द्र ने शङ्कर की पूजा करके लङ्का में प्रवेश किया। तुम यहाँ शीघ्र आओ।

अथवा

मैं सिंह से नहीं डरता हूँ, दुर्जनों से डरता हूँ। गाँवों में मूर्खता अधिक है। दूसरे की निन्दा मत करो, निन्दा पाप है। वह सायकिल से (द्विचक्रिकया) पाठशाला जाता है और गेंद खेलने में व्यस्त रहता है।

४. संस्कृतभाषयाऽनूद्यताम् निम्नाङ्कितो हिन्दी प्रसङ्गः—

नौकर की सेवा से मालिक प्रसन्न होता है। वह आया और तुरन्त ही सोहन

के साथ चला गया। काम करके जो मनुष्य थक जाता है उस पर स्वर्ग के रहने वाले देव कृपा करते हैं। हमें देश की रक्षा अवश्य करनी चाहिये।

५. निम्ननिर्दिष्टविषयेषु कमप्येकमवलम्ब्य संक्षिप्तः निबन्धः संस्कृतभाषायाम् लेख्यः—

(क) कृष्णः गीतोपदेशकः। (ख) जानकी जनकात्मजा। (ग) कालिदासः। (घ) पं० मदनमोहनमालवीयः। (ङ) संस्कृतभाषा।

पूर्वमध्यमा परीक्षा : संस्कृत विश्वविद्यालय

१९६२

१. अधोलिखितस्य संस्कृतसन्दर्भस्य हिन्दीभाषयाऽनुवादः कार्यः—

पुरा समये प्रजापतिनिधिभूताः परोपकारपरायणः स्वार्थगन्धशून्या ब्राह्मणा एव नियमनिर्मातार आसन, राजानस्तु तानेव नियमान् स्वयं परिपम्लयन्तः प्रजासु प्रचारयन्ति स्म। प्रजाप्रतिनिधयो ब्राह्मणा मन्त्रिपदं न्ययुज्यन्त। मन्त्रि-मण्डलपरामर्शमन्तरेण किमपि राज्यकार्यमनुष्ठातुं नाशक्नुवन् राजानः। बौद्धग्रन्थेषु विलोक्यते यत् श्रीमान् अशोको महाराजो निखिलं स्वीयराज्यं बौद्धसंघाय दातु-मैच्छत्, परन्तु तदीयो मन्त्रो राधागुप्तस्तमेवं करणान्न्यपेधीत्। प्रजाहितविरु-द्धाऽऽचरणाद् बहून् शक्तिशालिनोऽपि राज्ञो भारतीयाः साम्राज्यसिंहासनात् पातितवन्त एव।

२. अधस्तनो हिन्दीनिबन्धः संस्कृतेऽनुवाद्यः—

आर्यों ने अनेक कष्ट सह कर बड़े परिश्रम से अपनी इस सर्वोत्कृष्ट संस्कृति की रक्षा की है। इसके सुरक्षित रहने से न केवल भारत का ही वरन् विश्वभर का अब तक कल्याण हो सका है और भविष्य में भी होता रहेगा। इसी आर्यसंस्कृति के कारण समस्त विश्व में भारत का स्थान ऊँचा है। भारतीय शासन-सूत्र के सभी सञ्चालकों का यह कर्तव्य है कि वे इसकी विशेषता को सावधानी से रक्षा करें। ब्रिटिश शासनकाल में इस पर विदेशी संस्कृति की थोड़ी बहुत धूल पड़ गई है। हम भारतीयों का कर्तव्य है कि उसे अविलम्ब झाड़-पोंछ कर साफ कर दें, जिससे इस दिव्य संस्कृति के प्रकाश से अखिल विश्व पुनः उज्ज्वल हो उठे।

१९६३

१. निम्नलिखित विषयों में से किसी एक पर पाँच पृष्ठों में एक निबन्ध लिखिये :—

(क) दीपावली। (ख) महात्मा गाँधी। (ग) वाराणसी नगरी। (घ) जीवन में सदाचार का महत्त्व। (ङ) आपका प्रिय ग्रन्थ। (च) विज्ञान और मानव।

२. निम्नलिखित उद्धरणों में से किसी एक का अनुवाद शुद्ध हिन्दी में कीजिये—

(क) कस्मिंश्चित् अधिष्ठाने ब्रह्मदत्तनामा ब्राह्मणः प्रतिवसति स्म। स च प्रयोजनवशात् ग्रामे प्रस्थितः स्वमात्रा अभिहितः यत् वत्स कथमेकाकी व्रजसि ? तदन्विष्यताम् कश्चिद्द्वितीयः सहायः। स आह अम्ब मा भैषीः निरुपद्रवोऽयं मार्गः। कार्यवशात् एकाकी गमिष्यामि। अथ तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा समीपस्थवाप्याः सकाशात् कर्कटमादाय मात्रा अभिहितः वत्स अवश्यं यदि गन्तव्यम् तदेष कर्कटोऽपि सहायः भवतु। तदेनं गृहीत्वा गच्छ। सोऽपि मातुर्वचनात् उभाभ्यां पाणिभ्यां तं संगृह्य कर्पूरपुटिकामध्ये निधाय पात्रमध्ये संस्थाप्य शीघ्रं प्रस्थितः।

(ख) अत्रान्तरे सज्जितक्रमेण सिंहेन सः लम्बकर्णो व्यापादितः। ततस्तं हत्वा श्रृगालं रक्षकं निरूप्य स्वयं स्नानार्थं नद्यां गतः। श्रृगालेनापि लौल्यौत्सुक्यात् तस्य कर्णहृदयं भक्षितम्। अत्रान्तरे सिंहो यावत् स्नात्वा कृतदेवार्चनः प्रतर्पितपितृगणः समायाति तावत् कर्णहृदयरहितो रासभः तिष्ठति। तं दृष्ट्वा कोपपरीतात्मा सिंहः श्रृगालमाह पाप किमिदमनुचितं कर्म समाचरितम्। यत् कर्णहृदयभक्षणेन अयमुच्छिष्टतां नीतः।

उत्तरमध्यमा परीक्षा : संस्कृत विश्वविद्यालय

१९६३

१. निम्नलिखित विषयों में से किसी एक पर हिन्दी में निबन्ध लिखें :—

(क) जीवन-पथ अथवा आत्म-ज्ञान।

(ख) अभिज्ञान शाकुन्तल अथवा उत्तररामचरित की विशेषतायें।

(ग) भारतीय संस्कृति और संस्कृत।

(घ) राष्ट्रभाषा अथवा राष्ट्रीय ऐक्य।

(ङ) 'आचारः परमो धर्मः' अथवा 'यतो धर्मस्ततो जयः'।

(च) संस्कृत के उत्थान के उपाय।

(छ) अनुशासन या विद्यार्थी-जीवन।

२. अधोलिखित श्लोकों में से किन्हीं दो को हिन्दी में अनूदित करें :—

(क) रे रे चातक सावधान-मनसा मित्र क्षणं श्रूयता-
मम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति धरणीं गर्जयन्ति केचिद् वृथा,
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः॥

(ख) शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपौ,
नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ।

व्याधिर्भेषजसङ्ग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं,
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ॥

(ग) व्याघ्रस्तुष्यति कानने सुगहनां सिंहो गुहां सेवते,
हंसोऽह्लाय च पद्मिनीं कुसुमितां गृध्रः श्मशानस्थले।
साधुः सत्कृतिसाधुमेव भजते नीचोऽपि नीचं जनं,
या यस्य प्रकृतिः स्वभाव-जनिता केनापि न त्यज्यते ॥

(घ) केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला,
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥

३. अधस्तन अवतरणों में से किसी एक का हिन्दी में अनुवाद करें :—

(क) आसीद्गङ्गादक्षिणकूले राढा नाम नगरी; तत्र 'निरपेक्षो' नाम राजा बभूवः। तस्य राज-शब्दप्रतारितः सकलकलाकुशलो वाग्विलासो नाम कश्चित्कविराजो दुर्दैवदर्शितस्तत्राजगाम। स तस्य राज्ञः प्रियसचिवमुपगम्याह--विचक्षण! राजानं दर्शय। सचिवोऽब्रवीत्—कवे! किमस्य राज्ञो दर्शनेन प्रयोजनम्? त्वं कविरयमविज्ञस्तद् युवयोः समालापसुखं न भवितेति तर्कयामि। कविरुवाच—मन्त्रिराज! अविद्योऽपि राजाऽसौ मम कवितया निश्चितं परितोषमङ्गीकरिष्यति। ततः महता सचिव-प्रयत्नेन स राजा निरपेक्षस्तस्मै कविराजाय कदाचिद्दर्शनं ददौ। राजा कवेः कवितापाठं श्रुत्वा उवाच—हे मन्त्रिणः! किमयं विहगकुलकोलाहलाकारं प्रलपति? मन्त्रिण ऊचुः—देव! महानयं कविः, देवस्य यशो वर्णयति ततः पूजनीयो भवति। परन्तु, राज्ञा तिरस्कृतः स कविः बहिरागत्य कोपेन कवितासंन्यासं चकार।

(ख) तथाऽनुष्ठिते प्रत्यूषे पापबुद्धिः धर्मबुद्धि-पुरःसरो धर्माधिकारणिकैः सह तां शमीमभ्येत्य तारस्वरेण प्रोवाच—भगवति वनदेवते! आवयोर्मध्ये यश्चौरस्तं कथय। अथ पाप-बुद्धि-पिता शमी-कोटरस्थः प्रोवाच—भोः! श्रृणुत श्रृणुत, धर्मबुद्धिनाऽपहृतमेतद्धनम्। तदाकर्ण्य सर्वे ते राजपुरुषा विस्मयोत्फुल्ललोचना यावद्धर्मबुद्धेर्वित्तहरणोचितं निग्रहं शास्त्रदृष्ट्याऽवलोकयन्ति, तावद्धर्मबुद्धिना तच्छमीकोटरं वह्नि-भोज्य-द्रव्यैः परिवार्य वह्निना सन्दीपितम्। अथ ज्वलति तस्मिन् शमीकोटरेऽर्धदग्धशरीरः स्फुटितेक्षणः करुणं परिदेवयन् पाप-बुद्धि-पिता निश्चक्राम। ततः सर्वैः पृष्टः सर्वं पाप-बुद्धि-चेष्टितं निवेदयामास।

हिन्दी
लघुसिद्धान्तकौमुदी

व्याख्याकार : महेशसिंह कुशवाहा

पुस्तक की व्याख्या बहुत ही सुबोध और आधुनिक शैली में प्र[illegible] की [illegible] है। कहीं भी पुरानी पण्डिताऊ शैली का प्रयोग नहीं हुआ है। [illegible]से [illegible] विशेषता यह है कि इस व्याख्या में वृत्ति का अर्थ न देकर सूत्र का अर्थ दिया गया है। प्रत्येक सूत्र का विभक्ति-निर्देश कर पहले शब्दार्थ दिया गया है और फिर अनुवृत्ति देकर उसका भावार्थ। अन्त में उपयुक्त उदाहरण देकर उस [illegible] को पुष्ट किया गया है। सूत्र में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों और प्रत्याहारों [illegible] भी स्पष्ट और प्रचलित शब्दों में प्रकट किया गया है। अनेक आलोचनात्मक और विवेचनात्मक टिप्पणियाँ दी गई हैं जो सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों को [illegible] स्पष्ट कर देती हैं। व्याख्या सरल होने के साथ ही प्रामाणिक भी है, क्योंकि उसका आधार वृत्ति न होकर महाभाष्य, काशिका आदि आर्ष ग्रन्थ हैं।

भूमिका में व्याकरण के इतिहास, अष्टाध्यायी और लघुसिद्धान्तकौमुदी के तुलनात्मक विवेचन तथा व्याख्या और रूपसिद्धि की प्रक्रिया पर पर्या[illegible] प्रकाश डाला गया है। पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट-रूप से प्रत्याहार, पारिभाषिक शब्द, गणपाठ और सूत्रानुक्रमणिका आदि विषय दे दिये गये हैं। इस प्रकार [illegible] संस्करण सर्वांगीण और आज तक के प्रकाशित सभी संस्करणों से विलक्षण [illegible] श्रेष्ठ है। इसकी सहायता से मन्द से मन्द विद्यार्थी भी बिना अध्यापक [illegible] व्याकरण जैसे दुरूह विषय का ज्ञान सुगमता से प्राप्त कर सकता है। अध्यापकों और अन्य संस्कृत प्रेमियों के लिए यह पुस्तक समान रूप से उपयोगी है।

संज्ञाप्रकरणादि विसर्गसन्ध्यन्त (सन्धि प्रकरण) भूमिकादि सहित ३-[illegible]

संपूर्ण ग्रन्थ १२-५[illegible]

प्राप्तिस्थानम्—चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१